दयानन्द-विशेषाङ्क

प्रकाशक—
रामलाल कपूर ट्रस्ट,
जी० टी० रोड़ बहालगढ,
(सोनीपत-हरयाणा) १३१०२१

विषय-सूची

..वम्बर १९८३
कार्त्तिक सं० २०४०
मूल्य १०-००

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
जी० टी० रोड़ बहालगढ़,
सोनीपत-हरयाणा
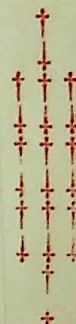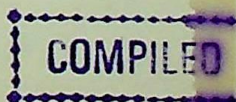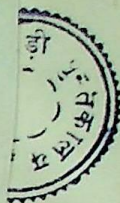
यह चित्र शाहपुरा में सं० १९४० के पूर्वार्ध में लिया गया था।

यह चित्र शाहपुरा में सं० १९४० के पूर्वार्ध में लिया गया था।

दयानन्द-विशेषाङ्क

सम्पादकीय

दयानन्द बलिदान-शताब्दी पर आर्यों का कर्त्तव्य

इस स्मरणीय 'दयानन्द-बलिदान-शताब्दी' के अवसर पर समस्त आर्य व्यक्तियों को आर्यसमाज के अतीत १०० वर्षों के कार्य पर शान्त-भावना और गम्भीरता से विचार करना चाहिये कि क्व आस्ता: क्व निपतिता:(महाभाष्य १-२-६) हम कहां थे और कहां गिर पड़े अर्थात् आरम्भ काल में आर्यसमाज की जो उदात्त ख्याति, आर्य व्यक्तियों का उदात्त जीवन और उन में जो कर्त्तव्य-परायणता थी, वह इस समय कहां लुप्त ही गई। ऐसा जिन कारणों से हुआ उन्हें हमें खोजना चाहिये। जब तक रोग का निदान(=कारण का ज्ञान)नहीं होता, तब तक उसका यथोचित उपचार नहीं हो सकता। आर्यसमाज के गिरावट के कारणों का यथार्थ ज्ञान होने पर ही हम उन कारणों को दूर करके ही अपनी उन्नत-स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

आज कल के तथाकथित नेता, जो आर्यत्व से स्वयं रहित है और अपने जैसे ही चाटुकार लोगों से घिरे हुए हैं, वे अपनी और आर्यसमाज की वास्तविकता को छिपाने के लिये अथवा उस ओर से आर्य व्यक्तियों का ध्यान हटाने के लिये बड़े-बड़े तथाकथित समारोहों का आयोजन करते हैं। ऋषि-भक्त आर्यजनता को इकट्ठा करके ३-४ दिन की तड़क भड़क पर लाखों रुपया फूंक देते हैं या फुंकवा देते हैं। आर्यसमाज की अवनति के कारणों और उनके दूर करने के उपायों पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। जैसे पाकिस्तान के अधिकारी अपनी जनता का, उन की वास्तविक मांगों से ध्यान हटाने के लिये समय-समय भारतवर्ष पर चढ़ाई करके अपना उल्लू सीधा करते हैं, वही दशा हमारे तथाकथित नेताओं की है।

ये लोग राजनीतिक लाभ के लिये अपने मान्य सिद्धान्तों को भी ताक में रख कर[1] राजनेताओं को बुलाते हैं। उनके चरण चुम्बन करते हैं। 'गंगा गये गंगादास यमुना गये यमुनादास' के चेहरे वाले राजनेता दो चार शब्द ऋ० द० और आर्यसमाज की स्तुत्ति के कहकर अपने प्रोग्राम पर चलने का हमें उपदेश देकर चले जाते हैं।

इस बार भी बलिदान-शताब्दी, जिसे वर्तमान नेताओं ने निर्वाण-शताब्दी नाम दिया है, ऐसा ही ढोंग रच रहे हैं। इन्होंने प्रधानमन्त्री इन्दिरा जी और राष्ट्रपति जी आदि को निमन्त्रण दिया है। ये लोग आयेंगे और अपना उपदेश झाड़कर चले जायेंगे। इस बार भी ये नेतागण लाखों रुपये आर्यजनता के व्यय कर वा करवा कर ४ दिन की तड़क भड़क दिखा कर आर्यसमाज की उन्नति का कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनायेंगे।

समाचार पत्रों में 'आर्यसमाज-शताब्दी' के अवसर पर अनेक उपयोगी कार्यक्रमों की घोषणा की गई थी, जो घोषणामात्र बनकर रह गई। इस बार भी भड़ी भव्य योजनाओं की घोषणा हो रही है। जैसे 'शोध योग्य पुस्तकालयें' और 'वैदिक-शोध-संस्थान' की स्थापना आदि-आदि। परन्तु जो परोपकारिणी सभा आज तक अपने छोटे से पुस्तकालय को भी वह रूप न देसकी, जिस से किसी व्यक्ति को अभिलषित पुस्तक समय पर उपलब्ध हो सके, उस से किसी महान् शोध-कर्योपयोगी पुस्तकालय का निर्माण और व्यवस्था करने की आशा रखना दुराशा-

---

१. आर्यसमाज-शताब्दी (१९७५) देहली के अवसर पर 'धर्म एक है' इस मूल भूत सिद्धान्त को भुठला कर 'विश्वधर्म-सम्मेलन' का कार्यक्रम रखा गया। स्व० संजय गान्धी ने आकर अपने पंचसूत्री कार्यक्रम को अपनाने का उपदेश दिया।

मात्र है। रही 'वैदिक शोध-संस्थान' की स्थापना की बात, यह तो उससे भी कठिन कार्य है। इस कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्तियों का मिलना ही दुर्लभ हैं। जिस व्यक्ति ने ऋ० द० ग्रन्थों का कई बार पारायण, प्राचीन वैदिक वाङ्मय का गहरा अनुशील और पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का अध्ययन न किया हो, वह ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य को नहीं कर सकता। हां, एम० ए० पी० एच० डी० व्याकरणाचार्य आदि उपाधिधारी तो बहुत मिल जायेंगे। फिर भी हम मन से चाहते हैं कि परोपकारिणी सभा इस कार्य को करने का उत्तरदायित्व निभाये। यदि वह ऐसा करेगी, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। ईश्वर करे परोपकारिणी सभा इस में सफल होवे।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर आक्षेप होते रहें, मान्य सभाओं को कोई इसकी परवाह नहीं, उस के पास ऐसे कार्य के लिये धन नहीं, किसी ब्राह्मण को वेदाध्ययन के लिये सहायता देने के लिये कोई निधि नहीं[1], उत्कृष्ट साहित्य लेखकों को सहायता वा सम्मान करने के लिये पैसा नहीं और सब खर्चों के लिये पैसे हैं।

आर्यजनता को चाहिये कि इन नपुंसक[2] तथाकथित नेताओं की अधीनता त्याग कर अपने बल-बूते पर अपने पूर्वजों के समान वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिये तैयार होवें। उसके लिये प्रत्येक व्यक्ति को पहले स्वयं आर्य बनना होगा, स्वाध्याय करना होगा, आत्मोत्सर्ग के लिये प्रतिक्षण तैयार रहना होगा, तभी हम अपने आस पास के व्यक्तियों को अपने आचरण द्वारा आर्य बना सकेंगे और वेद का प्रचार कर सकेंगे।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

आर्यो! उठो जागो श्रेष्ठ गुणों को धारण करके स्वयं ज्ञानी बनकर पाखण्ड वा अज्ञान का नाश करके संसार को आर्य बनाने का संकल्प धारण करो, दयानन्द के दिव्य स्वप्न को पूरा करने के लिये कटिबद्ध हो जाओ। सफलता हमारा स्वयं वरण करेगी। इसके लिये वर्तमान तथाकथित नेताओं का मुख मत देखो। ये न स्वयं कुछ करेंगे और न किसी को आगे आने देंगे।

इह चेदवेदीदथ सत्यमास्तिनोचेदिहावेदीन्महती विनष्टि—यदि इस समय हमने अपना कर्त्तव्य पहचान लिया। उसे पूरा करने के लिये कटिबद्ध हो गये। तो ठीक है और इस समय कर्त्तव्य न पहचाना तो हमारा महानाश होगा।

---

१. श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष सन्यास-धारण करने (ब्रह्ममुनि बनने) के पश्चात् जब अपने ज्येष्ठ गुरु-भाई श्री पं ब्रह्मदत्त से मिलने लाहौर आये थे, तब संन्यास लेने का प्रयोजन पूछने पर उन्हों ने कहा था—मैंने बिना कुछ लिये सार्वदेशिक सभा को दो दर्जन से अधिक पुस्तकें लिख कर दी हैं, परन्तु जब मैंने सभा से ३ वर्ष के लिये गुरुकुल कांगड़ी में बैठकर वेद के स्वाध्याय के लिये २५रु० मासिक की सहायता मांगी तो सभा के मन्त्री जी ने उत्तर दिया—'हमारे पास कोई ऐसी निधि नहीं है, जिससे आपको सहायता दी जा सके'। सफेद कपड़े वाले को कोई धन देता नहीं, अतः कपड़े रंग लिये हैं। (यह वार्तालाप मैंने स्वयं सुना हैं। मैं वहीं बैठा था)।

२. आर्यसमाज शताब्दी समारोह देहली के प्रबन्धकों ने अभ्यागतों के ठहरने के लिये आर्यसमाज के स्कूल कालिजों में व्यवस्था की थी, परन्तु एक दिन पहले सरकार ने नोटिस जारी कर दिया—'जिस स्कूल कालिज में बाहर से आये लोगों को ठहराया जायेगा' उस की ग्रांट बन्द कर दी जायेगी। बस सारा प्रबन्ध चौपट हो गया। कड़ाके की सरदी में बहार से आये लोगों पर जो बीती उसे वे ही जानते हैं। इस समय यदि स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसा नरपुंगव नेता होता तो समस्त आर्यजनता का नेतृत्व करके श्रीमती इन्दिरा जी की नींद हराम कर देता और ग्रांट बन्द करने के नोटिस को वापस लिवा कर छोड़ता। इस के लिये आर्यसमाज को चाहे कितना ही बलिदान क्यों न देना पड़ता।

दयानन्द निर्वाण-शताब्दी अथवा बलिदान-शताब्दी

आर्यसमाज में बहुत से शब्दों का प्रयोग विना सोचे समझे **'गतानुगतिको लोको न लोक: परमार्थिक:'** न्यायानुसार सामान्य लोकव्यवहार के अनुसार होते हैं, जो कि प्राय: आर्य मन्तव्यों के विपरीत होते हैं। उन्हीं में एक शब्द **निर्वाण** भी है। यद्यपि गीता में निर्वाण शब्द उपलब्ध होता है और उसका अर्थ भाष्यकार 'मोक्ष' करते हैं, परन्तु अर्थ के निश्चय में प्रधानभूत व्याकरण के विपरीत होने से 'मोक्ष' अर्थ विचारणीय है। भगवान् पाणिनि का सूत्र है—**निर्वाणोऽवाते** (अष्टा० ८-२-५०)। इस का अर्थ है—निर् उपसर्गपूर्वक 'वा' धातु से उत्तर 'क्त' प्रत्यय के तकार को नकार आदेश होता है, यदि 'वा' धात्वर्थ का अधिकरण वात=वायु न होवे। यथा—**निर्वाणोऽग्नि:, निर्वाण: प्रदीप:, निर्वाणो भिक्षु:।** इन का अर्थ है—अग्नि और दीपक शान्त हो गया=बुझ गया, तथा भिक्षु शान्त हो गया=मर गया।

उत्तर काल में बौद्ध मतानुयायियों में निर्वाण शब्द का प्रयोग दुष्कर्मों के त्याग और अहिंसा आदि के आचरण से मरणानन्तर सुख-दु:ख-संवेदना की परम्परा के नाश के लिये प्रयुक्त होने लगा। बौद्ध मत में नित्य आत्म-तत्त्व स्वीकृत नहीं है। शरीर के क्षणिक होने पर भी उसमें जो संवेदना-परम्परा बनी रहती है, वही जन्म-मृत्यु का कारण मानी जाती है। बौद्धों का इस विषय का दार्शनिक सिद्धान्त बड़ा जटिल है। यहाँ थोड़े से शब्दों में उसका भावमात्र लिखा है।

इस प्रकार जो व्यक्ति अपने शुभ कर्मों द्वारा दुरित का क्षय कर देते हैं, वह मृत्यु के साथ संवेदना-परम्परा के नष्ट हो जाने पर जन्म-मरण के चक्र से भी मुक्त हो जाता है, यही उनकी मुक्ति है। इसी के लिये उनके यहां निर्वाण शब्द का प्रयोग होता है। वैदिक मन्तव्यानुसार आत्म-तत्त्व नित्य है। अत: बौद्ध मत में जिस अर्थ में निर्वाण शब्द का प्रयोग होता है अथवा पाणिनि ने इसका जो अर्थ बताया है, उस अर्थ में 'दयानन्द-निर्वाण' शब्द का हम प्रयोग नहीं कर सकते। अधिक से अधिक हम मृत्यु-निधन आदि शब्दों के पर्याय रूप में प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु आर्यसमाज में **दयानन्द-निर्वाण** शब्द का प्रयोग 'दयानन्द का मोक्ष' अर्थ में होता है। दयानन्द इस जन्म में मुक्त हुए वा नहीं, यह हम नहीं जानते, केवल अपनी भावनावश 'मुक्त हो गये' यह मानकर व्यवहार करते हैं।

इस के साथ ही यह भी विचारणीय है कि भारतीय संस्कृति के अनुसार महापुरुष का जन्म दिन ही मनाया जाता है, न कि मृत्यु दिवस। मृत्यु दिवस मनाने की परम्परा अनार्यों की है, जो नित्य आत्म-तत्त्व को नहीं मानते। आसुरी सभ्यता में ही मृत्यु के समय मृत व्यक्ति के शव के साथ उस की प्रिय वस्तुओं रखने का प्रचलन हैं। इस की पुष्टि मिश्र के पिरामिडों में शव के साथ उपलब्ध विविध वस्तुओं की उपलब्धि से होती है।

भूत काल में आसुरी सभ्यता का वैदिक धर्मियों पर भी प्रभाव पड़ा। उस के कारण ही हम लोगों में सती प्रथा मृतक श्राद्ध पिण्डदान आदि की अवैदिक परम्परा आरम्भ हुई।

बलिदान-दिवस

जिस प्रकार आर्यों में राम कृष्ण आदि महापुरुषों के जन्म-दिन पर्व (उत्सव) के रूप में मनाये

जाते हैं, उसी प्रकार जिन महापुरुषों ने धर्म देश और जाति की रक्षा के लिये अपने प्राणोत्सर्ग किये, उन के महान् व्यक्तियों के आत्मोत्सर्ग की स्मृति को बनाये रखने और उस से प्रेरणा प्राप्त करते रहने के लिये हम उन महापुरुषों के बलिदान-दिवस भी मनाते हैं।

ऋषि दयानन्द का बलिदान

ऋषि के विविध जीवन-चरितों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जोधपुर में उन्हें कोई विष या विष सदृश प्राणघातक वस्तु दूध के साथ दी गई थी। एक दो चरितलेखकों ने विष देने पर सन्देह व्यक्त किया है अथवा उस का निषेध किया है। अब तो कुछ व्यक्ति ऐसे उत्पन्न हो गये है जो विष देने की घटना के विरोध में लिख कर ही तीस मारखां बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे चरित-लेखकों वा साम्प्रतिक व्यक्तियों के दो मुख्य आधार हैं—

१—जोधपुर राज्य के ऐतिहासिक महत्त्व के कागजों में ऋ० द० को विष देने की घटना का उल्लेख न होना तथा रावराजा तेजसिंह का विष देने की घटना को कल्पित बताना।

२—मथुरा-जन्म-शताब्दी के अवसर पर शाहपुराधीश नाहरसिंह जी का अपने भाषण में विष देने की घटना का निषेध करना।

इन दोनों आधारों पर हमें ऐतिहासिक दृष्टि से ही विचार करना चाहिये।

१—भला कौन सा राज्य वा राज्याधिकारी ऐसा होगा जो दयानन्द जैसे महापुरुष को विष देने कलँक से अपने को कलङ्कित करने के लिये इस प्रकार के दस्तावेज को सुरक्षित करने का प्रयास करेगा और वह भी उस अवस्था में जब उन्हें वहां के महाराजा ने निमन्त्रित किया हो। रावराजा तेजसिंह का विष देने की घटना का निषेध करने में ही यही कारण है।

२—शाहपुराधीश नाहरसिंह के द्वारा विष देने का निषेध करने का कारण यह है कि घोड़ा (घुड़ा) मिश्र नाम के जिस रसोईये ने ऋ० द० को रात में दूध दिया था, वह शाहपुरा का रहने वाला था। शाहपुरा निवास काल में राज्य की ओर से ऋ० द० की सेवा में उसे रखा गया था। उसे विश्व-सनी व्यक्ति जानकर ऋ० द० जोधपुर साथ ले गये थे। अतः इस कलंक की कालिमा शाहपुरानरेश को भी इस काण्ड से कलंकित कर सकती थी।

३—'ऋ०द० के चरित' लेखक श्री गोपालराव हरि देशमुख ने विष देने की घटना को झुठलाया है, और उसका कारण उन्होंने ऋ० द० का "अजातशत्रु' होना लिखा है। ऋ० द० को इस से पूर्व भी कई बार विष दिया गया था। क्या इस का लेखक को तनिक भी ज्ञान नहीं था? हम ऐसा नहीं मान सकते। वे ऋ० द० के अन्तरङ्ग व्यक्ति थे, उन से कोई घटना छिपी नहीं रही होगी। इसलिये हमारा अनुमान है कि श्री गोपालराव जैसे ऋ० द० के भक्त थे, उसी प्रकार ब्रिटिश शासन के स्तम्भ भी थे। उन्हें 'रायबहादुर' की उपाधि देना ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। विष देने की घटना के साथ किसी प्रकार ब्रिटिश शासन का सम्बन्ध होने की उन्हें आशंका हो गई थी। इसी कारण उन्होंने विष देने की घटना पर परदा डाला और ऋ० द० को 'अजातशत्रु' जैसी महनीय पदवी देकर उससे पीछा छुड़ाया।

संखिया दिया गया

ऋ० द० के कुछ जीवन-चरितों में दूध के साथ पिसा हुग्रा कांच देने का उल्लेख मिलता है। यह सर्वथा सारहीन है। इस के निम्न कारण हैं—

१—कांच को चाहे कितना ही बारीक पीसा जाये वह दूध में घुल नहीं सकता। वह पीते पीते थोड़ी बहुत मात्रा में नीचे ग्रवश्य बैठ जायगा।

२—इस घटना के पश्चात् ऋ० द० को शारीरिक कष्ट होने के जो लक्षण लिखे हैं, वे कांच के प्रयोग से नहीं होते। कांच वमन ग्रौर विरेचन द्वारा सरलता से निकल जाता है। मेरे बच्चे ने कांच खा लिया था। वैद्य ने तत्काल वमन ग्रौर विरेचन करा कर ठीक कर दिया, उसे कोई कष्ट भी नहीं हुग्रा।

३—जीवन-चरितों में जितने लक्षण लिखे हैं, वे सब ग्रशुद्ध संखिया के खाने पर होते हैं। चतुर लोग ग्रपने विरोधी को मारने के लिये हैजे के दिनों में संखिया खिला देते हैं। दोनों के लक्षण प्राय: समान होने के कारण साधारणतया हैजे से मृत्यु मान ली जाती है, संखिया देने या खाने की शंका प्राय: नहीं की जाती है (राजस्थान में ४०-५० वर्ष पूर्व तक ऐसा देखा गया है)।

४—ऋषि दयानन्द की रुग्णावस्था देख कर ग्रजमेर के जेठमल जी ने जोधपुर से ग्रजमेर लौट कर वहां के प्रसिद्ध हकीम पीर जी से ऋ० द० की जो शारीरिक स्थिति बताई, उसे सुन कर तब पीर जी ने उन्हें दवाई दी ग्रौर जेठमल जी के द्वारा ही कहला भेजा **'ग्राप ग्राबू न जावें, यहां ग्रावें, हम संखिया को निकाल देंगे'** (पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ९२२)।

इसके ग्रागे लिखा है कि ऋ० द० ने ही तार द्वारा या जा मनुष्य जोधपुर से ग्राया था उसके द्वारा सूचना दी थी कि **'मुझ को संखिया दिया गया है'**।

संखिया देने का कष्ट तो था ही, ऋ० द० द्वारा जुलाब की दवा देने को चाहना करने पर डा० ग्रलीमर्दान खां ने साधारण व्यक्ति को दी जाने वाली मात्रा से चार छ गुना दवा दे दी, जिस से रात दिन में ४०-५० दस्त होने लगे, शिर ग्रौर माथे पर छाले पड़ गये। यद्यपि जीवन-चरितों में दवा का नाम नहीं लिखा है, तथापि ग्रौषध पर सन्देह व्यक्त किया है।[1] कुशल वैद्य इन लक्षणों से जान सकते हैं कि उन्हें कच्चा (बिना शोधा) जमालगोटा दिया गया।

५—राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् गौरीशंकर हीराचन्द ग्रोझा ने 'दयानन्द निर्वाण ग्रर्ध शताब्दी ग्रजमेर' (सन् १९३३) के ग्रवसर पर प्रकाशित दयानन्द स्मृति-ग्रन्थ (Dayanand Commemoration Valume) में ग्रपने लेख में ऋषि दयानन्द को विष देने का ही उल्लेख किया है[2]।

ग्रत: जोधपुर में ग्रलीमर्दान खां ने जान-बूझ कर ऋ० द० के रोग को बढ़ाया। इसलिये ग्रजमेर ग्राने पर पीर जी हकीम के मुसलमान होने के कारण कई ग्रार्यजनों ने उन से चिकित्सा कराने का विरोध किया। पीर जी से चिकित्सा न कराने का चाहे कोई कारण रहा हो उन से चिकित्सा नहीं कराई गई, डाक्टरी इलाज होता रहा (वही, जी० च० पृष्ठ ९२२)।

---

१. द्र० पं० लेखरामकृत जीवनचरित, पृष्ठ ९१६, 'विरेचन ग्रौषधि के सम्बन्ध में सन्देह' शीर्षक सन्दर्भ।

२. जोधपुर राज्य के इतिहास का वह भाग जिस में महाराजा जसवन्तसिंह का वर्णन होना था वह भाग ग्रोझा जी लिख न सके।

षड्यन्त्र में ब्रिटिश शासन के हाथ होने की सम्भावना

उस काल के इतिहास का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया जाये तो स्पष्ट विदित होता है कि बड़ोदा, उदयपुर और इन्दौर आदि के जो राजा महाराजा ऋ० द० के संपर्क में आये उन को कूटनीतिज्ञ ब्रिटिश शासकों ने नहीं बक्षा। बड़ोदानरेश पर विष देने का आरोप लगाकर कैद कर लिया[1]। महाराणा सज्जनसिंह के विषय में पुराने ऐतिहासकों से सुना है कि उन्हें मीठा विष देकर रोगग्रस्त करा कर मरवा दिया।

ऋ० द० के भाषणों, विशेषकर यदा कदा की जानेवाली आलोचना से ब्रिटिश सरकार परेशान थी। परन्तु प्रत्यक्ष में वह ऐसा कार्य भी नहीं करना चाहती थी जिस से दयानन्द को मारने का कलंक उस के माथे पर लगे। अतः कूटनीतिज्ञ ब्रिटिश सरकार मौका देखती रही 'सांप भी मरजाये और लाठी भी न टूटे'। उदयपुर और शाहपुरा के निवासकाल में उसे सफलता नही मिली। जोधपुर के वातावरण ने उन्हें मौका दे दिया। दयानन्द को विष देने का षड्यन्त्र केवल नन्ही भगतन वेश्या मात्र का नहीं था, उसे तो निमित्त बनाया गया था। डा० अलीमर्दान भी इस में सम्मिलित था। इस सचाई का साक्ष्य आबू भी घटना से मिलता है। आबू जाने पर डा० लक्ष्मणदास की चिकित्सा से दो दिन के भीतर हिचकियों और दस्तों का आना बन्द हो गया। परन्तु डा० लक्ष्मणदास के अफसर जो अंग्रेज था, ने उन्हें अजमेर जाने का आदेश दिया। डा० लक्ष्मणदास ने ऋ० द० की चिकित्सा के लिये नौकरी से त्यागपत्र दे दिया, पर उस अंग्रेज अधिकारी ने उसे स्वीकार न करके अजमेर जाने के लिये विवश किया। (द्र० पं० लेखराम कृत जी० च० पृष्ठ ६२१)।

इन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि **ऋषि दयानन्द को जोधपुर में विष दिया गया था।** वह चाहे संखिया हो चाहे अन्य विष। उस से तथा डा० अलीमर्दान द्वारा दिये गये भयंकर विरेचन के कारण ऋषि दयानन्द ने लगभग १ मास असीम कष्ट भोग कर **'भगवन् तेरी इच्छा पूर्ण हो' कह कर** पांच भौतिक शरीर को छोड़ा। इस लिये हम ऋषि दयानन्द को देश जाति और धर्म पर आत्मोत्सर्ग करने वाले महान् बलिदानी व्यक्तियों की श्रेणी में मूर्धन्य मानते हैं। अतः हम सं० २०४० की दीपावली के दिन उन के बलिदान को १०० वर्ष होने पर उसे **दयानन्द-बलिदान शताब्दी** नाम से अभिहित करना उचित समझते हैं। 'निर्वाण' शब्द जिस के अर्थ का दयानन्द के साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, उसे दयानन्द के साथ जोड़ना हम उचित नहीं मानते। इतना ही नहीं, **बलिदान शताब्दी** शब्द से दयानन्द का जो गौरव साधारण मनुष्य के भी सामने उपस्थित होता है, वह **निर्वाण-शताब्दी** शब्द से प्रकट नहीं होता। अस्तु

बिना विचारे लोकप्रवाह का अन्धानुकरण चाहे शब्दविषयक हो चाहे, आचार-विचार और व्यवहार-विषयक, वे ही करते हैं जो मूर्ख होते है। दयानन्द ने इसी मूर्खता से हमें उभारने के लिये अपना बलिदान दिया, और हम उसी में शनैः शनैः पुनः फंसते जाते हैं। अपने को दयानन्द का अनुयायी मानने वालों को इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

—युधिष्ठिर मीमांसक

१. द्र० ऋ० द० का पत्र और विज्ञापन (नया संस्करण) भाग १, पृष्ठ ४६, पं० ५-७।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पूर्वज

[लेखक—श्री अम्बालाल नरसिंह भाई पटेल, जेतपुर (सौराष्ट्र)]

प्रायः एक सहस्र वर्ष पूर्व के समय में—

गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छ के महाराजा मूलराजदेव सोलंकी ने अपने मामा सामंतसिंह चावड़ा की हत्या कर के गुजरात का राज्य हस्तगत कर लिया था। मामा की हत्या के महापाप से मुक्त होने के लिये उन्होंने समूचे उत्तर भारतवर्ष की यात्रा की। कंधार, कुरुक्षेत्र, स्थाण्वीश्वर, कान्यकुब्ज, काशी, नैमिषारण्य इत्यादि यात्रा स्थानों में उन्होंने भ्रमण किया और वहां से एक सहस्र (१०००) विद्वान् पवित्र ब्राह्मणों को साथ में लेकर अपनी राज्यधानी (पाटनगर) अणहिलपुर पाटण में प्रवेश किया। मामा की हत्या के महापातक से मुक्त होने के लिये उन्होंने अब उत्तरीय ब्राह्मणों के परामर्श से सरस्वती नदी के किनारे पर "रुद्र-महालय" नामक ग्यारह मंजले का अतिभव्य प्रासाद बनवाया। और वहां पर औदिच्य (उत्तर प्रदेशस्थ) ब्राह्मणों को सिद्धपुर नामक नगर बसा कर आस पास के ५०० ग्रामों को दान में दिया। शेष ५०० ब्राह्मण परिवारों को सौराष्ट्र में शिहोर और उसके आस पास के ५०० ग्राम दान में दिये थे।

इन औदीच्य ब्राह्मणों में त्रिवेदी शाखा का एक सामवेदी मूल पुरुष था। मूलराज ने इन का भी बहुत दान आदि देकर सत्कार किया और सिद्धपुर नगर उनको समर्पित किया। सामवेदी त्रिवेदी औदीच्य ब्राह्मणों का गुजरात में आदिनिवास-स्थान सिद्धपुर हुआ। इन ब्राह्मणों में से एक विद्वान् शास्त्रज्ञ त्रिवेदी औदीच्य ब्राह्मण कच्छ की यात्रा करने गये और पाटनगर "भूज" की एक धर्मशाला में जा कर ठहरे। उन दिनों में कच्छ के नरेश ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया था। यज्ञ के लिये कर्मचारीगण बड़ी तैयारी एवं दौड़ धूप कर रहे थे। यज्ञमण्डप, यज्ञवेदी, यज्ञशाला की बड़ी सुन्दर व्यवस्था हो रही थी। दूर दूर से लोक-समूह दर्शनार्थ उमड़ रहे थे। धर्मशाला में ठहरे हुए सिद्धपुर के ब्राह्मण देवता भी दर्शनार्थ यज्ञमंडप में गये और यज्ञवेदी को देख कर सहसा बोल पड़े—"इस यज्ञ का कार्य शास्त्रोक्त रीत्यनुसार नहीं हो रहा है—यज्ञवेदी की रचना अयोग्य रीति से हुई है। वेदी के नीचे गाय की अस्थि हैं। अतः अयोग्य विधि से यज्ञसंपादन होगा तो राज्य का अमंगल होगा"। यह बात कच्छ नरेश के कानों तक पहुंच गई। उन्होंने ब्राह्मण को राजदरबार में बुलाकर कहा कि "वेदी के नीचे दबी हुई अस्थि निकाल के दिखा दो। अन्यथा सारे यज्ञ आयोजन का खर्च तुमसे लिया जायेगा"। इस पर यज्ञवेदी उखड़वाकर दबी हुई गाय की अस्थि बता दी। इस पर कच्छनरेश आश्चर्यमुग्ध हो गये और सारे यज्ञ आयोजन के संपादन का कार्य उनको सुपुर्द कर दिया। परन्तु उन्होंने यज्ञकार्य करने को अस्वीकार करते हुए कहा कि "यज्ञसंपादन राज-कुल के पुरोहित द्वारा ही होना चाहिये" और ऐसा ही हुआ॥

यज्ञपूर्ण होने के अनन्तर कच्छनरेश ने सिद्धपुरवासी उस ब्राह्मण को दो सौ (२००) बीघे भूमि दो उद्यान और दो वाड़ी दान में अर्पण करी। तीर्थाटन के उद्देश्य से आये हुए इस ब्राह्मण को जब

इतना भारी मात्रा में दान प्राप्त हुआ तो उसने थोड़े दिनों में यात्रा पूर्ण करके राज्यधानी 'भूज' में आकर निवास कर लिया।

इसी ब्राह्मण के प्रताप से ही भूज एवं कच्छ के सामवेदी त्रिवेदी औदीच्य ब्राह्मणों के वंश का विस्तार हुआ।

सौराष्ट्र का इतिहास वता रहा है कि कच्छ के राव के वंशजों ने समय-समय पर सौराष्ट्र में उत्तर कर उनके स्थानों पर राज्यों की स्थापना की थी। इसी कारण से सौराष्ट्र के कतिपय नरेश कच्छ के राज वंश के साथ विवाह आदि संबंध स्थापित करते हैं।

काठियावाड़ के इतिहास में यह एक प्रसिद्ध बात है कि भूज के चार राजवंशज सहोदर भाई असी हजार (८०,०००) राजपूत सैन्य, गृहस्थोपयोगी सरसामान, उनके मनुष्यों और ब्राह्मणों के साथ विक्रम संवत् १५९२ में सौराष्ट्र में आये थे। उनमें से ज्येष्ठ भाई **जाम रावलजी** ने वि० सं० १६०२ में जामननगर में अपनी राजगद्दी स्थापित की थी। इस प्रकार जाम रावल जी के साथ कच्छ से अनेक ब्राह्मण सौराष्ट्र काठियावाड़ में आये थे।

रेवाजी—तदुपरान्त कच्छ के राव रायमल जी के (पुत्र रेवाजी) के साथ भी वहां से ब्राह्मणगण सौराष्ट्र आये थे। इन रेवाजी ने जिला-कलेक्टर (तहसीलदार) के अधिकार से १७४३ विक्रम संवत् में मोरवी में आकर (११) वर्ष पर्यन्त कार्य किया था। रेवाजी के पुत्र **कायाजी** के साथ भी कतिपय ब्राह्मण आये थे। इस प्रकार **जाम रावलजी रेवाजी** और **कायाजी** के साथ कच्छ से कई ब्राह्मण आये थे। इस विषय में कोई संशय नहीं है। सिद्धपुर से आया हुआ सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण कच्छ नरेश की कृपा से ही "भूज"-निवासी वना था। राज्य से प्राप्त भूमि-आदि संपत्ति से उन्नत होकर वहां आपनी वंशवृद्धि करी थी। उस समय के राजाओं में आन्तरिक गृहकलह के समयों में उन ब्राह्मणों को भी राजाओं की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था। समानगोत्री एवं अन्य ब्राह्मणों को राजा का पक्षग्रहण कर दूर देशान्तरों में भी जाना पड़ता था।

कायाजी के साथ आये हुए सामवेदी औदीच्य ब्राह्मणों में जो सौराष्ट्र में आये थे, उसमें सामवेदी औदीच्य त्रिवेदी ब्राह्मण भी थे। इस विषय का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। कायाजी के साथ आये हुए ब्राह्मण प्रथमतः भूज से कच्छ के कंटारिया नगर में आये थे और वहां से मोरवी राज्य के **वरसामेड़ी** गांव में और वहां से दो शाखाओं में विभक्त होकर एक शाखा जो मोरवी में आई थी वह **वडाल** (गाँव) में और दूसरी टंकारा में आकर निवास करने लगी थी। वडाल वालों का वंश तो निस्संतान होकर नष्ट हो गया परन्तु टंकारा वालों का वंश अद्यापि कायम है।

जो टंकारा में आकर बसे थे उनमें एक मेहाजी त्रिवेदी नामक ब्राह्मण सामवेदी त्रिवेदी थे—उनकी दो सन्तानें थीं। पहली का नाम विश्राम और दूसरी का नाम डोसा था। जीवा महेता ने जब **जीवापुर** ग्राम की स्थापना की थी तब उन्होंने इसी विश्राम को प्रचुर मात्रा में भूमि दान देकर जीवापुर में बसाया था। वर्तमान समय में जीवापुर ग्राम (टंकारा से केवल डेढ कोश दूर) में जितने सामवेदी ब्राह्मणों के कुटुम्ब हैं वे सभी इन विश्राम के वंशज हैं। इस प्रकार विश्राम तो जीवापुर में रहने लगे और डोसा टंकारा में ही रहने लगे। डोसा का पुत्र कुंवरजी और कुंवरजी का पुत्र वेलजी

हुआ। **इन वेलजी के साथ** दयानन्द के पिता कर्सन जी त्रिवेदी का संबंध था। टंकारा के पोपट लाल तथा वेणी भाई के मुख से हमें (श्री विजय शंकर जी मंत्री काकड़वाड़ी आर्यसमाज मुंबई) विदित हुआ है कि ये वेलजी या तो कर्सन जी त्रिवेदी (त्रवाड़ी-तिवारी) के चाचा का पुत्र था या कर्सन जी के पिता का भाई था। (अर्थात् पितृव्य चाचा थे)

अब एक प्रश्न शेष रह जाता है कि कर्सन जी त्रिवेदी के पूर्वज किस समय में किस राजा के साथ सौराष्ट्र में आये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे या तो जाम रावल जी के साथ या रेवदजी और उनके पुत्र कायाजी के साथ आये थे। स्वभावतः मनुष्य जिस स्थान में चिरकाल पर्यन्त निवास करता है और जिसे वह अपना स्वदेश मानता है उसको यदि किसी कारण वश छोड़ना पड़े और दूसरे स्थान में जाकर रहना पड़े तब भी विवाह आदि प्रसंग में अपने मूल देशवासिओं के साथ ही संबंध घटित करने का प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ राजपूताने में आकर बस जानेवाले कितने ही बंगाली चिरकाल से बंगाल के विभिन्न भागों से आकर जयपुर, करौली, अलवर में रहते हैं। वे अपने संतानों के विवाह आदि प्रसंगों में जहां से आये वहां पर ही संबंध करते हैं।

इसी तरह कर्सनजी के मूल पुरुष भी कच्छ के निवासी थे—यह इस कारण से विदित होता है कि उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र वल्लभजी का विवाह कच्छ में ही किया था। जिस मोंघी बाई के साथ वल्लभ जी का विवाह हुआ था वह कच्छ की ही थी, मोंघीबाई का पिता कच्छ में ही रहता था। वह भूज के एक मंदिर में एक पूजारी थे।

ऊपरलिखित प्रश्न के संबंध में हमारी भी यही धारणा है कि जामनगर के संस्थापक जाम रावलजी वगैरह के साथ जो अनेक ब्राह्मण आये थे उन्हीं में कर्सन जी त्रिवेदी के मूलपुरुष भी सौराष्ट्र में आये थे। श्री हरिभाई त्रिवेदी का उल्लेख इसके पूर्व कर चुके हैं। यह हरिभाई त्रिवेदी कर्सनजी के पूर्वजों में एक माना हुआ व्यक्ति हो गया है। यदि स्वयं हरि भाई त्रिवेदी जाम रावलजी के साथ नहीं आये होंगे। तो उनका कोई पूर्वज तो अवश्य ही जाम रावल जी के साथ आये होंगे। ऐसा यदि नहीं होता तो जामनगर के भिन्न-भिन्न नरेश एवं उनके कुटुम्बी श्री हरिभाई को अपने राज्यान्तर्गत "केशिया" ग्राम की जमीन किसलिये दान में देते ? अतः दान में प्राप्त इस केशिया के भूमि खंड से ही यह सिद्ध हो जाता है कि जामनगर नरेश के साथ उनका अथवा उनके पूर्वजों का कोई सम्बन्ध अवश्य था। इसलिये हमने (श्री विजय शंकर जी ने) ऊपर लिखा है कि मूलतः सिद्धपुर के निवासी और पश्चात् भूज में रहने वाले उस विद्वान् ब्राह्मण के वंशज या ज्ञाति भाई वि० संवत् १५९२ में जाम रावल जी के साथ सौराष्ट्र में आये थे और वे ही कर्सनजी त्रिवेदी अथवा ऋषि दयानन्द के पूर्वज थे।

स्वर्गीय श्री देवेन्द्रनाथ मुकर्जी का कथन है कि जब वे ऋषि दयानन्द के पूर्वजों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने और कच्छ नरेश के उस प्रसिद्ध यज्ञ के काल और उसमें पधारे हुए ब्राह्मणों की तालिका (लिस्ट) आदि का संचय करने के हेतु से भूज में गये ने तब दो बार प्रयत्न करने पर भी भूजनरेश ने उनके बंगाली होने मात्र से भूज में प्रविष्ट नहीं होने दिया था। यह तो बड़े आश्चर्य एवं दुःख की कथा है कि शोध (खोज) सरीखे उपकारक कार्य में विघ्न उत्पन्न करने वाले इन व्यक्तियों के दिमाग् (मानस) कितने तुच्छ एवं कुण्ठित होते हैं। ये लोग इतने ज्ञानोपयोगी कार्यों में भी विघ्न

डालकर जनता को अज्ञानान्धकार में रखने के कारण घोर पाप के भागी बनते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

श्री हरिभाई त्रिवेदी के समय से ही कर्सन जी के पूर्वज जिस प्रकार "केशिया गांव" की जमीन का उपयोग करते आये हैं उसी प्रकार वे 'धूड़कोट' "जीरागढ़"आदि ग्रामों के अपने यजमानों से प्राप्त दक्षिणादि का भी उपभोग किया करते थे। कारण कि विशेष शास्त्रज्ञ एवं धर्मनिष्ठ होने के कारण इन सब ग्रामों के बहु संख्यक व्यक्ति हरिभाई त्रिवेदी को अपना गुरु मानते होंगे। केवल हरिभाई त्रिवेदी ही शास्त्र-पारंगत थे यह बात नहीं थी परन्तु ऋषि दयानन्द के पिता, पितामहादि भी शास्त्र-निपुण, स्वधर्मनिष्ठ एवं कर्मकाण्डी थे। इसीलिये ऋषि दयानन्द ने स्वकथित आत्म-चरित में लिखा है कि "पिता, माता तथा अन्य मेरे वयोवृद्ध कुलक्रमागतरीति के अनुसार मुझे शिक्षा देने लगे"— इससे यह विदित होता है कि जिस कुल में ऋषि दयानन्द ने जन्म ग्रहण किया था उसमें शास्त्राध्ययन कुल परंपरा से चला आता था। वे लोग शास्त्र पठन-पाठन तथा विद्याभ्यास पर विशेष ध्यान दिया करते थे।

इसके पूर्व कहा गया है कि कच्छ के राजकुमार काया जी के साथ जो सामवेदी त्रिवेदी ब्राह्मण आये थे उसमें से कुछ एक वडाल में और कुछ टंकारा में बस गये थे। और इन्हीं में कर्सन जी के पूर्वज भी थे। और जो टंकारा में आकर रहे थे उनमें वेलजी के चाचा के पुत्र थे। इसके अतिरिक्त यह भी पता लगाया गया है कि जो वडाल ग्राम में आकर बसे थे वे भी कर्सनजी के ज्ञाति-बन्धु ही थे। वडाल वासी त्रिवेदी तथा कर्सन जी के पिता-पितामहों की शाखाएं पहले-पहले एक ही कुटम्ब में थीं। परन्तु जब वे कच्छ से सौराष्ट्र में आये तब वे भिन्न-भिन्न रूप में भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गईं। जिस वंश वृक्ष की शाखाएं इतनी विस्तृत एवं प्रलंब हैं वह स्वयं अवश्य महान् हो सकता है। इसलिये स्वामी दयानन्द जी ने भी अपने पुना व्याख्यान में एक स्थान पर कहा है कि—

वर्तमान में हमारा कुटुम्ब १५ शाखा, प्रशाखाओं में फैला हुआ है। जिस कुटुम्ब के १५ विभाग हैं वह बड़ा होगा ही। इसलिये संक्षेप से यह कहा जा सकता है कि ऋषि दयानन्द के पूर्वज प्रारम्भ में उत्तर भारत के किसी भाग से आकर सिद्धपुर बस गये थे। कच्छ भूज में आकर और वहां कुछ काल पर्यन्त रह कर सौराष्ट्र में आ गये थे। हमें तो ऐसा भी विश्वास है कि सौराष्ट्र में आकर कुछ समय तक वे **जाम नगर** में भी रहे थे। और जब उन्हें **केशिया** की भूमि प्राप्त हुई तब श्री **हरिभाई** त्रिवेदी स्वयं **केशिया में** आकर रहने लगे थे और हरि भाई की सन्तान भी केशिया में रहती थीं। कर्सनजी के पिता लालजी त्रिवेदी कुछ समय पर्यन्त **केशिया में ही** रहते रहे और किसी विशेष अनिवार्य कारण से उन्हें **केशिया** छोड़ कर टंकारा में निवास करना पड़ा। अस्तु। जो कुछ भी हो, तथापि इतना तो अवश्य सिद्ध हो जाता है कि **केशिया ग्राम हरि भाई त्रिवेदी** को दान में प्राप्त हुआ था। और उन के पुत्र लालजी ने भी उक्त संपत्तिका उपयोग किया तथा इन लालजी ने ही सर्वप्रथम टंकाराको अपना निवास स्थान बनाया था। **लालजी** के अनन्तर उन के पुत्र कर्सनजी त्रिवेदी ने भी टंकारा में ही शिक्षा प्राप्त कर वहीं पर अपने व्यवसाय की और अधिक वृद्धि की। वे **केशिया** की व्यवस्था भी कर रहे थे और टंकारा में **लेन-देन**-शर्राफी का व्यवसाय भी करते जा रहे थे। इन दोनों कार्यों के साथ-साथ भाऊ साहेब की तरफ से टंकारा में कलेक्टर-तहसीलदार के पद को भी सुशोभित

करते थे। एवं अपनी उच्च बुद्धि-प्रतिभा के कारण इन सभी पृथक्-पृथक् कार्यों का सुचारु रूपेण संचालन करते जा रहे थे।

परन्तु उनकी तथा उनके पूर्वजों की यह आर्थिक व्यवस्था उन के स्वर्गारोहरण के पूर्व ही भग्न हो गई। इस में सब से बड़ा कारण ऋषि दयानन्द का गृह-संसार त्याग था। कर्सन जी की यह प्रबल इच्छा थी कि उन के पश्चात् उन का पुत्र मूल शंकर इस महती संपत्ति का उपभोग करते हुए इसकी रक्षा करें। परन्तु ऋषि दयानन्द इस कार्य के लिये अवतीर्ण न हुए थे। समग्र संसार एवं ईश्वरीय आज्ञा (वेदों के ज्ञान प्रकाश) द्वारा मुक्ति स्वतंत्रता लाभ ही उनकी संपत्ति थीं। और इसी ऐहिक एवं पारलौकिक दिव्य परंपरागत भव्य समुज्ज्वल संपत्ति की रक्षा करना ही उनका कर्तव्य था। अतः मूल शंकर उस पैतृक संसार-संपत्ति का त्याग कर अज्ञानान्धकार में पड़े दुखपूर्ण संसार का उद्धार करने के लिये गृह त्यागी बन गये। अब रह गये उनके छोटे भ्राता वल्लभ जी। परन्तु भाग्य-वशात् वल्लभ जी भी अकाल मृत्यु के आधीन होकर कर्सन जी के जीवन-काल में ही स्वर्गगामी हुए। इस प्रकार उस महान् वंश का सांसारिक दृष्टि से प्रायः अन्त हो गया। अन्त में कर्सन जी लाल जी त्रिवेदी (त्रवाड़ी) ने अपनी वह अपार संपत्ति अपनी कन्या प्रेम बाई को दे दी। आज इन प्रेमबाई की सन्तानों के ही हाथों में कर्सन जी की संपत्ति विद्यमान है। वर्तमान में श्रीयुत पोपट लाल जी तथा भाई, प्राण शंकर के पुत्र-पौत्रादिक उनका उपयोग कर रहे हैं।

उपर्युक्त लेख में महा ऋषि दयानन्द सरस्वती के पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास प्रमाण सहित दिया गया है जो कि परम आवश्यक था। इसी इतिहास के कारण ऋषि दयानन्द के कुलशील का सत्य-सत्य परिचय प्राप्त होता है। तेजो-द्वेषी तो तेजो-द्वेषी ही ठहरे। उन्होंने भगवान् दयानन्द के निर्मल चरित्र में कलंक आरोपित करने की जो अनेक कुचेष्टाएं की उन में एक यह भी थी। उन्होंने यह प्रयत्न किया कि ऋषि दयानन्द का जन्म एक अत्यंत नीच वंश में सिद्ध हो। यद्यपि **"प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति, किं जन्मना"** के अनुसार ऋषि दयानन्द का जन्म किसी अति साधारण कुल में भी हुआ होता तो संसार में उन का वही स्थान होता जो आकाश में सूर्य और चन्द्र को है। तथापि इतिहास के लेखक के लिये यह परम आवश्यक है कि वह तथ्य का उद्घाटन करें। और उसी सत्य को खोज शोधकर ऋषि दयानन्द के इस अप्रकाशित संदिग्ध पहलू को प्रकाशित कर जनता के सन्मुख रख दिया गया है।

सत्य के प्रकाश के लिये बीसवीं शताब्दी के लिये सर्व श्रेष्ठ महा पुरुष का यह लिखित रेखा-चित्र सर्वत्र प्रकाशित हो और संदिग्ध वायुमण्डल का निराकरण होकर सत्य का सर्वत्र प्रचार हो यही भगवान् से प्रार्थना है।

मोरवी नरेश बाघजी और स्वामी दयानन्द सरस्वती

१—ठाकोर रवा जी (द्वितीय)-सिंहासनारूढ सं० १९०२ (सन् १८४६ ई०) स्वर्गवास सं० १९२६ माघ शुक्ला ६ (सन् १८७० फरवरी ता ?)।

२—श्री सर बाघ जी-रवाजी ठाकोर की मृत्यु के पश्चात् श्री बाघ जी १३ वर्ष की अवस्था

में सं० १९२६ (माघ शु०?)=१७ फरवरी सन् १८७० में सिंहासनारूढ हुए। स्वर्गवास-सं० १९७९ ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया=सन् १९२३ मास ?

३—महाराजा लखधीरसिंह जी—४५ वर्ष की आयु में सं० १९७९ आषाढ़ शुक्ला द्वितोया =सन् १९२३ मास? । स्वर्गवास ४ मई सन् १९५७=सं० २०१३ ।

(१) श्री वाघ जी ने अपने दीवान श्री भान जी कान जी के मार्फत श्री देवेन्द्र नाथ को सन् १९१२ में जो पत्र लिखवाया था उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

Hill Buildings,
Divan office,
Morvi, 13th June 1912.

Dear Mr. Mukerji,

In reply to your letter Dated 8th instant, I am to say under orders from H. H. the Maharaja, that H. H. had the pleasure to attend a lecture, delivered by late Swami Dayanand Saraswati, in 1875, in Rajkot and that after the lecture, the swamiji met H, H. and in course of conversation told H. H. that he was born in his state and was his subject, when H. H. expressed his great pleasure to him to hear it and said, he felt so proud to have such a jewel, born in his state.

On other points, H. H. has nothing of information to communicate.

Yours truely,
Bhanji Kanji

भावार्थ यह है कि "सन् १८७५ में स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजकोट के एक व्याख्यान में मोरवी राज्य के महाराजा सर बाघजी सी० आई० ई० के० सी० एम० श्रोतृस्वरूप में उपस्थित हुए थे। व्याख्यान की समाप्ति पर स्वामी जी महाराजा साहब से मिले और वार्तालाप के प्रसंग में उन्होंने एच० एच० से कहा कि उनका जन्म मोरवी रियासत में हुआ था और उनकी प्रजा है। यह सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए" और कहा कि—मेरे राज्य में ऐसे अमूल्य रत्न ने जन्म ग्रहण किया—मुझे इस बात का अभिमान है।

(२) राजकोट निवासी राज्यमान्य श्री प्राणलाल विश्वनाथ शुक्ल अपने पत्र में श्री देवेन्द्रनाथ मुकरजी को लिखते हैं कि—

Rajkot, 14th December, 1914.

Babu Devendranath Mukerji

Dear Sir,

In answer to your questions Re. the birthplace and the parentage of Swami Dayanand Sarswati, I have been able to furnish you with the following information which I gathered from Vallamji, a Brahmin, relative of Swami Dayanand at Tankara.

I visited Tankara in the February of 1914 and I have been led to ascertain that the birthplace of Swami is Tankara, and I found the exact place where the early life of Swamiji was spent. His name was Mulshankar and also Dayaram, because it is a custom of the people of his province to give one more pet name to a son as a daughter. Swami Dayanand's father's name was Kersonji and he was an Audichya Brahmin of Samved. It is said that he belonged to a Gautam gotra. There was no heir in the family of Swamiji and so the house and the landed property (The field for cultivating grains) were given to his sister's heir and at present in his house lives a Brahmin Popatlal the son of Kalyanji, whose father was Bogha, the son of Mangalji to whom their heirship was bestowed by Kersonji,

I hope this information will be of some use to you.

Yours Sincerely,
(Sd) Pranlal V. Shukla,
Manager Saraswati Stores.

सूचना—उपर्युक्त मंगल जी रावल के साथ ही स्वामी दयानन्द की सहोदरा (भगिनी) प्रेम बाई का विवाह हुआ था। अत्र पोपटलाल जी नहीं रहे । उनके पुत्र पौत्रादिक हैं। मंगलजी रावल और प्रेम बाई का पुत्र बोधा रावल और बोधा रावल का पुत्र स्व० पोपटलाल जी रावल राजकोट की एजन्सी आफिस के दफतरदार (रेकर्ड कीपर) अपने पत्र में श्री देवेन्द्रनाथ मुकरजी को लिखते हैं कि—

Rajkot,
8th December 1914.

My dear Mr. Mukerji,

In reply to your query I am to state that I and my grandfather had the pleasure of seeing Swami Dayanand Saraswati at the Wadhawan (वढवाण) civil station in January 1875 in the Lakhter Utara (लखतर स्टेट का उतारा).

The Swami Shri then said,in course of conversation that he was originally a subject of Morvi state. He said then something about Tankara, but I do not remember now perfectly whether he then said that he was a native of Tankara or Morvi. I was then a clerk in the office of the Deputy Assistant Potitical Agent in Jhalawad, and we had had conversation with the Swami for about half an hour at night time. There was then no one else present except the Swami shri, my grand father and myself. The Swami was then on his way from Rajkot to Ahamadabad.

Yours Sincerely,
(Sd) Vithal Rai.

(3) Salections from the records of Bombay Government. No. XXXIX (39) New Series page 99 का document.

For the first year, after colonel walker's settlement (which happened in 1807-8 A.D.) the management remaind in the hands of the cheif. It was then transferred in mortgage for a debt to sheth sundarji sewji, who held it for some years and then made it over in 1808 A. D. to Mairal Narayan, by whom as a private transaction his claims were dischared, but no final settlement being thus promoted, further embarassment uccurred and a new arrangement was made in samat 1882 (A. D. 1825-26) under the Government Bhandari, for a fixed period of fifteen years, on the conclusion of which, the debt being considered to have been discharged. The Tankara is to be restored to Morvi chief.

आर्थिक अवस्था की तंगी के कारण, मोरवी नरेश ने अपना गुलजार व हरा भरा ताल्लुका टंकारा वड़ौदा के सेठ गोपाल मेरल नारायण भाऊ के पास गिरवी रख दिया था। मेरल वंश करोड़पति था। वड़ौदा नरेश भी समय-समय पर उनसे कर्ज लिया करता था। जिस समय ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ था उस समय टंकारा मेरल सेठ के हाथ में था। और कर्सन जी त्रिवेदी उस मेरल भाऊ की तरफ से टंकारा के जमेदार-वहिवटदार थे। उपरोक्त डा० क्युमेन्ट इसका प्रमाण है। टंकारा के जीवापुर मोहल्ले में कर्सनजीका घर था। और उसको अश्वशाला (घोड़ार) दरवार गढ़ में (आज के महर्षि दयानन्द महालय के पश्चिम में) सात कोठड़ियां (Rooms) एवं आफिस है वहां पर ही थी।

सूचना:—जीवापुर नामक ग्राम और टंकारा का जीवापुर मुहल्ला दोनों पृथक्-पृथक् है।

(३) अणहिलपुर पाटण-गुजरात के महाराजा मूलराजदेव सोलंकी ने सिद्धपुर में ग्यारह मंजिले (stories) का जो रुद्र महालय नामक भव्य उत्तुंग कलात्मक महाप्रासाद (शिव मंदिर) का निर्माण किया था उसको तेरहवीं विक्रमीय शताब्दी में मुसलमानों ने तोड़ डाला था। मूलराजदेव के प्रपौत्र राजा कुमारपाल जैन ने उसका पुनरुद्धार किया था, उसको भी मुसलमान सुलतानों ने तोड़फोड़ कर नष्ट कर दिया था। (अ० न० पटेल)।

सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल ने प्रख्यात सोमनाथ के शिव मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया। रुद्रमहालय के भग्नावशेष शताब्दियों से पूर्ववत् रह गये हैं ॥ (अ० न० पटेल)

"दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा जन्म शताब्दिमहोत्सव से उद्धृत:"—

उद्धृतकर्त्ता—अम्बालाल नरसिंह भाई पटेल। भूतपूर्व—(आद्य व्यवस्थापक:—महर्षि दयानन्द सरस्वति स्मारक महालय—टंकारा (सौराष्ट्र)।

[इस लेख में कर्सनजी के पिता लालाजी त्रिवेदी का टंकारा में निवास लिखा है। मैंने टंकारा रहते हुए जो खोज की थी तदनुसार लालजी भी जीवापुर में ही बसे थे। वहां उनका बनवाया कुबेरनाथ महादेव का मन्दिर विद्यमान है। कर्सनजी जीवापुर से टंकारा आये थे और उन्होंने पिता के बनवाये हुए महादेव के मन्दिर की हूबहू नकल पर टंकारा में मन्दिर बनवाया था। वे टंकारा में जिस स्थान पर रहे, उसका 'जीवापुर मोहल्ला' नाम भी उनके जीवापुर से आने के कारण पड़ा। यु० मी०]।

पुणे प्रवचन काल में ऋ० द० को लिखा गया

एक अज्ञात महत्त्वपूर्ण पत्र

[प्रेषक एवं अनुवादक—श्री प्रा० कुशलदेव शङ्करदेव वडवलकर; उपमन्त्री महाराष्ट्र आर्य-प्रतिनिधि सभा, वैदिक सेवाश्रम, बाजेगाँव, नांदेड़]।

[श्री प्रा० कुशलदेव शंकरदेव जी वडवलकर के नाम से वेदवाणी के पाठक परिचित हो चुके हैं। गत वर्ष फरवरी और मार्च के अङ्कों में लोकहितवादी श्री गोपालराव हरि देशमुख लिखित 'पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती' शीर्षक महत्त्वपूर्ण लेख का आपके द्वारा किया गया भाषानुवाद और उस पर पाण्डित्यपूर्ण टिप्पणियां छप चुकी हैं। आप महाराष्ट्र आर्यप्रतिनिधि सभा नांदेड़ के उपमन्त्री तथा सुभाष कालेज नांदेड़ में प्राध्यापक पद पर प्रतिष्ठित हैं। आप की ऋ० द० के प्रति गहरी आस्था है। आप ऋ० द० के समकालिक मराठी साहित्य में ऋ० द० के कार्य तथा व्यक्तित्व के विषय में जो कुछ लिखा गया है, उसके शोध में लगे हैं। इसी शोध-कार्य से सम्बद्ध आपके दो महत्त्वपूर्ण लेख वा संकलन हम इस अंक में दे रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि आप इस प्रकार शोध-पूर्ण लेखों वा संकलन के द्वारा मराठी साहित्य में ऋ० द० के सम्बन्ध में जो बिखरी हुई सामग्री है, उसे वेदवाणी के माध्यम से आर्यभाषा (हिन्दी) जाननेवालों को परिचित कराते रहेंगे। आप के द्वारा प्रेषित इस प्रकार के दुर्लभ ऐतिहासिक तथ्यों का हम सदा स्वागत करेंगे। —सम्पादक]

स्वामी जी के पुणे प्रवचन काल में स्थानीय महार, मांग आदि शूद्रों ने स्वामीजी के दर्शन व उपदेशामृत की इच्छा से उन्हें १३ जुलाई सन् १८७५ को एक पत्र भेजा था। वह ईसाइयों द्वारा प्रकाशित होने वाली 'सत्यदीपिका' मासिक के अगस्त सन् १८७५ के अंक में **'प्रस्तुतवृत्त आणि अभिप्राय'** शीर्षक के अन्तर्गत छपा है। हम नीचे मूल मराठी भाषा में लिखे गये पत्र को देकर उसका भाषानुवाद, एवं इस के सम्बन्ध में 'सत्यदीपिका' के अगस्त १८७५ के अंक में पृष्ठ ९५-९६ पर सम्पादक ने जो अभिप्राय लिखा था, मूलरूप में उद्धृतकर, उसका भाषानुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं—

राजमान राजेश्री दयाणंद स्वामी महाराजास वी० वी० कळावे की आपण कलकत्याजे संवस्तान सोडुन आम्हा गरीब दुबळया देशबांधवास अज्ञान अन्धकाराच्या पाशातूण काढण्यास पाऊल पुढे टाकीला आहे. असे आम्ही म्हार, मांग, भांभार व ढोर वगैरे हींदु धरमातील ग्रंथकारांच्या म्हणण्या-प्रमाणे नीच वर्णातील कांही अज्ञाण लोकांनी आपली वार्ता आकिली आहे की आपण जातीभेद ण पाळिता वेदाँतावरुण आपण बहुतेक लोकास जागोजागि उपदेश करीत आला आहात आणि कीतेक लोक आपल्या ऊबदेशांकडुन या ज्ञातिभेद अज्ञाण अन्धककातुण पार पडले असी वार्ता आईकून आम्ही [आ]शाड शुद्ध त्रयोदशी रोज शुक्रवारी सायंकाळी सात वाजता पुणे पेठ जुनागंज येथे मोसीणपुर्यात शुद्रादी अती शुद्रांच्या शाळेमध्ये ऊपदेशासाठी जांगा येका साहेबापासी मागुण घेतली आहे तर आपण कृपा करुण यालच असी आश्या बाळगुण आपणास हे दोण दिवस अगोदर सुचणापत्र लीहीले आहे.

तर आपण कृपा करुण आलाच पाहीजे आणि आम्हास ऊपदेश करुण नीट मार्गास लावावे हा आपला धर्म होये ॥[1]

ता० १३ माहे जुलई स० १८७५.

सही गोवींद तुकाराम मांग वस्ती.
पेठ जुना गंज, दस्तुर खुद.
गनु बणि बाबाजी चाभार
हारी बी ॥ गोपाळ चाभार
माहद्दु सकाराम महार.
भाऊ सकाराम मांग.
रघू व० बापू. महार,

[मराठी पत्र का भाषानुवाद]

राजमान्य राज्यश्री दयानन्द स्वामी महाराज को विशेष प्रार्थना । मालूम हो [हुआ है] कि आप कलकत्ता संस्थान छोड़कर हमारे निर्धन-दुर्बल देशबांधवों [देशवासियों] को अज्ञान अन्धकार के पाश से मुक्त करने के लिये अग्रसर हो चुके हो । ऐसा हम महार, मांग, चमार व ढोर आदि हिंदू धर्म के ग्रन्थकर्त्ताओं के कथनानुसार नीच वर्ण के कुछ अज्ञानी लोगों ने, आपका समाचार सुना है कि आप जाति भेद न मानते (पाळिता) हुए वेदांत [वेदों] के आधार पर, आपने बहुत से लोगों को स्थान-स्थान पर उपदेश देते (करीत) आये हो, और [न जाने] कितने लोग आपके उपदेश से इस जातिभेद के अज्ञान अन्धकार से मुक्त हो गये हैं (पार पडले) । यह समाचार जान कर हमने [आ]-षाढ शुद्ध त्रयोदशी के दिन (रोज) शुक्रवार को सायं ७ बजे पुणे: पेठः जुनागंज के यहां (ये थे) मोमीणपुर में स्थित शूद्र अतिशूद्रों के विद्यालय में [आपके] उपदेश के लिये एक साहब के पास से जगह मांग ली है । इसलिये आप कृपा कर पधारेंगे ही, ऐसी आशा रखकर आपको यह दो दिन पहले सूचना पत्र लिखा है । एतदर्थ आपको कृपा कर पधारना ही चाहिए और हमें उपदेश [दे] कर सन्मार्ग पर लगाना चाहिये । यही आपका धर्म है ॥

ता० १३, महिनाः जुलाई, सन् १८७५
हस्ताक्षरः—गोवींद तुकाराम, मांग वस्ती ।
पेठ जुनागंज, दस्तुर खुद ।
गनु बणि बावाजी चमार ।
हारी बी ॥ गोपाळ चमार ।
माहद्दु सकाराम महार ।
भाऊ सकाराम मांग ।
रघू व० बापू महार ।

१. प्रस्तुत मराठी पत्र में 'न' के स्थान में 'ण' लिखने को तथा ह्रस्व-दीर्घ लिखने की बहुत त्रुटियां हैं। इस का कारण शुद्ध भाषा-ज्ञान से रहित व्यक्तियों द्वारा पत्र लिखना है।

पत्र के सम्बन्ध में सत्यदीपिका के सम्पादक का अभिप्राय

[मासिक— सत्यदीपिका, प्रकाशन काल—अगस्त १८७५, पृष्ठ ६५-६६]

"गेल्या जुलाई महिन्यात पुण्यात पर्जन्याने व दयानंदाच्या व्याख्यानांनी मोठी बहार करून सोडली, आकाशाची पर्जन्य वृष्टि मात्र सर्वांवर झाली, पुण्याच्या आस-पास जो ब्राह्मणांनी, शूद्रांची व महार मांगीची शेत आहेत त्याजवर मेघराजांनी सारखीच कृपा केली, त्याने कोणाचा भेद धरिला नाही, पंडिताची ज्ञानवृष्टि केवल आर्यवंशजावर मात्र झाली, पंडितराव ब्राह्मणाच्या वाड्यात बसून तोंडाने मात्र म्हणाले की, वेद सर्वांकरिता आहेत व सर्वांनी तो पठण करावा, परन्तु त्या प्रमाणे आचरण करून दाखविण्याचा जेव्हा त्यांस प्रसंग आला तेव्हा स्वामीजी टालमटोळा लाविला, वामी मजकूर हे जाति-भेद मानीत नाहीत व सर्वांस ज्ञानामृत सारखेच पाणितात असे विचारया पुण्याच्या मांग महार प्रभृति लोकांनी ऐकून त्यांस वाटले की, आता आमचा उर्जित काल आला. आता आमचे दैव जागृत झाले, हा कोणी आमया संतमाळे पैकी रोहिदास चांभार किंवा चोखा महारच नवीन अवतार धरून आमच्या उद्धारा करिता स्वामिच्या रूपाने अमाच्या पुणे शहरास आला. आता आम्हास पुराण श्रवण नव्हे पण वेदाध्ययन करणयचा अधिकार मिळल व आम्ही गायत्री मन्त्राचा जप करावयास लागू व तरू. अशा मोठ्या आशेने उल्लासित होऊन त्यानी स्वामी स एक विनंती पत्र लिहिले व त्या जवर आपणा-तील प्रमुख गृहस्थांच्या सह्या घेतल्या आणि लाळ घोटीत स्वामीच्या बिऱ्हाडी गेले. ते थे आत त्यांचा प्रवेश कोण होऊ दे तो ? कदाचित बिऱ्हाड परस्वाधीन असल्या मुळे हा प्रतिबंध झाला असेल म्हणून महार मंडल बाहेरच रस्त्यात दारापाशी उभे राहिले, पण तेवढ्या वरून त्यांची उमेद खचली नाही, त्यांस वाटळे की जसा आकाशातील पाऊस आमच्या शेतावर पडला तसा अनादि वेदाचा उपदेश रूप पर्जन्य स्वामी मुखे आमच्या अंतःकरणावर वृष्टि करीलच, आणि जी महार मन भूमिका जला वाचून इतका दीर्घ काल, हडकीह डोळयांतील हाडांप्रमाणे शुष्क राहिली आहे ती आता शिव-पार्वतीच्या बागासारखी फल पुष्पयुक्त होऊन रमणीय दिसू लागोला अशा चातका प्रमाणे वाट पाहत स्वामी द्वारी ते अत्यन्त तनुज तटस्थ उभे राहिले असता काही वेळाने त्यांनी पाठविलेल्या अर्जाचा जाव आकाशमार्गे खाली उतरला, म्हणजे स्वामींजी माडी वरून खिडकीतून खाली फेकला, मग-त्या महांरा-मांगांचा आनंदास कार्य वर्णायाचा ! 'दयानंद स्वामी की जय' । असा गजर करण्याची त्यांस उकळी फुटली असेल. पण त्यात जो शहाणा होता त्याने म्हटले असेल की, अहो प्रथम आपणास कार्य जाव मिळाला तो पाहून मग स्वामीचा जय-जयकार करूं. असे म्हणून त्याने तो लखोटा हाती घेऊन पाहिला तों त्याच्या बाहेरच्या बाजूस 'आम्हांस येणस सवड नाहीं, कलावे'. अशी अक्षरे त्यांच्या दृष्टीस पडली ती वाचतांना त्यांचे हात लटलटा हकू लागले व त्यांची कंवर बसली, ते पाहून दुसरा एक शाहणा म्हणासा असेल की अहो आत उघडून पाहा, स्वामीजी लयना लांब जाव लिवल हये. कागद भारी लागतो. आपल्याला गायत्री मंत्र दिला असेल, मग त्यांनी तो लखोटा उघडला आणि पाहतात तो आपलाच लेखी अर्ज माघारा आला आहे. तो वरपासून खालपर्यन्त न्याहालून पाहता शेवटी ही सोन्याची अक्षरे त्यांस अढळली 'तुमचे पत्र आले ते समजले, परन्तु महाराजांस आम्हास स्वामीस येण्यास सवड नाहीं. कलावे,' ह्याच्या खाली सहीच्या जागी रेघ—······ती योग्यच होती. कारण महार लोकांस लिहिता वाचता येत नाहीं, म्हणून ते सहीच्या जागी—रेघ ओढ तात, व स्वामीच्या पोकल पांडित्यात अर्थ नाहीं, ह्यायाचे सूचक रेघच आहे. रेघेत काय अर्थ आहे. असो.

हा शेरा वाचून जे कोणी स्वामीच्या द्वारापाशी ज्ञानभिक्षा मागावयास मेले होते, ते कुत्र्यास हडकेल्या प्रमाणे खिन्नवदन होऊन स्वगृहाप्रत जाते जाहाले. "इति स्वामी व तस्य होणारे शिष्य पत्र व्यवहाराख्यानं समाप्तमस्तु अ शुभं [भ]वतु"—हे आमचे महार संस्कृत आहे. यांच्या पठणाने कोणास अशौच प्राप्त होईल तर त्याने स्नान करावे. परन्तु ते करण्यापूर्वी हाता सरसा हा पुढील लेख ही वाचून पाहावा, म्हणजे गुंता उरकला. दोन दा स्नान करण्याची खटपट नको. ।

[भाषानुवाद]

गत जुलाई मास में पुणे में [मूसलाधार] बरसात और [स्वामी] दयानन्द के व्याख्यानों के कारण बड़ा अच्छा मौसम रहा । आकाश की पर्जन्य वृष्टि तो सब पर हुई । पुणे के आस-पास ब्राह्मण, शूद्रों और महार मांगों के जो खेत हैं, उन सब पर सेघराज ने किसी प्रकार का भेद भाव न करते हुए, समान रूप से कृपा की । पंडित [दयानन्द] की ज्ञानवृष्टि तो केवल मात्र आर्यवंशजों पर हुई । पंडितश्रेष्ठ ने [तो] ब्राह्मणों के वाड़े [महल] में बैठकर सुख से केवल मात्र यह कह दिया कि, वेद सबके लिए है और सभी का उनका अध्ययन करना चाहिये [आर्य समाज का तीसरा नियम] । परन्तु तदनुसार आचरण करने का जब अवसर आया तब स्वामी [ने] टालमटोल करना शुरू कर दिया ।

स्वामी जी [जाति-पांति के स्तर पर प्रचलित] जाति [गत] भेद-[भाव] नहीं मानते तथा सबको समानरूप से ज्ञानामृत पिलाते हैं । यह सुनकर विचारे पुणे के मांग, महार आदि लोगों को लगा कि—'अब हमारा उत्कर्ष काल आ गया हैं अब हमारा भाग्योदय हो चुका है । यह [स्वामी दयानन्द] कोई हमारी संत परम्परा का रोहिदास चमार अथवा चोखा महार ही नवीन अवतार धारण कर हमारे उद्धार के लिए स्वामीजी के रूप में हमारे पुणे शहर में आया [अवतरित हुआ] है । अब हमें पुराण श्रवण ही नहीं अपितु वेदाध्ययन करने का भी अधिकार मिलेगा । और हम गायत्री मंत्र जप करना प्रारम्भ करेंगे तथा [संसार-सागर से] तर [पार हो] जायेंगे । ऐसी महद् आशा से उल्लसित होकर उन्होंने स्वामीजी को एक अनुरोध-पत्र लिखा, तथा उस पर अपने समाज के प्रमुख सज्जनों के हस्ताक्षर अंकित किए तथा अनुनय-विनय एवं 'जी हां हजूरी' कर (लाळघोटीत) स्वामीजी के निवास स्थान पर पहुंचे । भला वहां पर उनका अन्त:प्रवेश कैसे संभव था ? संभव है निवास स्थान [ऑनरेबल जगन्नाथ उर्फ नाना शंकर सेठ का भवन] दूसरों के अधीन होने के कारण इस प्रकार का [अंतः प्रवेश-निषेध] प्रतिबंध लगा होगा । इसी कारण महार [प्रतिनिधि] मंडल बाहर ही दरवाजे के पास रास्ते में खड़ा रहा । परन्तु ऐसी अवस्था में भी उनकी आशा टूटी नहीं । उन्हें लगा कि जैसे आकाश की वर्षा हमारे खेतों पर हुई, वैसे ही अनादि वेद [ज्ञान] की उपदेश रूपी वृष्टि भी स्वामीजी के मुख से हमारे अंत:करण पर होगी ही । और जो महार मनोभूमि प्रदीर्घकाल से अपावृष्टि होने के कारण (हडकीट डोळयांतील हाडा प्रमाणे) निष्प्राण व्यक्तियों की हड्डियों के समान उपेक्षित, कठोर व शुष्क हो गई है । वह अब शिव-पार्वती के उद्यान के समान फलपुष्पयुक्त होकर रमणीय दीखने लगेगी । इस प्रकार स्वामीजी की चातक के समान दरवाजे पर बाट जोहते शूद्र व्यक्ति तटस्थ भाव से खड़े रहे । कुछ समय बाद उन शूद्रातिशूद्रों द्वारा भेजे गए प्रार्थना-पत्र का उत्तर आकाशमार्ग से नीचे उतरा । अर्थात् स्वामीजी ने पहली मंजिल (माड़ी) की खिड़की से नीचे फेंक दिया । फिर [जवाब पाकर] उन महार-माँगों को जो आनंद हुआ [वह वर्णनातीत है] उसका क्या वर्णन करें । [निश्चित रूप से] उस समय उनकी 'स्वामी दयानन्द की जय' का निनाद करने की हार्दिक इच्छा हुई होगी । परन्तु उनमें जो थोड़ा सा होशियार था उसने कहा होगा—अरे भाई ! पहले प्रार्थना-पत्र का हमें क्या जवाब मिला है, उसे देखेंगे फिर स्वामीजी का जयघोष लगायेंगे ।' ऐसा कहकर उसने वह

लिफाफा (लखोटा) अपने हाथ में लेकर देखा तो उसके बाहर की ओर ही लिखा मिला कि—'विदित हो कि—हमारे पास आने के लिए समय नहीं है।' इस (उत्तर को) पढते समय उनके हाथ थर-थर कांपने लगे और वे निराश और भय-भीत हो गए(त्यांची कंबर बसली)। यह देखकर दूसरे एक चतुर व्यक्ति ने कहा होगा कि—'अरे भाई जरा अंदर खोलकर देखो तो स्वामीजी ने बहुत विस्तार से जवाब लिखा है। [लिफाफा] कागज भारी नजर आता है। अपने लिए गायत्री मंत्र दिया होगा।' फिर उन्होंने वह लिफाफा खोला और देखा तो पाया कि अपना ही लिखित प्रार्थना-पत्र वापिस लौट आया है। जब ऊपर से नीचे तक [लिफाफे को] ध्यान से देखा तो अंत में उन्हें स्वर्णाक्षरों में [निम्न] लिखित संदेश प्राप्त हुआ।

'तुम्हारा पत्र मिला। [आशय] समझा, परन्तु हमारे स्वामी महाराज के पास आने के लिए समय नहीं है। मालूम हो।'

इस पत्र के नीचे हस्ताक्षर की जगह रेखा——थी। जो योग्य ही थी, क्योंकि महार लोगों को पढना-लिखना नहीं आता, इसलिए वे हस्ताक्षर के स्थान पर— रेखा खींचते हैं। और [साथ हो] स्वामीजी के विस्तार पाँडित्य में [भी] कोई अर्थ नहीं है। [प्रस्तुत] रेखा ही इसकी सूचक है। [इस] रेखा में क्या अर्थ है ? अस्तु !

जो कोई स्वामीजी के दरवाजे पर ज्ञानभिक्षा मांगने के लिये गए हुए थे वे [स्वामीजी के] इस वक्तव्य अभिप्राय आशय(शेरा) को पढकर वे कुत्ते को हडकाने [बहिष्कृत किए जाने] के समान खिन्नवदन हो अपने घर की ओर वापिस लौट पड़े।

(।। इति स्वामी व तस्य होणारे शिष्य पत्र व्यवहाराख्यानं समाप्तमस्तु अशुभं भवतु ।।) ।। यह स्वामीजी और उनके होने वाले शिष्यों की पत्र-व्यवहार कथा समाप्त हुई। अशुभं भवतु ।।

यह हमारी महार संस्कृत है। इसके अध्ययन से यदि कोई अपवित्रता को प्राप्त होता है तो उसे [गंगा) स्नान करना चाहिए। परन्तु वह स्नान करने से पूर्व [साथ में संलग्न एक साथ ही] हाथ में लगा सो (हाता सरसा) यह अग्रिम लेख भी पढ लेना चाहिये (वाचून पहावा)। अर्थात् उलझन सुलझ जायेगी। दो बार स्नान करने की [निरर्थक] मेहनत करने की जरूरत नहीं।

[टिप्पणी—महार लोगों ने १३ जुलाई १८७५ को स्वामीजी के नाम जो पत्र भेजा था उसमें आषाढ़ शु० १३ शी शुक्रवार (=१६ जुलाई) को व्याख्यान के लिये स्थान आरक्षित करने और व्याख्यान देकर कृतार्थ करने की प्रार्थना की है। यत: स्थान आरक्षित कर लिया गया था अत: व्याख्यान नियत दिन ही हुआ होगा। परन्तु ईसाईमतानुयायी सम्पादक ने महार मांग आदिजनों की सभा में व्याख्यान होने की सूचना न छाप कर महार मांग आदि अतिशूद्र जनों को भड़काने की नियत से अपने उपरिनिर्दिष्ट कलुषित विचार प्रकट किये। परन्तु जब उसने देखा कि 'महारादि लोगों की सभा में व्याख्यान देने की असलियत छिपाई नहीं जा सकती तो उसे 'सत्यदीपिका'के अक्टूबर सन् १८७५, पुस्तक ३×अङ्क ८ के पृष्ठ १२५ पर दबे शब्दों में लिखना पड़ा—]

महारांची सभा

आम्ही गेल्या अंकात दयानन्दास पुण्याच्या महार लोकांचा अर्ज न त्याजवर जे स्वमत छापून प्रसिद्ध केले होते ते त्या पंडितास कोणी नेऊन वाचून दाखविले, आता आमच्या समजण्यात असे आले आहे की, सदरहू महाराच्या सभेत सदरहू पंडिताने व्याख्यान दिले, परन्तु त्या विषयीची कच्ची हकीकत अद्याप आम्हांस समजली नाही,

महारों की सभा

हमने गत अंक में पुणे महार लोगों का दयानन्द [को लिखित]प्रार्थना-पत्र और उस पर स्व-मत छापकर प्रकाशित किया था। वह उस पंडित [दयानन्द स्वामी] को किसी ने ले जाकर पढ़कर [सुना] दिखा दिया। अब हमारी समझ में यह आया है कि प्रस्तुत महारों की सभा में उक्त पंडित ने व्याख्यान दिया, परन्तु उस विषयक कोई प्राथमिक विवरण (हकीकत) अभी तक हमें समझा नहीं है [प्राप्त नहीं हुआ है]।

सौजन्य-आभार—शासकीय ग्रंथालय-पत्र-पत्रिका विभाग—गोखले हाल, लक्ष्मी रोड, पुणे (से माननीय डा० गो० रा० कामतकर जी ने हस्तलिखित प्रति बनाकर बड़ी ही तत्परता से अनुवादक कु० शं० वडवलकर के पास भेजी)। मूल रूप में पुणे निवासी, परन्तु १६-१७ वर्षों से नांदेड़ के पीपल्स कालेज में हिन्दी प्राध्यापक डा० भास्कर गणेश महामुनि जी ने गो० रा० कामतकर लिखित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती जी पुण्यातील व्याख्यान' शीर्षक लेख वाला 'प्रतिष्ठान' मासिक (जुलै—अगस्त १९८२) मुझे भेंट किया। जिस कारण ऋषि दयानन्द को भेजे गए मूल पत्र की खोज शुरु हुई। प्रथम म० श्री दीक्षित पुणे, फिर 'प्रतिष्ठान' संपादक औरंगाबाद से गो० रा० कामतकर जी का पता ज्ञात हुआ। अब वह पत्र रामलाल कपूर ट्रस्ट की शोध पत्रिका 'वेदवाणी' के माध्यम से हिंदी पाठकों के समक्ष आ रहा है। अतः डा० भा० ग० महामुनि, संपादक 'प्रतिष्ठान' मासिक औरंगाबाद, म० श्री. दीक्षित श्री गो० रा० कामतकर,शासकीय ग्रंथालय, गोखले हाल, पुणे, के हार्दिक आभार।

शीर्षक— प्रस्तुत "वृत्त आणि अभिप्राय" यह शीर्षक मैंने सत्यदीपिका के १८७६ वर्षीय अंकों के आधार पर दिया है। प्रायः सभी अंकों में संपादक ने नवनवीन घटनाओं पर उपर्युक्त शीर्षक देकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया है।

प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर, वैदिक सेवाश्रम, नादेड़।

—:o:—

आर्यसमाज को 'दयानन्द-पन्थ' बनने से बचाओ

युधिष्ठिर मीमांसक बहालगढ़, (सोनीपत)

[यद्यपि अनेक व्यक्ति लेख का शीर्षक देखकर भड़केंगे, तथापि हमारा अनुरोध है कि इस लेख में हमने व्यक्ति विशेष का नाम न देकर जो तथ्य सामने रक्खे हैं, उन पर आर्यविद्वान् तथा आर्यजनता गम्भीरता से विचार करें। यदि लेख में प्रस्तुत की गई विचारधारा को समय रहते नहीं रोका गया तो, शीघ्र ही सचाई सामने उपस्थित हो जायेगी। लेखक]।

ऋषि दयानन्द क्रान्तदर्शी अर्थात् भविष्य के द्रष्टा थे। इस विषय के अनेक प्रमाण ऋ० द० के पत्रों और उनके जीवन चरितों में उपलब्ध होते हैं। उन्हें यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं। हम जो बात कहना चाहते हैं उस के सम्बन्ध में अर्थात् आर्यसमाज की स्थापना की स्वीकृति देते
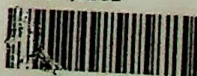
समय उन्होंने जो अपने नाम से मतवाद चलने की आशंका व्यक्त की थी तथा आर्यसमाज स्थापना के इच्छुक अपने अनुयायियों को जो महत्त्वपूर्ण चेतावनी दी थी उसे हम **'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास'** जो सन् १९३३ में छपा था, से उद्धृत करते हैं। आशा है समय रहते इस चेतावनी पर ध्यान देकर आर्य-विद्वान् आर्यसमाज को 'दयानन्द-मत' बनने से बचाने का प्रयत्न करेंगे।

मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास, पृष्ठ ८-९

......त्यारबाद (शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराभव के पश्चात्) एमना निवास स्थान मा एमने माटे मान धरावता मुम्बई ना सम्भावित गृहस्थी ए जाई ने धार्मिक चर्चा करता करता मुम्बई मां आर्यसमाजस्थापन करवानी स्वामीजी ने विनंत्ति करी। त्यारे एमणे सर्वने उद्देशी ने स्पष्ट जणावी दीधुं के' (उसके बाद [शास्त्रार्थ में जीवन जी के पराजय के पश्चात्] इनके निवासस्थान पर इनके प्रति सम्मान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामीजी से प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सब को उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि—)

"भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं मैं तो वेद के अधीन हुं और हमारे भारत में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई कई बात में किसी किसी में कुछ कुछ भेद है, सो विचार करने से आप ही छूट जायेगा। मैं संन्यासी हुं और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हुं इसके बदले जो सत्य समझता हुं उसका निर्भयता से ऊपदेश करता हुं मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हुं। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा नीन्दा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हुं, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है।'[1]

त्यारे एक भाई ए कह्युं के अमे जो समाज स्थापन करीए, तो एमां कोई सार्वजनिक नुकसान छे ? ते नो जवाब स्वामी जीए दीधो के—(एक भाई ने कहा कि हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें सार्वजनिक नुकसान है ? इसका जवाब स्वामी जी ने दिया कि)—

"आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज करलो इस में मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गडबडाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हुं वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं हैं। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हुं। इस से यदि कोई मेरी गलती आगे पाइ जाए युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना। यदि ऐसा कोई न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा, और इसी प्रकार से बाबावाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मत-मतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि ईस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित है वौ भी वे सब वेदों को मानते हैं, ईस से वेदशास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और

---

१. ऋषि दयानन्द का यह कथन 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' में आर्यभाषा और नागरी लिपि में छपा है। भाषा ऋ० द० की अपनी गुजराती मिश्रित है।

धर्म ऐक्यता में सांसारिक और व्यवहारिक सुधारणा होगी और ईससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ठ सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थकाम और मोक्ष मील सकता हैं[1]।

दयानन्द की आशङ्का वास्तविकता में बदल रही है

लगभग ३०-३५ वर्ष से मैं देख रहा हूं कि आर्यसमाज में कुछ व्यक्ति दयानन्द के मूल सिद्धान्त, जिसे उन्होंने ऊपर उदधृत अपने कथन में व्यक्त किया है तथा आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में **'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये'** घोषित किया है, को भुलाया जा रहा है। इस के स्थान में स्वाध्याय-हीन दयानन्द के मन्तव्यों को यथावत् न जानने वाले दयानन्द के प्रति भक्ति-प्रवण आर्य व्यक्तियों को दयानन्द के नाम पर भ्रान्ति में डालकर नित नये वाद खड़े किये जा रहे हैं।

वेद के पीछे दयानन्द चलेगा या दयानन्द के पीछे वेद

आज तक आर्यसमाज की मान्यता रही है कि वेदों के पाठ में स्वर अक्षर मात्रा का भी परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु अब कतिपय व्यक्ति वेद को भी 'दयानन्द का वेद और पौराणिकों का वेद' के रूप में बाँटने का स्वप्न देखने लगे हैं। एक महानुभाव ने पत्र द्वारा पूछा कि ऋग्वेद में एक पौराणिक **देवकामा** पाठ के स्थान में **देवृकामा** दयानन्द सम्मत पाठ है। क्या इस प्रकार के ऋग्वेद में दयानन्द सम्मत और पाठ भी हैं? मुझे इस पत्र को पढ़ कर बड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक आर्यसमाज 'वेद में पाठ परिवर्तन नहीं हुआ' इसके प्रमाण के लिये परम्परागत वेद को कण्ठस्थ रखने वाले व्यक्तियों के पाठ को ही आधार मानता चला आया है। यही नहीं, बम्बई-शास्त्रार्थ में जब पौराणिक विद्वान् ने **न तस्य प्रतिमा अस्ति** मन्त्र का **'नतस्य'**=भक्तों के प्रति झुके हुए भगवान् की **'प्रतिमा अस्ति'** मूर्ति है, ऐसा अर्थ किया तो आर्यसमाज की ओर से वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर उन से पदपाठ और क्रमपाठ पढ़वाकर प्रमाणित किया कि **'नतस्य'** एक पद नहीं है **'न तस्य'** दो पद हैं। इस प्रकार आर्यसमाज ने उस शास्त्रार्थ में विजय पाई थी।

ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य में मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद और सायण-भाष्य के कारण अनेक स्थानों में पाठ की अशुद्धियां हैं। और प्रायः मैक्समूलरीय सायण-भाष्य के पाठ के अनुसार ही अर्थ भी किया गया है। यथा—

मैक्समूलर-पाठ	वैदिक-पाठ
स्यन्द्रा (१।१८०।६॥५।५२।८)	स्पन्द्रा
स्यन्द्रासो (५।५२।३।५।८७।३)	स्पन्द्रासो
स्यन्द्रो (६।१२।५)	स्पन्द्रो
मथ्ना (१।१८१।५)	मथ्रा

१. यह अंश भी पूर्ववत् आर्यभाषा वा देवनागरी लिपि में छपा है।

इन मैक्समूलरीय पाठों में से ऋ० द० के भाष्य में केवल ऋ० १।१८०।५ के भाष्य में **स्पन्द्रा** शुद्ध पाठ मिलता है, अन्यत्र **स्यन्द्रा स्यन्द्रो स्यन्द्रासः** और **मथ्ना** पाठ ही है। मैक्समूलरीय पाठ का प्रभाव वैदिक संशोधन मण्डल से छपे सायणभाष्य (प्र० सं०) के १।१८०।६ में देखा जा सकता है। आगे वहीं के छपे सायण भाष्य में शुद्धपाठ ही छपा है।

'स्यन्द्रा' आदि अपपाठ का कारण है हस्तलेखों में 'य' और 'प' के लेखन की साम्यता। मैक्स-मूलर ने केवल हस्तलेखों के आधार पर संपादन कार्य किया था, वेदपाठी तो कोई उसके पास था नहीं। अतः उसने 'प' को 'य' पढ़ लिया। इसी प्रकार 'मथ्ना' और 'मथ्रा' में थकार के नीचे लगे नकार वा रकार के लेखन में भी किञ्चिन्मात्र ही भेद होता है। मैक्समूलर ने 'मथ्नाति' क्रिया के साम्य से 'मथ्रा' को 'मथ्ना' पढा।

[इस प्रसंग में हमने ऋग्वेदीय मन्त्र में संस्कारविधि में पठित 'देवृकामा' पाठ को इसलिये उपस्थित नहीं किया कि इस लेख में उद्धृत अन्य पाठभेदों के विषय में जो मन्तव्य प्रामाणिक माना जायेगा, तदनुसार ही इस की भी व्यवस्था स्वीकृत होगी]।

यहां विचारणीय है कि हम वैदिकों के पाठ को वेद का मूल पाठ मानें अथवा मैक्समूलरीय पाठ के अनुसार ऋषि दयानन्द के भाष्य में छपे पाठ को 'दयानन्दीय पाठ' मानकर प्रामाणिक समझें।

इससे भी भयानक दो उदाहरण ऋ० द० के यजुर्वेद भाष्य से नीचे उपस्थित किये जाते है—

२. यजुर्वेद १२।४७ में एक पद है—**सहस्रियम्**। अजमेर के छपे भाष्य में मन्त्रपाठ पदपाठ में **सहस्त्रियम्** पाठ छपा है। और पदार्थ में **(सहस्त्रियम्)** सहप्राप्तां **भार्याम्**। **इसी प्रकार** भाषापदार्थ में भी छपा है—**(सहस्त्रियम्) साथ वर्तमान अपनी स्त्री** को। क्या यहां दयानन्द के यजुर्वेद का **सह-स्त्रियम्** पाठ माना जाये? यजुर्वेदभाष्यभास्कर के सम्पादक ने **गतानुगतिको लोको न लोकः पार-मार्थिकः** के अनुसार अजमेरीय पाठ का ही अनुकरण किया है।

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'राजप्रजाधर्म विषय' में यजुर्वेद अ० २० का २५ वां मन्त्र ब्रह्म च क्षत्रं च उद्धृत किया है। इस में **तं लोकं पुण्यं यज्ञेषं** पाठ देकर **यज्ञकरणेच्छा-विशिष्टम्** अर्थ किया है। यजुर्वेद भाष्य में **प्र ज्ञेषं** पाठ (जो परम्परागत शुद्ध पाठ है) मानकर **(प्र) (ज्ञेषम्) जानीयाम** पदार्थ लिखा है।

भूमिका और यजुर्वेदभाष्य में **यज्ञेषं** और **प्रज्ञेषं** दो पाठ मानकर व्याख्या की गई है तो क्या दयानन्द के मत में दोनों पाठ माने जायें? इसका स्पष्ट अर्थ है वेद में पाठ भेद हो गया था, ऋ० द० निर्णय नहीं कर सके कि कौन सा ठीक है अतः उन्होंने दोनों पदों का दो प्रकार का अर्थ कर दिया। दूसरे शब्दों में वेद के शुद्ध पाठ निश्चय में दयानन्द प्रमाण है, दयानन्द के पीछे वेद को 'चलना या चलाना' पड़ेगा अर्थात् घोड़े के आगे तांगा जोड़ा जाये या तांगे के आगे घोड़ा? क्या दयानन्द के पीछे वेद को चलना दयानन्द-अभिमत स्थिति होगी।

४. ऋ० द० ने यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ में २५वें अध्याय में ४७ मन्त्र मानकर (जो शुद्ध है) पूर्ण मन्त्रयोग १९७५ लिखा है। परन्तु भाष्य करते समय ४६वें मन्त्र के आगे ४७वें मन्त्र की—

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।

इन तीन द्विपदाओं के साथ **स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्** द्विपदा और जुड़ गई। इसके जुड़ जाने से चार द्विपदाओं के दो मन्त्र बन कर संख्या ४७ के स्थान में ४८ हो गई।

यहां यह विचारणीय है कि ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद के भाष्य के आरम्भ में **२५ वें अध्याय** में ४७ संख्या लिख कर पूर्णयोग १९७५ लिखा है, उसे शुद्ध मानें या भाष्य के अनुसार ४८ मन्त्र मानकर पूर्णयोग १९७६ स्वीकार करें। इस प्रसंग में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है—४७वें मन्त्र का भाष्य में **शक्वरी छन्द** लिखा है। शक्वरी छन्द में ५६ अक्षर होते हैं। यह अक्षर संख्या भाष्य में छपे ४७वें मन्त्र की दो द्विपदाओं में पूर्ण नहीं होती। यदि परम्परानुसार ४७वें मन्त्र में **'अग्ने त्वन्नोः 'वसुरग्नि' 'तं त्वा शोचिष्ठ'** तीन द्विपदाएं मानी जायं तो ५६ अक्षर पूरे हो जाते हैं। इस से विदित होता है कि जब छन्दोनिर्देश के लिये मन्त्र के अक्षरों की गणना की गई थी तब ४७वें मन्त्र में उपर्युक्त तीन द्विपदाओं का पाठ स्वीकार किया था। चौथी द्विपदा को जोड़कर दो मन्त्र बनाने पर **शक्वरी छन्द** का निर्देश अशुद्ध हो जाता है।

यजुर्वेदभाष्यभास्कर में अजमेरीय संस्करण का **मक्खी पर मक्खी मारना** मुहावरे के अनुसार जैसे का तैसा ही छापा है। जो संख्या भेद और छन्दोभेद होता है उस पर अपने विचार प्रकट नहीं किये। क्या यही सम्पादक का कर्त्तव्य है कि आंख मूंदकर मक्खी पर मक्खी मारी जाय? वास्तविकता यह है कि यदि सम्पादक महोदय इन समस्याओं पर विचार करके एक पक्ष की युक्तता दर्शाते तो उनकी ऋषि-भक्ति पर आंच आती थी। उन के मतानुसार वे भी दयानन्द-विरोधी बन जाते। अतः उन्होंने **मौनं सर्वार्थसाधकम्** का आश्रय लिया। ऐसा करने पर भी विज्ञ पुरुषों की दृष्टि में क्या समझे जा सकते हैं यह 'मौन किसका भूषण है ?' उत्तर वाली सूक्ति से प्रकट हो जाता है।

४. ऋषि दयानन्द ने जिन ग्रन्थों की रचना मूलतः संस्कृत भाषा में की उनका भाषानुवाद पण्डितों द्वारा कराया हुआ है। परन्तु इस विषय में भी दो सम्प्रदाय हैं।—एक का कहना है कि भाषानुवाद भी ऋ० द० का ही है और संस्कृतवत् प्रमाण है। क्योंकि ऋषि दयानन्द ने लिखा है—**संस्कृतप्राकृताभ्यां भाषाभ्यामन्वितम्**। इस मत वाले ऋ० द० के उन सभी पत्रों को जाली कहते है जिन में पण्डितों से भाषानुवाद कराने का उल्लेख है। दूसरे सम्प्रदाय का कहना है—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भाषा ऋषि दयानन्द की स्वलिखित है और वेदभाष्य की भाषा पण्डितों ने बनाई है अतः उसको संस्कृत के अनुसार शुद्ध कर देना चाहिये। अत एव यजुर्वेद-भाष्यभास्कर और ऋग्वेदभाष्यभास्कर बनाने वाले ने दोनों भाष्यों की भाषा बदल दी है।

प्रथम सम्प्रदाय का ऋ० द० के पत्रों को जाली कहना इनके संग्राहक व सम्पादक पं० लेखराम, म० मुन्शीराम, पं० भगवद्दत्त, पं० चमूपति और महाशय मामराज को जालसाजी करने वाला कहने के समान है। भला इन महानुभावों का अपना क्या स्वार्थ था जो इन्होंने इतने पत्र जाली बनाये ?

दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों के मत में कोई प्रमाण नहीं। स्वपक्ष सिद्धि के लिये सर्वमान्य पञ्चावयव वाक्यों में एक दृष्टान्त वाक्य भी है जो उपमान प्रमाण के अन्तर्गत आता है। जैसे—पर्वतो वह्निमान्, धूमदर्शनात्, महानसवत् यथा महानसो धूमयोगात् वह्निमान् तथा पर्वतः, तस्मात् पर्वतो वह्निमान्। कई तार्किक केवल तीन वाक्य ही मानते हैं, परन्तु प्रतिज्ञा की सिद्धि में हेतु और उदाहरण (दृष्टान्त) देना आवश्यक है। अब जो व्यक्ति 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भाषा ऋषि दयानन्द कृत है' इस सिद्धान्त को स्थापित करना चाहता है उसे ऋषि दयानन्द के किसी ऐसे ग्रन्थ का उदाहरण देना चाहिये जिसकी संस्कृत और भाषा दोनों उभय पक्ष को निर्विवाद रूप से स्वीकृत हो क्योंकि नैयायिक उसी उदाहरण (दृष्टान्त) को पक्ष-सिद्धि में कारण मानते है जो उभय पक्ष सम्मत हो। जो पक्ष अपने हेतु में उभय पक्ष सम्मत दृष्टान्त न दे सके उसे अप्रमाण माना जाता है।

हम ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का एक ऐसा उद्धरण उपस्थित करते हैं जिस पर भूमिका की भाषा को दयानन्द कृत मान कर अक्षरशः प्रमाण मानने वा मनवाने वालों को भी विचार करना पड़ेगा।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में 'वेद विषय विचार' प्रकरण पृष्ठ ३४६ (अजमेरीय शताब्दी सं० सन् १९२५) में लिखा है—

"ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, और मन्त्र ये मूर्ति रहित देव हैं। तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां विजली और विधि-यज्ञ ये सब देव मूर्तिमान् और अमूर्तिमान् भी हैं"

यहां इन्द्रियों को मूर्त्तिमान् और अमूर्त्तिमान् दो प्रकार का लिखा है और इस की टिप्पणी लिखी है—

"इन्द्रियों की शक्ति रूप द्रव्य अमूर्त्तिमान् और गोलक मूर्त्तिमान् तथा विद्युत् और विधि-यज्ञ में जो जो शब्द तथा ज्ञान अमूर्त्तिमान् और दर्शन तथा सामग्री मूर्त्तिमान् जाननी चाहिये॥"

संस्कृत भाग में इस प्रकरण में निम्न पाठ है—

"एवमेकादशरुद्रा द्वादशादित्या मनः षष्ठानि ज्ञानेन्द्रियाणि वायुरन्तरिक्षं द्यौर्मन्त्रश्चेति शरीर-रहिताः……।"

यहां पांच ज्ञानेन्द्रियों को अशरीर स्पष्ट लिखा है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार भी ज्ञानेन्द्रियां अशरीरी हैं, वाह्य गोलक केवल इन्द्रियों के अधिष्ठानमात्र माने जाते हैं, इन्द्रियां नहीं।

इस भेद का कारण इस प्रकार है—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की ६ हस्तलिखित कापियां हैं, जिनमें उत्तरोत्तर क्रमशः संशोधन परिवर्धन और परिवर्तन हुआ है। इस स्थल का जो भाषानुवाद छपा हुआ मिलता है, उसकी **मूल संस्कृत भूमिका की चौथी प्रति में उपलब्ध होती है, अगली प्रति में उस संस्कृत को काट कर वर्तमान संस्कृत के अनुरूप कर दिया,** परन्तु पण्डितों ने ऋषि के द्वारा किये गये संस्कृत के संशोधन के अनुसार भाषा में कोई संशोधन नहीं किया और प्रेसकापी पर्यन्त (अगली दो तीन प्रतियों में भी) उसी कटी हुई संस्कृत के अनुवाद की प्रतिलिपि करते रहे। अत एव मुद्रित संस्करणों में भी वही अपरिवर्तित अशुद्ध पाठ उपलब्ध होता है।

हमने ऋ० द० के हस्तलेखों का सूक्ष्मता से निरीक्षण और हस्तलेखों से मिलान किया है। सम्पूर्ण यजुर्वेदभाष्य और ऋग्वेदभाष्य के प्रथम मण्डल के ६१ वें सूक्त तक सभी कापियों से मिलान करने पर मुद्रित ग्रन्थ के साथ जो जो पाठ भेद मिले लिख लिये हैं। यह कार्य पूज्य गुरुवर श्री पं० ब्रह्मदत्त जी के साथ मिलकर सन् १९३१ तथा १९३५ में किया था (कुछ कार्य पीछे से मेरे गुरु भाई श्री पं० याज्ञवल्क्य जी ने करके भेजा था)। सन् १९३५ में ही ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उस समय तक ध्यान में आये भ्रष्ट पाठों को भी देखा। ऊपर निर्दिष्ट भाषानुवाद और संस्कृत भाग की विषमता का कारण जानने के लिये भूमिका की सभी कापियों को देखनें पर उपयुक्त तथ्य उद्घाटित हुआ। पूर्व लिखित सम्पूर्ण मिलान कार्य को करने से यह हस्तामलकवत् स्पष्ट हो गया कि संस्कृत भाग में जहां अशुद्धियां हैं और भाषानुवाद में संस्कृत से भिन्नता है उन सब का मूल कारण पण्डितों की असावधानता है। ऋषि दयानन्द कुछ भाग का संशोधन करके तदनुसार पूरा संशोधन करने का कार्य पण्डितों पर छोड़ देते थे। पण्डित लोग जानबूझकर[1] अथवा प्रमाद वश उनके निर्देशों का पालन नहीं करते थे। इस का भी हम एक उदाहरण दे रहे हैं। यजुर्वेद भाष्य के आठवें अध्याय के १४वें मन्त्र की प्रेस कापी के पृष्ठ १०२ के मार्जन (हाशिये) पर ऋ० द० ने स्वहस्त से एक आवश्यक टिप्पणी लिखी थी जो इस प्रकार है—

"सर्वत्र त्वष्टा ही है। इस को मन्त्र और पद [पाठ] में 'त्वष्ट्रा' को ही शोध के त्वष्टा बना ही दिया। **जिसे हम करते हैं वह तो ठीक होता है, जो दूसरों से कराते हैं वही गड़बड़ होता है।** हम ने मन्त्र और पद [पाठ] शोधा था सो शुद्ध है, **बाकी पण्डितों से शोधवाया था वही अशुद्ध रहा।**"

इस टिप्पणी के पश्चात् भी संस्कृत पदार्थ में **त्वष्ट्रा** तृतीयान्त का **तनूकर्त्री** और भाषा पदार्थ में (त्वष्ट्रा) छपता रहा।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपरि-निर्दिष्ट संस्कृत पाठ और भाषा पाठ में अन्तर होने पर भी भूमिका की भाषा को ऋषि दयानन्द कृत मानने और सिद्ध करने का प्रयत्न करना बहुत से सिद्धान्त-विरुद्ध और शास्त्र-विरुद्ध लेखों का उत्तरदायित्व डालना अप्रत्यक्ष रूप में स्वामी दयानन्द को मूर्ख सिद्ध करना है। हमारा लिखने का प्रयोजन इतना ही है कि—

१—दयानन्द के पीछे वेद को नहीं चलाना चाहिये। वेद के पीछे दयानन्द को चलाना चाहिये, अर्थात् ऋ० द० के ग्रन्थों में मन्त्रों के जो पाठ परम्परागत नहीं हैं। किन्हीं कारणों से भ्रष्ट हो गये हैं, उन्हें दयानन्द-सम्मत या दयानन्द-ऊहित पाठ की कल्पना करना दयानन्द के पीछे वेद को चलाना माना जायेगा। इस अवस्था में दयानन्द और सब ऋषियों मुनियों को **'वेद स्वतः प्रमाण हैं'** मत खण्डित होकर वेद दयानन्द के पराधीन होने से परतः प्रमाण हो जायेगा।

२—जिन ग्रन्थों को ऋ० द० ने मूलतः संस्कृत में लिखा है उन को भाषा पण्डितों ने की है, इस को न मान कर 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को ऋ० द० कृत तथा अन्यों की भाषा पण्डितों की है' अर्धजरतीय न्याय अथवा 'आधा तीतर आधा बटेर' स्वीकार करने सदृश है। इस में हम ने एक भूमिका

---

१. भीमसेन आदि पण्डितों के विषय में ऋ० द० तथा अन्य व्यक्तियों के लेख हमारे ऋ० द० सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ के नये संस्करण के 'ऋ० द० के सहयोगी पण्डित, शीर्षक ९वें परिशिष्ट में देखें।

का महत्त्वपूर्ण स्थल जहां संस्कृत पाठ और भाषा पाठ में अन्तर है, का प्रमाण देकर दर्शाया है कि संस्कृत पाठ का ऋ० द० के संशोधन कर देने पर भी पण्डित लोग भाषा का यथोचित संशोधन नहीं करते थे।

३. दयानन्द के सहयोगियों की लापरवाही और अज्ञान से उनके वेदभाष्य के भाषानुवाद में कैसी भूलें होती थीं अथवा करते थे, के विषय में दयानन्द के अनेक पत्र देखे जा सकते हैं।

४. दयानन्द के द्वारा कुछ अंश शोध कर तदनुसार शेष अंश को शोधने का निर्देश करने पर भी पण्डित लोग प्रमाद से अथवा जानबूझकर उचित संशोधन नहीं करते थे (इस विषय में ऋ० द० की टिप्पणी ऊपर छाप चुके हैं)।

इन सब परिस्थितियों पर ध्यान न देकर केवल दयानन्द के नाम पर उनके ग्रन्थ में छपी भूलों को स्वीकार कराने अथवा जो स्वीकार न करे उस के लिये दयानन्द विरोधी का फतवा देने का प्रयत्न करना ऋषि-भक्ति प्रवण साधारणजनों में अपनी ऋषि-भक्ति का नगारा पीटना अथवा अपने विशिष्ट पाण्डित्य की घोषणा के अतिरिक्त कुछ महत्त्व नहीं रखता। फिर भी ऐसे लोगों और इनके अनुयायियों से आयसमाज को यह खतरा अवश्य उत्पन्न हो गया है कि आर्यसमाज शीघ्र ही 'दयानन्द मत' के रूप में परिणत हो जायेगा।

इस दयानन्द अनभीष्ट स्थिति के बचाने का उत्तरदायित्व आर्यसमाज के विद्वानों का है। यही सोचकर मैंने यह लेख लिखा है किसी व्यक्ति विशेष का विरोध करने की भावना से नहीं लिखा है। आर्यसमाज के मूर्धन्यविद्वान् इस मूलभूत समस्या पर गम्भीरता से विचार करें। इसी दृष्टि से उनका ध्यान आकृष्ट करने का यह क्षुद्र प्रयत्न किया है।

—:o:—

ऋषि दयानन्द का पत्र-साहित्य और तद्विषयक साहित्य के इतिहास-लेखकों की टिप्पणियाँ

[लेखक – डा० कमल पुंजाणी, व्याख्याता–हिन्दी विभाग, श्री वी० एम० महेता म्युनिसिपल कालेज, जामनगर (गुजरात) ३६१००१]

ऋषि दयानन्द सरस्वती बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महामानव थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का यथार्थ परिचय हमें उनके पत्र-साहित्य के अध्ययन से प्राप्त होता है।

भारतीय पुनर्जागरण के आन्दोलन में धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों का नेतृत्व धारण करने के कारण ऋषि दयानन्द को देश के विशाल जन समुदाय के सम्पर्क में आना पड़ा। फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों से उनका पत्र-व्यवहार उत्तरोत्तर बढ़ता गया। पहले वे संस्कृत में पत्र लिखते थे अथवा लिखने को कह देते थे, किन्तु सन् १८७३ ई० के उत्तरार्द्ध से नियमितरूप से उनका हिन्दी

पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ और अन्त तक चलता रहा । यही विस्तृत पत्र-व्यवहार उनके देहावसान के बाद शनैः शनैः पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने लगा । अब तक उपलब्ध उनके पत्र-साहित्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

क्रम	पुस्तक	सम्पादक	प्रकाशन वर्ष
१	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१	महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)	१९१० ई०
२	ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन भाग-१	पं० भगवद्दत्त	१९१८ ई०
३	,, ,, ,, भाग-२	,, ,,	१९१९ ई०
४	,, ,, ,, भाग-३	,, ,,	१९२७ ई०
५	,, ,, ,, भाग-४	,, ,,	,, ,,
६	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-२	पं० चमूपति	१९३५ ई०

इन संग्रहों के पत्रों तथा विविध संस्थाओं एवं कार्यकलाओं से प्राप्त नये पत्रों को एक बृहद् ग्रंथ के अन्तर्गत संकलित कर प्रकाशित करने का श्रेय श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट को है । इस ट्रस्ट के द्वारा अब तक 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' शीर्षक पत्र-संग्रह के तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं और चौथा भाग प्रकाशित होने जा रहा है ।[1] इन पत्र-संग्रहों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी की मननीय भूमिका तथा सारगर्भित टिप्पणियां हैं । पत्रों के रसास्वादन में इनसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है ।

इस प्रकार इन पत्र-संग्रहों के प्रकाशन से पं० भगवदत्त जी का यह शुभ संकल्प कि "ऋषि के लिखे एक-एक शब्द का सुरक्षित करना आवश्यक है", साकार हो गया है ।

जब हम ऋषि के पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों की टिप्पणियों का अवलोकन करते हैं, तब हमें पता चलता है कि बहुत से इतिहास लेखकों ने तो "पत्र-साहित्य" नामक विद्या का उल्लेख ही नहीं किया । जिन्होंने ऐसा उल्लेख किया है, उन्होंने ऋषि के पत्र-साहित्य के बारे में जानकारी नहीं दी और जिन्होंने जानकारी दी है, उनमें अनेक असंगतियां हैं । जैसे—

डा० हरवंशलाल शर्मा द्वारा सम्पादित "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास" चतुर्दश भाग के खण्ड-६ में पत्र-साहित्य नामक एक अध्याय दिया गया है । इस अध्याय में पत्र- साहित्य के इतिहास को स्पष्ट करते हुए कहा गया है:—

"जब हम पत्र-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि प्रक्षेप करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि किसी पत्र-संग्रह को सर्वप्रथम प्रकाशित रूप में लाने का श्रेय स्व० मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) को है । स्वामीजी ने आज से लगभग ६४ वर्ष पूर्व सम्भवतः सन् १९०४ में स्वामी दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित कराया था ।" (हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग-१४, पृ० ५०९)।

१. यह भाग भी तैयार हो गया है । सम्पा०

इसी प्रकार डा० नरेन्द्र द्वारा सम्पादित" हिन्दी साहित्य का इतिहास" में द्विवेदी-युग के गद्य साहित्य की गौण विधाओं के विवेचन में ऋषि दयानन्द से सम्बन्धित पत्र-संग्रह के विषय में लिखा गया है:—

"आलोच्य युग में पत्र-साहित्य-विषयक दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। महात्मा मुंशीराम ने सन् १९०४ में स्वामी दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी पत्रों का संकलन किया। यह आलोच्य युग का ही नहीं समूचे हिन्दी साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र-संग्रह है:—

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५३०)

इन दोनों उद्धरणों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से निम्नलिखित त्रुटियां दिखाई पड़ती हैः—

१. दोनों उद्धरणों में स्व० महात्मा मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित स्वामी दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी पत्रों के संग्रह का शीर्षक नहीं बताया गया।

२. दोनों उद्धरणों में पत्र-संग्रह के प्रकाशन-वर्ष की निश्चित सूचना नहीं दी गई।

३. द्वितीय उद्धरण में प्रकाशित-वर्ष से पूर्व "सम्भवतः" शब्द नहीं है किन्तु स्पष्ट है कि सन् १९०४ में पत्र-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था।

इस प्रकार इन तथ्यों से प्रकट होता है कि उपरिलिखित उद्धरणों, लेखकों ने स्व० महात्मा मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित पत्र-संग्रह को देखे विना ही उसके सम्बन्ध में अपना मंतव्य व्यक्त कर दिया है।

इसी प्रकार पं० भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन भाग-१" के सम्बन्ध में भी उक्त इतिहास ग्रन्थों में असंगत और अपूर्ण सूचनाएं दी गयी हैं। यथा:—

(१) कुछ समय बाद सम्भवत: १९०९ ई० में पं० भगवद्दत्त ने अथक परिश्रम और खोजबीन करके स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों का एक विशाल संकलन "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार" शीर्षक से सन्दर्भ प्रचारक मंत्रालय, गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित किया।"

(हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग-२४, पृ० ५१०)

(२) "तदनन्तर पं० भगवद्दत्त ने पर्याप्त परिश्रम तथा अनुसंधान के बाद "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार" (१९०९) शोर्षक पत्र-संग्रह संपादित किया।"

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५३०)

इन उद्धरणों में निम्न असंगतियां हैं:—

१. पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित पत्र-संग्रह का शीर्षक वस्तुत: ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन हैं, जबकि यहां "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार" नाम बताया गया है। यह शीर्षक तो स्व० महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित पत्रों के संग्रह का है।

२. पत्र-संग्रह का सही प्रकाशन वर्ष सन् १९१८ ई० है, जब कि यहां १९०९ में उसे प्रकाशित हुए दिखाया गया है।

३, प्रथम उद्धरण में पत्र-संग्रह के आगे "विशाल संकलन" विशेषण प्रयुक्त किया गया है, किन्तु वस्तुतः उसमें कुल मिलाकर ८२ पत्र और विज्ञापन संकलित हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ऋषि दयानन्द के पत्र-साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में महत्त्वपूर्ण स्थान तो दिया गया है,परन्तु तत् सम्बन्धी उल्लेखों एवं अभिप्रायों में जो असंगतियां परिलक्षित होती हैं, उनसे अध्येताओं एवं अनुसंधानकर्ताओं को कठिनाई होती है। उक्त और अन्य इतिहास ग्रन्थो में पं० भगवद्दत्तजी के द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द सरस्वतो के पत्र और विज्ञापन के भाग—२, ३ और ४ का तो उल्लेख ही नहीं मिलता । इसी प्रकार पं० चमूपति द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग–२ तथा श्री रामलाल कपूर द्वारा प्रकाशित बृहत् पत्र-संकलनों का भी संकेत नहीं मिलता । यह ठीक नहीं है।

जिन महान् विभूति ने हिन्दी को "आर्यभाषा" घोषित कर उसके प्रचार-प्रसार के लिये अनवरत प्रयत्न किये, उसे "राजभाषा" पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये हंटर कमीशन के पास स्थान-स्थान से पत्र भिजवाये, उनसे सम्बन्धित पत्रों के संग्रह से हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधा का सूत्रपात हुआ, यह हिन्दी और हिन्दी साहित्य के लिए गौरव का विषय हैं। **हिन्दी पत्र-साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमें पता चलता है कि सन् १९३५ ई० तक हिन्दी पत्र-साहित्य के भण्डार में ऋषि के पत्र-रत्न ही अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहे थे।**

संक्षेप में, इमारत में जो स्थान नींव की ईंट का होता है, वही स्थान हिन्दी-पत्र-साहित्य में ऋषि दयानन्द के पत्रों का है। ये पत्र ऋषि के जीवन-दर्शन एवं जीवनादर्श से ओत प्रोत हैं तथा पत्र प्रेमियों एवं आर्यजनों के लिये प्रेरणा का अजस्र स्रोत हैं। ऋषि के कार्य कलाप और उनके महत्त्व को समझने के लिये इन का अध्ययन और मनन अत्यावश्यक है।

स्वामी जी के पूना-प्रवचनों को लिपि बद्ध करने वाले

मराठी कवि : श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे

[ले० – कुशलदेव शंकरदेव वड़वलकर: उपमंत्री· महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा: नाँदेड़] ।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने साहित्य एवं व्याख्यानों द्वारा सारे विश्व का अप्रतिम कल्याण किया है 'संस्कारविधि,' 'आर्याभिविनय', 'वेदविरुद्ध मत खंडन,' 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' आदि स्वामीजी के ग्रन्थों का सर्वप्रथम प्रकाशन महाराष्ट्र में ही हुआ। और स्वामीजी के व्याख्यान सारांशों को लिपिवद्ध करने का सर्व प्रथम श्रेय भी महाराष्ट्र को ही है। ऋषि दयानन्द के विभिन्न नगरों में विविध भाषण हुए, पर किसी ने उन्हें शव्दबद्ध करने का प्रयास नहीं किया। यह श्रेय केवल महाराष्ट्र को है और उसमें भी सर्वप्रथम पुणे के न्यायमूर्ति रानाडे, कुंटे, आगाशे की ओर यह श्रेय जाता है।

सन् १८७५ में पुणे और सन् १८८२ में वम्बई में स्वामी जी के भाषण-सारांश लिपिबद्ध किये गये। हर्ष का विषय है कि इन दोनों का हिन्दी रूपान्तर आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध गवेषक विद्वान् पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं अनूदित होकर 'दयानन्द प्रवचन संग्रह' (रामलाल कपूर

ट्रस्ट, वहालगढ़, सोनीपत, हरयाणा) के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुका है। महर्षि जी के इन प्रवचनों में सत्यता, मधुरता, हितभावना तथा ओजस्विता का अपूर्व मिश्रण है।

महर्षि को पूना निमंत्रित करने वाले व्यक्तियों में महादेव गोविंद रानाडे और महादेव मोरेश्वर कुंटे[1] का स्पष्ट उल्लेख ऋषि जीवन-चरितों में मिलता है। इन दोनों महादेवों (**विद्वांसो हि देवाः**) ने अपने से महत् महादेव को पुणे (महाराष्ट्रीय काशी में निमंत्रित कर एक महान् ऐतिहासिक कार्य किया। मराठी पूना प्रवचन के सर्वप्रथम सम्पादक न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे थे। श्रीयुत रानाडे जी के नेतृत्व में विद्वानों ने पुणे प्रवचनों को लिपिवद्ध किया। अब तक जितने भी 'पूना प्रवचन' ('उपदेश मंजरी') प्रकाशित हुए हैं, उनमें ऋषि के पूना प्रवचनों के तत्कालीन लेखक एवं मराठी अनुवादक के रूप में केवल गणेश जनार्दन आगाशे बी० ए० का ही उल्लेख मिलता है। परन्तु तत्कालीन महर्षि की वक्तृत्व कला[2] के समीक्षक, पौराणिक विद्वान् विष्णु शास्त्री चिपळूणकर के अनुसार स्वामीजी के व्याख्यानों को लिपिवद्ध करने वाले एक से अधिक लेखक थे। उन्होंने इस संदर्भ में लिखा है कि—

"हिन्दू क्लब मध्ये व्याख्यान समयी जो थाट नजरेस पडे तो वर कांही अवर्णनीयच ! श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य उंच व्यासपीठावर खुर्चीवर बसलेले. त्यांचा सरस्वतींच्या ओघाचा थेंबा ना थेंब टिपून घेण्यास लेखक मंडली जवळ बसलेली...... ।"

अर्थात्—"श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य [स्वामी दयानन्द सरस्वती] उन्नत मंच पर कुर्सी पर बैठे हुए, उनके प्रवचन सरस्वती के प्रवाह की, प्रति शब्द-बूंद को अंकित करने के लिए पास में बैठी हुई लेखक मंडली...... ।

'निबंधमालाकार' विष्णु शास्त्री चिपळूणकर के 'लेखक-मंडली' शब्द प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि के पूना प्रवचनों को लिपिबद्ध करने वाले न्यूनतम दो या तीन व्यक्ति तो निश्चित रहे होंगे।

वर्तमान काल तक प्रकाशित (पूना प्रवचन, या) 'उपदेश मंजरी' के संस्करणों में पूना प्रवचनों के लिपिबद्ध कर्त्ता के रूप में केवल **गणेश जनार्दन आगाशे** का ही उल्लेख मिलता है। अब प्राप्त नए तथ्यों के आधार पर एक और नाम पूना प्रवचनों के लिपिबद्ध कर्त्ता के रूप में प्रकाश में आया है। वह है—**महादेव मोरेश्वर कुंटे।**

इतिहासकार न० र० फाटक लिखित 'न्यायमूर्ति रानाडे यांचे चरित्र' (जिसकी प्रस्तावना महादेव गोविंद रानाडे की पत्नी श्रीमती रमावाई रानाडे ने लिखी है) के निम्नलिखित उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूना प्रवचनों की इस लेखक मंडली में गणेश जनार्दन आगाशे के अतिरिक्त महादेव मोरेश्वर कुंटे का भी समावेश था। प्रस्तुत रानाडे महोदय की जीवनी के 'महर्षि दयानन्द और पूना विषयक प्रसंग' में इतिहासकार न० र० फाटक जी ने लिखा है कि—

---

१. मोरेश्वर कुण्टे का उल्लेख ऋ० द० के दो पत्रों में मिलता हैं। द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ५६, पं० १२ (यहां 'माधवराज मोरेश्वर कुण्टे' नाम है) तथा भाग १, पृष्ठ ११७ पं० २२ (यहां 'मोरेश्वर कुण्टे' नाम है)। लेखक के मतानुसार ऋ० द० ने महादेव मोरेश्वर कुण्टे को ही माधवराव मोरेश्वर कुण्टे नाम से स्मरण किया है।

२. विष्णु शास्त्री चिपळूणकर द्वारा लिखित 'दयानन्द की वक्तव्य कला' सम्बन्धी लेख आगे दे रहे हैं। सं०

"पुण्यांत स्वामीजींचा दोन महीने तळ होता त्या अवधीत त्यानी पंधरा व्याख्याने दिली. स्वामींची भाषा हिन्दी असल्याने सगळ्या पुणेकरांना त्यांचा उपदेशाचा आस्वाद घेता यावा, म्हणून महादेव मोरेश्वर कुंटे व गणेश जनार्दन आगाशे हे दोघे स्वामींच्या भाषणांची टिपणें घेऊन एक दिवस आड़ त्यांचे मराठी भाषांतर प्रसिद्ध करीत."

अर्थात्—पूना में स्वामीजी का दो महिने तक डेरा था। उस अवधि में उन्होंने पंद्रह व्याख्यान दिए। स्वामीजी की भाषा हिन्दी थी। उनके उपदेशों का लाभ समस्त 'पुण' वासी उठा सकें, इस अभिलाषा से महादेव मोरेश्वर कुंटे व गणेश जनार्दन आगाशे स्वामीजी के भाषणों की टिप्पणियां लेकर एक दिन बाद उसका मराठी अनुवाद प्रकाशित करते थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा ११ अगस्त १८७५ को पुणे से श्रीयुत गोपाल हरि देशमुख आदि को लिखित पत्र से भी महादेव मोरेश्वर कुंटे की 'पूना प्रवचनों' के प्रबंधक और प्रकाशक के रूप में पुष्टि होती है। स्वामीजी ने प्रस्तुत पत्र में लिखा है—

"पूना में महादेव [माधवराव] गोविंद रानडे, माधवराव [महादेव[मोरेश्वर कुंटे तथा लस्कर में गंगाराव भाऊ आदि पुरुषों ने अच्छी प्रकार व्याख्यानादि प्रबंध पूर्वक कराये। और व्याख्यान छपवाते भी हैं।" द्र०—ऋ० द० पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ५८, पं० ११-१२।

विष्णु शास्त्री चिपळूण कर ने भी अपने वक्तृत्व इस निबंध में स्वामी दयानन्द जो को पूना में निमंत्रित कर उन के व्याख्यान छपवाने का श्रेय अप्रत्यक्ष रूप से रानाडे और कुंटे को दिया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेव मोरेश्वर कुंटे का पूना प्रवचनों के लेखक के रूप में ही नहीं, अपितु पूना-प्रवचनों के प्रबन्धक और 'प्रकाशन-व्यवस्थापक' के रूप में भी अविस्मरणीय योगदान रहा है।

कद्रे जोहर जौहरी। हीरे-जवाहरातों का सही मूल्यांकन कोई जौहरी ही कर सकता है। विद्वान् ही विद्वान् के परिश्रम को जान सकता है। इसी आधार पर मैं सोच रहा था कि महर्षि दयानंद के व्याख्यानों को लिपिबद्ध करने वाले व्यक्ति भी असाधारण प्रज्ञा के होंगे। जब पूना-प्रवचनों के लेखकों के जीवनी की इतस्ततः खोज की तो बात सच निकली—

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
न हि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

पूना-प्रवचन-काल में ऋषि दयानंद जी के भाषणों को लिपिबद्ध करने वाले लेखकों में महादेव मोरेश्वर कुंटे का प्रमुख स्थान रहा है। दार्शनिक, कवि, वैदिक-विद्वान् एवं पुणे नगरी के प्रार्थना समाज के प्रारंभिक नेता के रूप में आपकी समस्त महाराष्ट्र में ख्याति रही है। आप पत्रकार थे। **'षड् दर्शन चिंतनिका'** मासिक का आप ने संचालन व संपादन किया था। इस पत्रिका में दर्शनों पर आप द्वारा किया गया अंग्रेजी व मराठी भाष्य नियमित रूप से प्रकाशित होता था। आप बहुभाषाविद् भी थे। संस्कृत, मराठी, गुजराती, सिंधी, फारसी, अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन आदि विविध भाषाओं पर आप का अच्छा अधिकार था। आप लोकप्रिय वक्ता (आरेटर) थे। पुणे की सुप्रसिद्ध **'वसंत व्याख्यानमाला'** अनेक वर्षों तक आपके व्याख्यानों से गूंजती रही। आप इस व्याख्यानमाला के अध्यक्ष भी रहे। पुणे नगर-पालिका के आप निर्वाचित सभासद् भी थे। बहुमुखी प्रतिभा के आप धनी

थे। परस्पर भिन्न दिशाओं में स्थित विविध विषयों का आपको गहन ज्ञान था। आपने मराठी और अंग्रेजी भाषा में काव्य ग्रंथ लिखे, पेन्सिल बनाने का कारखाना खोला व आर्य संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करने वाला गंभीर ग्रंथ भी लिखा। इस ग्रंथ पर रोम (इटली) की विद्वत् परिषद् ने प्रथम पारितोषिक प्रदान कर आपका अभिनन्दन किया था। इस प्रकार एक वैदिक विद्वान् एवं समाज सुधारक के नाते महाराष्ट्र के इतिहास में आप का उल्लेखनीय स्थान रहा है।

स्वामी दयानन्द जी की तरह आपके भी 'राजा शिवा जी' नामक ऐतिहासिक काव्य का मुख्य उद्देश्य देशोन्नति रहा है। आबाल वृद्ध भी समझ सकें ऐसी सरल सर्वग्राह्य प्रसाद शैली के आप प्रबल पक्षधर रहे। पौराणिक विद्वान् विष्णु शास्त्री चिपळूणकर ने स्वामी दयानन्द जी के साथ-साथ आप पर भी वक्तृत्व आदि निबंधों में व्यंग्य, उपहास एवं वक्रोक्ति शैली का प्रयोग किया है। इससे पूर्व एक समय ऐसा भी था कि पुणे में महादेव मोरेश्वर कुंटे मुख्याध्यापक और विष्णु शास्त्री चिपळूणकर अध्यापक थे। महादेव मोरेश्वर कुंटे न्यायमूर्ति रानाडे के सहपाठी व सखा थे। उनके साथ आपने विभिन्न आंदोलनात्मक अभियानों में भाग लिया था। पूना प्रवचन-काल में रानाडे-कुंटे की यह जोड़ी स्वामी दयानन्द जी की विशेष सहयोगी सिद्ध हुई। डॉ॰ केतकर के अनुसार—**'प्राचीन भारतीय वाङ्मय का चिकित्सक बुद्धि से विचार करने वाला महादेव मोरेश्वर कुंटे जितना उस काल में और दूसरा कोई महाराष्ट्रीय पण्डित नहीं था।**

महादेव मोरेश्वर कुंटे जी का जन्म सन् १८३५ के श्रावण मास में जि॰ सातारा के 'माहुली' नामक गांव के एक भिक्षुक परिवार में हुआ था। बचपन में ही आपके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। विद्याध्ययन की लालसा से आप घर से भाग कर कोल्हापुर चले आए। कभी भिक्षाटन कर तो कभी हर नए वार को नए परिवार में भोजन पाकर आपने शिक्षा प्राप्त की। अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने के लिए बंबई गए व १८५९ में विलसन हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी निर्धनता से संघर्ष करते हुए सन् १८६४ में आप बी॰ ए॰ उत्तीर्ण हुए। स्नातक की उपाधि प्राप्त होने पर सर्वप्रथम आपकी कराची में मुख्याध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई। वहीं से सन् १८६७ में आपकी कोल्हापुर के राजाराम विद्यालय में बदली हो गई। तदनंतर सन् १८७१ में पुणे विद्यालय के हैडमास्टर के रूप में आप नियुक्त हुए। पुणे में आप लगभग सोलह-सत्रह वर्ष तक रहे। बीच के कुछ वर्षों में आपने एल्फिस्टन कालेज में संस्कृत प्राध्यापक का और अहमदाबाद कालेज में प्राचार्य पद का उत्तरदायित्व भी संभाला। दीर्घकाल तक आपका जीवन शैक्षणिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा कार्यों में समर्पित रहा। सन् १८८८ में आपका देहान्त हो गया।

'राजा शिवाजी' (१८६९), 'मन' (१८७२), 'राजाराम महाराज' आदि आपकी मराठी काव्यकृतियां हैं। 'ऋषि' एवम् 'फेमिश्ड विलेज' आपके अंग्रेजी काव्य हैं। 'व्हिसिसि टयूडस् आफ आर्यन सिव्हि लायझेशन इन इंडिया' (आर्य संस्कृतीची स्थित्यंतरे), 'बाल विवाह निषेधक वाद (१८७६) आदि आपकी रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। 'षड् दर्शन चिंतनिका' मासिक का आपने संपादन भी किया है।

आपका 'राजा शिवाजी' काव्य इतिहास प्रसिद्ध शिवाजी की तरह ही आधुनिक मराठी कविता के इतिहास में अनेक दृष्टियों से क्रांतिकारी और युग प्रवर्तक है। मराठी साहित्य में आधुनिक

दृष्टिकोण और नवीन शैली का प्रयोग उस काल में यदि कहीं प्रतिबिम्बित हुआ है तो वह आपके 'राजा शिवाजी' काव्य में ही। इस काव्य के प्रारंभ में आपने जो २८ पृष्ठों की प्रस्तावना लिखी है वह तत्कालीन सामाजिक परिवेश के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह प्रस्तुत प्रस्तावना मराठी साहित्य में नव-विचार धारा का स्वागत करने वाली सर्वप्रथम समीक्षात्मक रचना समझी जाती है। तत्कालीन साहित्यक क्षेत्र में कुंटे जी ने जो नवीनशैली का प्रयोग किया, वस्तुतः वह एक साहसिक काम था।

आधुनिक काल में वीर-रस प्रधान ऐतिहासिक मराठी काव्य का शुभारंभ आप द्वारा रचित 'राजा शिवाजी' काव्य से ही प्रारंभ होता है। इस काव्य के माध्यम से आप मराठा राज्य के उदय, विकास और अधःपतन का इतिहास लिखना चाहते थे। आपका स्पष्ट मत था कि—'शिवाजी का इतिहास एल्फिस्टन और मरे लिखित ग्रंथों से कभी स्पष्ट नहीं होगा। उस वीर पुरुष के इतिहास को जानने के लिए तो सन्त तुकाराम और समर्थ रामदास की अभंग वाणी, पुराने 'पोवाडे; ऐतिहासिक कथाएं और दुर्ग रक्षक गडकरियों के मुंह से फैली परंपरागत दंतकथाओं का संकलन चाहिए। न्यायमूर्ति रानाडे जी के अनुसार—**"राजा शिवाजी" के काव्यानुकरण से मराठी में ऐतिहासिक काव्य लिखने की परम्परा शुरु हो गई। इस परंपरा के सामने कुंटे की धाराप्रवाह रचना शैली का आदर्श था।**

पूना प्रवचन के लेखक महादेव मोरेश्वर कुंटे स्वामी दयानन्द जी से उम्र में १० वर्ष छोटे थे। पूना प्रवचन काल में स्वामी जी की उम्र लगभग पचास वर्ष थी तो महादेव मोरेश्वर कुंटे की ४० वर्ष थी। ऋषि दयानन्द ने पूना (या बंबई) से गोपाल हरि देशमुख को प्रेषित पत्र में लिखा है कि—**"एक नवीन बात यह कि पूना में आर्यसमाज स्थापन हो गया है।……जितने प्रार्थना समाज के सभासद थे वे सब ……[आर्यसमाज के] सभासद् हुवे हैं।"** (द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६१, पं० १-७) ऋषि दयानंद के इस पत्रांश के आधार पर यह विश्वास करना अनुचित नहीं होगा कि प्रार्थना-समाज की यह रानाडे-कुंटे की राम-लक्ष्मण जोड़ी (जिसने स्वामीजी को पूना में सर्वाग्रणी होकर निमंत्रित किया था) अवश्य ही स्वामो दयानन्द जी के पूना प्रवचनों से प्रभावित होकर आर्य-समाज में सम्मिलित हुई होगी। यह तो अब निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित धार्मिक संगठन की दूसरी शाखा, आर्यसमाज पुणे के न्यायमूर्ति रानाडे प्रधान थे, वे महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी, परोपकारिणी सभा के भी सभासद् रहे। ऐसी स्थिति में कुंटे भो निश्चित रूपेण आर्यसमाज में अपने साथी के साथ ही सक्रिय सभासद् के रूप में सम्मिलित हुए होंगे।

मानवमात्र के प्रति कल्याण भावना रखकर श्रीयुत महादेव मोरेश्वर कुंटे ने महर्षि के 'पूना-प्रवचनों' का तत्काल संकलन-एवं भाषांतर किया, एतदर्थ आर्य जगत् उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। वस्तुतः रानाडे, कुंटे, आगाशे की त्रिमूर्ति के कारण ही सर्व प्रथम पूना-प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। विश्वास है कि युगों युगों तक इस त्रिमूर्ति का आर्य जगत् की ओर से कृतज्ञता के साथ अभिनंदन होता रहेगा। खेद है कि आज तक जितने भी 'पूना प्रवचन' (या 'उपदेश मंजरी') प्रकाशित हुए हैं, उनमें महादेव मोरेश्वर कुंटे का लेखक के रूप में उल्लेख तक नहीं है। आशा की जाती है कि अग्रिम 'पूना-प्रवचनों' के संस्करणों में उनका कृतज्ञता के साथ उल्लेख किया जायेगा।

एक विपक्षी समकालीन पौराणिक साहित्यकार की दृष्टि में—

स्वामी दयानंद की वक्तृत्व कला

मूल लेखक—निबंध मालाकार विष्णु शास्त्री चिपळूणकर—

[निबन्धमालाकार श्री विष्णु शास्त्री चिपळूणकर ऋषि दयानन्द के घोर विरोधी थे। उन्होंने निबन्ध माला पत्रिका में ब्रह्म समाज के संस्थापक बाबू केशवचन्द्र सेन और प्रार्थना समाज के संस्थापक बाबू प्रतापचन्द्र की वक्तृत्व कला के साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती की वक्तृत्व कला पर विस्तार से लिखा है। यद्यपि सारा लेख आक्षेप और व्यङ्ग पूर्ण भाषा में लिखा गया है, तथापि इस से ऋ० द० सरस्वती की वक्तृत्व शक्ति का परिज्ञान सहज में ही हो जाता है। श्री प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर ने उक्त दुर्लभ मराठी लेख का भाषानुवाद करके भेजा है इस के लिये हम उन के अत्यन्त आभारी हैं। —सम्पादक

यहां [वक्तृत्व इस प्रकरण में महाराष्ट्रीय विद्वानों के अतिरिक्त] भारतवर्षीय कुछ अन्य प्रदेशों के सुप्रसिद्ध वक्ताओं के भी नाम निर्देश करना आवश्यक है, क्योंकि दिन-प्रतिदिन एक ही [अंग्रेज] शासन के सम्बन्ध से राजकीय, व्यावहारिक एवं धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में दूर-सुदूर प्रांतों में परस्पर (इससे पूर्व) जो उदासीनता या परायापन था वह अब नष्ट हो गया है और स्नेहिल सम्बन्ध बढ़ गए हैं। एक प्रदेश के लिए हितकारी बात समस्त देश के लिए कल्याणकारिणी हो गयी है। इसके अतिरिक्त हमें जिनका आगे उल्लेख करना है, उनकी कीर्ति समस्त देश भर में फैली हुई है और उन्होंने सर्वत्र यायावरी भी की है, तथा इस समय में उनकी वक्तृत्व [कला] शक्ति का अनुभव प्राप्त पुष्कल लोगों के होने से उनका उल्लेख भी आधुनिक काल (इकडील) के अन्य वक्ताओं के अनुसार करते तो भी चलता था, अस्तु।

[बाबू केशवचन्द्र सेन]—

आधुनिक-कालीन वक्ताओं में सर्वप्रमुख (नाम) बाबू केशवचन्द्र सेन जी का है। यह तो सर्वविदित ही है कि वे ब्रह्मसमाजियों में अग्रगण्य हैं और ब्रह्मसमाजी मत का प्रचार करने के उद्देश्य से यूरोप व अमेरिका का भ्रमण कर आए हैं। वहां आपके व्याख्यानों की खूब धूम रही है। जब आप विलायत गये थे तब आपकी विद्वता व वक्तृत्व कला की कीर्ति चतुर्दिक् फैली थी और परिणाम स्वरूप कितने ही स्त्री-पुरुष ईसाई मत छोड़कर ब्रह्मसमाजी हो गए थे। इसी प्रकार की घटनाएँ अमेरिका में भी घटित हुई थीं। अस्तु। सारांश में इन सब घटनाओं से यही स्पष्ट होता है कि बाबू केशवचन्द्र सेन में वक्तृत्व कला का अप्रतिम गुण था।

[बाबू प्रतापचन्द्र]—

प्रसिद्धि की दृष्टि से बाबू केशवचन्द्र सेन के बाद बाबू प्रतापचन्द्र का क्रम आता है। विद्वत्ता व वक्तृत्व इन दो गुणों के कारण आपकी भी सर्वत्र ख्याति फैली हुई है। केशवचन्द्र सेन की तरह आप भी कुछ महीने पूर्व विलायत में धूम मचाकर आए हैं। तीन चार वर्ष पूर्व आप यहां [पुणे में] आये थे व प्रथा-परंपरा के अनुसार सर्वत्र आपके व्याख्यान व उपदेश आदि कार्यक्रमों का आयोजन

हुआ था। पुणे में ब्रह्मसमाज की शाखा स्थापित करने के लिये बाबू प्रतापचन्द्र जी ने बहुत कोशिश की थी, परन्तु वक्ता की अपेक्षा श्रोता अपना हित अधिक समझते थे, अतः किसी ने भी आपके कथनानुसार ब्रह्मसमाज की शाखा स्थापित करने का समर्थन नहीं किया। अन्य समारोहों की तरह उपर्युक्त समारोह भी श्रोतृ-मंडली ने यथाविधि वक्ता आदि के आभार मानकर सम्पन्न किया, परन्तु अपने वक्तृत्व रूपी वृक्ष को, जादूगर के आमों की तरह, तत्क्षण सफल करने का जो हेतु उपर्युक्त धर्मोपदेशक के मन में था, वह थोड़ा सा भी सिद्ध नहीं हो पाया। ऐसी परिस्थिति में निराश होकर बाबू प्रतापचन्द्र जी ने अपनी ब्रह्मसमाज स्थापना की योजना को अन्यत्र साकार करने का प्रयत्न (संधान) किया। यहां [पुणे में] अत्यन्त मदगति से चल रहे (रड़त कड़त चाललेल्या) प्रार्थना—समाज व निष्प्राण 'थीइस्टिक असोशियेशन' (देव शोधक मण्डल) ने ब्रह्मसमाज से एकात्म होकर अपने पंथ [ब्रह्मसमाज] का नाम धारण करने का आह्वान किया था, पर उसका क्या असर हुआ, मालूम नहीं। अस्तु, संक्षेप में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त वक्ताओं ने देशाटन खूब ही किया और उनकी वक्तृत्व कला की ख्याति भी चतुर्दिक् बहुत अधिक रही है, परन्तु उपर्युक्त बाबुओं के एक-दो व्याख्यान सुनने के बाद हमारा जो मत हुआ है उसे यहां स्पष्ट रूप में उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। वह [हमारा मत] यह है कि जिस प्रकार सभा में खड़े होकर चार-पांच साधारण व्यक्ति भाषण करते हैं ठीक उसी तरह अंग्रेजी में भाषण करने की उनमें क्षमता-शक्ति है, परन्तु उनके वक्तव्य में हमें ऐसा कोई भी गुण नजर नहीं आया जिससे कि उनकी सर्वत्र (सार्वत्रिक) प्रसिद्ध हो। हां, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक महाराष्ट्रीय विशेषकर पुणे के लोगों ने बंगाली बाबुओं के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किये थे और उन बाबुओं की कीर्ति भी उनके (पुणे) आगमन से पूर्व ही सर्वत्र फैल चुकी थी। इस कारण हमें प्रतीत होता है कि छोटे-बड़े सभी के मुख से उनकी प्रशंसा हो चुकी थी। यह कहना तो बहुत ही कठिन है कि उनके भाषण में कोई ऐसा अपूर्व रस था कि जिससे समझने की श्रोतृ-मंडली में क्षमता नहीं [अभिज्ञता] थी। इस हमारे मत से प्रस्तुत भाषण का फल किस मात्रा तक दृष्टिगोचर हुआ। इस सन्दर्भ में हमने पाठकों के लिए जो ऊपर अभी मत व्यक्त किया उसकी संपुष्टि होती है। जिन श्रोताओं ने उस अवसर पर यथेच्छ गर्दनें हिलायीं व तालियों की गड़गड़ाहट की। और इस विद्वत्ता की, कोई धर्म परायण बुद्धि की, कोई अंग्रेजी ज्ञान की और कोई वक्तृत्व शक्ति की, इस प्रकार अपने-अपने ढंग से लोगों ने वक्ता की अतिशय स्तुति की, किन्तु जब ब्रह्मसमाज में सम्मिलित होने के लिए श्रोताओं के सहर्ष हाथ उठाने का अवसर आया, तब कोई पूरा तो कोई आधा, और उनमें भी तीन चार व्यक्तियों ने तो [बहिर्मन से अंतरात्मा के विरुद्ध] हाथ ऊपर किया। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त [बाबू प्रतापचन्द नामक] वक्तव्य का ऐसा भी प्रकार नजर आता है कि जो भाषण बम्बई की श्रोतृ-मण्डली के आग्रहवश प्रकाशित किया गया था, वही व्याख्यान यहां पर व लन्दन में भी हुआ। लगभग उसी समय सीली नामक अमेरीकन प्रोफेसर यहां आये थे, जैसी उनकी प्रकाशित [मुद्रित] भाषण करने की शैली[1] थी वैसी ही शैली बाबू

१. प्रो० सीली साहब ने 'ईसाई धर्म गौरव' पर यहां [पुणे में] एक ऐसा व्याख्यान दिया था, जो पहली बार बड़ा ही चित्ताकर्षक [चित्त वेधक] लगा, पर आगे चलकर जब एक दिन देखा तो वह व्याख्यान जैसे का तैसा शब्द-प्रतिशब्द एक छोटी सी पुस्तिका में प्रो० सीली साहब के नाम से प्रकाशित रूप में प्राप्त हुआ। यह घटना अपना ही द्रव्य अपने आप चुरा लेने के समान है। —विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

प्रतापचन्द्र जी की भी नजर आती है । उसी प्रकार धर्मोपदेशक के व्यक्तित्व में जो गंभीरता व उत्सुकता नजर आनी चाहिए वह भी प्रस्तुत उपदेशक (के शरीर) में विशेष रूप से नजर नहीं आती, पुणे से अभी-अभी यशस्वी होकर गए स्वामी दयानन्द जी की तरह उपर्युक्त बाबू को भी उपहास (कुचेष्टा) करने में बड़ी प्रतिष्ठा महसूस होती है। हमें यह प्रतीत होता है कि इनका पौराणिक धर्म की विडम्बना करने व छोटे-छोटे बच्चों को हंसाने मात्र से नव धर्म की स्थापना हो जायेगी। भला यह कैसे सम्भव है ? अस्तु । सारांश रूप में हमें विशेष रूप से यह अनुभव हुआ है कि प्रथम वक्ता [बाबू केशवचन्द्र सेन] से इस द्वितीय वक्ता की योग्यता समस्त [आवश्यक] गुणों की दृष्टि से अत्यन्त ही कम है।

स्वामी दयानन्द—

अब सबसे अंत में उपर्युक्त दोनों वक्ताओं से जबरदस्त (जाडी) वक्ता (जिनका उपर्युक्त परिच्छेद में उल्लेख हुवा है) महाविख्यात स्वामी [दयानन्द]जी हैं, उनके संबंध में कुछ लिखकर यह [तेईसवां] अंक और यह [वक्तृत्व निबंध] (भाग) समाप्त करते हैं। इन्हें उपर्युक्त दोनों वक्ताओं बाबू केशवचन्द्र सेन और बाबू प्रतापचंद्र से भी अधिक महत्त्व देने का कारण स्पष्ट ही है कि, वे जहां इन दोनों वक्ताओं की तरह केवल अवतार (प्रेषित) ही नहीं होना चाहते, परन्तु बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और राम मोहनराय की तरह नए पंथ के प्रवर्तक भी होने के लिए टकटकी लगाए बैठे हैं। स्वामी महाराज ने हमारी पुणे नगरी (पुण्यपत्तनास) को अपनी पावन मूर्ति से पवित्र कर, कुछ महीने पूर्व देशोन्नति के लिए जो अनेक व्याख्यान दिये उसमें से एक व्याख्यान में अपनी भावुक शिष्य मंडली को स्व-जीवन चरित्र की जो महिमा सुनाई उससे ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाजियों की पुण्य-भूमि व महातीर्थ गुजरात प्रांतीय [टंकारा] अजमेर नामक गांव होगा। कबीर, तुलसीदास, तुकाराम आदि आज तक के बड़े व पुण्यशील पुरुषों को महामूर्ख व महादुष्ट आदि उपाधियों से निस्तेज कर महार, मांग आदि शूद्र जाति का अभ्युदय करने का महत्तेज उनमें उदित हुआ है। जो कि इस आर्यभूमि पर उसके महद भाग्य से अनवरत चालीस वर्ष से चमचमा रहा है। परन्तु यह बात हमें बडी चमत्कारिक व अत्यंत विषादप्रद महसूस होती है कि सम्प्रति दो-तीन वर्षों से वह महत्तेज गतिहीन और स्थिर क्यों हो गया है। प्रस्तुत भद्र पुरुष [स्वामी जी] स्वदेश बंधुओं के पारलौकिक हित की चिंता करते हुए, लगभग आज बीस वर्ष तो मूर्तिपूजा के घोर पापमार्ग का अनुसरण करने से कोटिशः जन-गण के आत्माओं की जो वर्तमान काल में अपूरणीय क्षति हुई है, वह उन्होंने प्रसन्न हृदय से कैसे देखी, कौन जाने ? उनके अनेक महाविद्वान् शिष्य तो उन्हें लूथर की उपमा देते हैं। प्रत्यक्ष दर्शन में तो कम से कम बहिरंग दृष्टि से उस पर कोई आक्षेप लेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। फिर स्वामीजी का अंतःकरण (अतरंग) भी भला इतना कठोर क्यों है ? उन्होंने [स्व-कथित] चरित्र में बताया है कि — किशोरावस्था होते हुए भी उनके मामा [चाचा] की मृत्यु होने पर उनकी आंखों से आंसू की एक बूंद (टिपूस) भी नहीं टपकी। वही निर्वाण-निर्ममत्व वय के साथ-साथ परिपक्वावस्था में तो नहीं पहुंच गया होगा न ? दयानन्दजी ने धर्म विषय पर जो उधर अनेक नए मत प्रकट किये हैं, जो कि उनके सच्छिष्यों ने अतिशय प्रेम व भक्ति भाव से अंकित [नोट] कर (टिपून घेऊन) उन्हें चारों और बड़ी आस्था से प्रसारित किया है। जिनके सहयोग से संस्कृत शून्य व्यक्ति को भी अकस्मात् विद्वत्ता की

नवचेतना आती है और बड़े-बड़े पंडितों से भी शास्त्रार्थ करने को (टक्कर मारण्याचे) हिम्मत प्राप्त होती है[1], उस विषय में हमें यहां पर कुछ विचार नहीं करना है, उस संबंध में आगे प्रसंगानुसार एकाध निबंध में स्वतंत्र रूप से लिखा जा सकेगा। तद्वत् स्वामीजी की विद्वता कैसी किस प्रकार की है, इस संदर्भ में भी कोई लेख लिखने का प्रयोजन हमें नजर नहीं आता। उनके प्रसार से जिन्हें चार दिनों में चारों वेदों का अवगाहन करने का सामर्थ्य मिला (पालथे घालतां आले) व [शुक्ल और कृष्ण] यजुर्वेद तो सफेद का काला और काले का सफेद हो गया, उन पर स्वामीजी के यशोगीत (पोवाडे) गाने किंवा कवित्व शक्ति यदि अवशिष्ट रही तो एकाध वीर रस प्रधान काव्य लिखने का कार्य हम सौंप देते हैं। इस स्थान पर केवल वक्तृत्व से संबन्धित [प्रस्तुत] परमहंस [स्वामी दयानन्द] की कितनी योग्यता है, सो देखेंगे—

उपर्युक्त वक्ता के वक्तृत्व का स्वरूप इस नगर के लोगों को जैसे पूर्णरूप में दृष्टिगोचर हुआ, वैसा अन्यत्र कहीं भी [दृग्गोचर] नहीं हुआ होगा, शेष अनेक स्थानों पर जैसे मुंबई, अहमदाबाद, नासिक, सतारा आदि शहरों में सद्धर्म (विवेचनेच्छु) व सदसत् की मीमांसा करने वाले लोगों ने स्वामीजी को आमंत्रित कर उनके अनमोल ज्ञान का अतिशय श्रद्धा-भक्ति से श्रवण किया, परन्तु पुणे में जैसा उनका ठाट रहा वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ। गत जुलाई व अगस्त महिने में स्वामीजी के नाम पर जैसे सारा शहर झूम रहा था। प्रतिदिन अहर्निश स्वामीजी के चारों ओर जिज्ञासु (ज्ञानेच्छु) मंडली की अनवरत भीड रहती थी। इतना ही नहीं (फार तर काय) पर सभी लोगों में ज्ञान की दृष्टि से श्रेष्ठ समझे जाने वाले प्रतिष्ठित पुणे के नेताओं को ऐसा मंत्र मुग्ध कर लिया था कि उन्हें उनकी सेवा के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही न रहा था। तैंतीस कोटि देवताओं को छोड़कर एकेश्वर का भजन करो। मूर्ति पूजा के घोर पापमार्ग को छोड़ दो, वह ईश्वर को निश्चित रूप से पसंद नहीं है, और उसी कारण तो स्वदेश तथा प्राचीन ग्रीक, रोम, मिश्र पारसी आदि विदेशियों का क्रोध से ईश्वर ने सर्वनाश किया है। दो तीन मास पूर्व पंढरपुर के देव को जिस प्रकार की सजा मिली, वैसा प्रकार जब घर-घर में शुरू होगा, तभी देशोन्नति का प्रारम्भ हो सकेगा। अरे! ब्राह्मण-पंडों [भटों] का माहात्म्य बढाकर और उनके दर्शाए मार्ग का अनुसरण कर तुम्हारा क्या कल्याण होने वाला है? मराठा साम्राज्य अस्त हो गया है और चारों ओर अंग्रेजी साम्राज्य सिर उठा कर खडा है— आश्चर्य है कि इस [दुर्दशा की] ओर भी आपका ध्यान नहीं जाता. वे तुम्हारे पुराने देवालय, पुराने व्यासपीठ [मंच], पुराने धर्म शास्त्र आदि अब सब भूल जाओ. संप्रति अंग्रेजी राज्य में नूतन प्रणाली के देवालय बांधकर जब अंदर कुर्सी-टेबल रखोगे। [प्रार्थना समाज की धार्मिक व नीति परक भजन-गीतों की तरह] प्रार्थना संगीत जैसी बिल्कुल विशुद्ध धार्मिक तत्वज्ञान की पुस्तकें रखोगे और

१. उपर्युक्त प्रसाद केवल इस देश के वासियों को ही होता तो कोई नई बात नहीं थी, पर चमत्कार तो यह है कि—जहां वेद-विद्या, किं बहुना केवल संस्कृत ज्ञान का प्रवेश होना भी बहुत कुछ (फारसा) असंभव है, ऐसे मजिस्ट्रेटी कोर्ट को भी वह लाभ हुआ। स्वामी जी की शोभा यात्रा की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न 'गर्दभ अभियोग' पर हमारे न्यायाधीश महोदय ने जो अभिप्राय [निष्कर्ष] (फाइंडिंग) लिखा है, उसे देखने पर यह आभास होता है कि वह [निष्कर्ष] मोक्षमूलर (मोक्षमुल्लर) महोदय किंवा हौग साहब ने लिखा है।

—विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन कर (पसार होऊन) बड़े-बड़े पुरस्कार (किताव) प्राप्त किसी एकाध विद्वान् का अनुसरण कर विद्वानों सहित उनकी [ध्येय] प्रणाली से जब आगे कदम बढाओगे तभी आपको स्वर्ग का मार्ग नजर अयेगा । पुराने सब मार्ग अब बन्द हो गए है—इस प्रकार [का प्रयत्न] मिशनरी लोगों व उनके विचारों का थोडा सा रूपान्तर कर देश को एक नया धर्म देने की इच्छा रखने वाले हमारे ये नए पंडित अनेक वर्षों से [प्रयत्न] करते आ रहे हैं । परन्तु उनके इन इतने दिनों के [प्रदीर्घ कालीन] उपदेशों से, इतने व्याख्यानों से अनेक मासिक पत्र-पत्रिकाओं और ग्रंथों से तैंतिस कोटि देवों में से एक भी कम नहीं हुआ या एक भी मूर्ति खंडित (भंगली) नहीं हुई, तब ऐसे अवसर प्रस्तुत परमहंस [स्वामी दयानन्द] का जो उदय हुआ है, वह उनके लिए कितना अभिनंदनीय है, यह सबको आसानी से समझ में आ जायेगा । उपर्युक्त [ब्रह्मसमाजी] मंडली के विषय में क्या कहें, जिन सामान्य व्यक्तियों के उद्धारार्थ और स्वर्गारोहण [मोक्ष] हेतु वे सीढी लगाने की कोशिश (तजवीज) कर रहे हैं उनका उन पर पहले तो विश्वास ही नहीं बैठता. ईसाई धर्म को अंगीकार करने वाले व्यक्तियों को तो वे भ्रष्ट (बाटेच) ही कहते हैं । इसलिए उपदेश मार्ग में सर्वप्रथम यहीं पर बाधा पहुंचती है (तेव्हां उपदेशाचा मार्ग येथेच अगोदर खुंटला) । परन्तु दयानन्दजी के संदर्भ में आश्चर्य यह है कि (कशी मौज आहे) वे परिव्राजकाचार्य होने के कारण विरक्त, धर्मशील वगैरह तो हो ही गए इसके अतिरिक्त उनकी विद्वता की अतिशय ख्याति है । चारों वेदों पर तो उसे अंतःकरण पूर्वक अभिमान है—वे हर एक अवसर पर इस वेदाभिमान को स्पष्ट जाहिर करते ही हैं । तब उपर्युक्त गुणों के कारण लोगों का विश्वास प्राप्त करने का उनके पास अच्छा साधन है. इसके अतिरिक्त उपर्युक्त धर्म संस्थापक का मुख्य मुद्दा यह है कि—कैसेन कैसे तो एक बार मूर्ति [पूजा] का सर्वनाश होना चाहिये । उपर्युक्त बाबा का मूर्ति-पूजा विरोधी दृष्टिकोण तो उन [प्रार्थना-समाजियों] से भी अधिक चौपट है, तो इस प्रकार उपर्युक्त सर्वोत्कृष्ट सुविधाएँ होने के कारण स्वामीजी व उनके प्रवचनों का (स्वामी मजकू रांचा) जहां-तहां बडे पैमाने पर आदर-सत्कार हुआ. उनका शिष्य परिवार के साथ बड़ी शान से आदर आतिथ्य हुआ (चमचमीत पाहुणचार) । धर्म जिज्ञासुओं व मुमुक्षुओं की तो स्वामी के दर्शन [सत्संग] के लिए सदैव भीड रहती थी । उनकी विद्वत्तादि गुणों का तो सभी ओर से जय-जयकार हुआ । ऐसे समारोह (सोहक्यात) के साथ उनका जहां-तहां पदार्पण (कालक्रमण) हुआ । पुणे में तो इससे पूर्व किये गए निर्देशानुसार स्वामीजी का जो आदर सत्कार हुआ उस विषय में तो कुछ पूछिये ही मत । उसमें भी हिंदू क्लब[1] में व्याख्यान के अवसर पर जो ठाट दिखलाई देता था, वह तो अवर्णनीय था । श्रीमतपरमहंस परिव्राजकाचार्य उन्नत मंच (व्यास पीठ) पर [रखी] कुर्सी

[शेष पृष्ठ ६७ पर देखें]

१. इंग्लैण्ड में सौ वर्ष पूर्व जानसन क्लब नामक एक बड़े सुप्रसिद्ध विद्वन् मंडली की बैठक प्रति सप्ताह एक स्थान पर आयोजित होती थी । उसी स्तर पर उपर्युक्त हिन्दू क्लब यहां के एक सुप्रसिद्ध स्थान पर कुछ दिनों तक बैठक आयोजित करता रहा । परन्तु इंग्लैण्ड तो इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान तो हिन्दुस्तान है ? जानसन क्लब अनवरत ५०-६० वर्ष चलता रहा था और हमारा हिन्दू क्लब तो कौन जाने ५०-६० दिन भी चल सकेगा या नहीं । कुछ दिन पूर्व उसका मिलाप [रूपांतर] यहां के गायन-समाज के साथ होगा, ऐसा सुना था । किसे मालूम यह अपूर्व संयोग किस रसायन क्रिया से होने वाला था ।

—विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

ऋषि दयानन्द सरस्वती
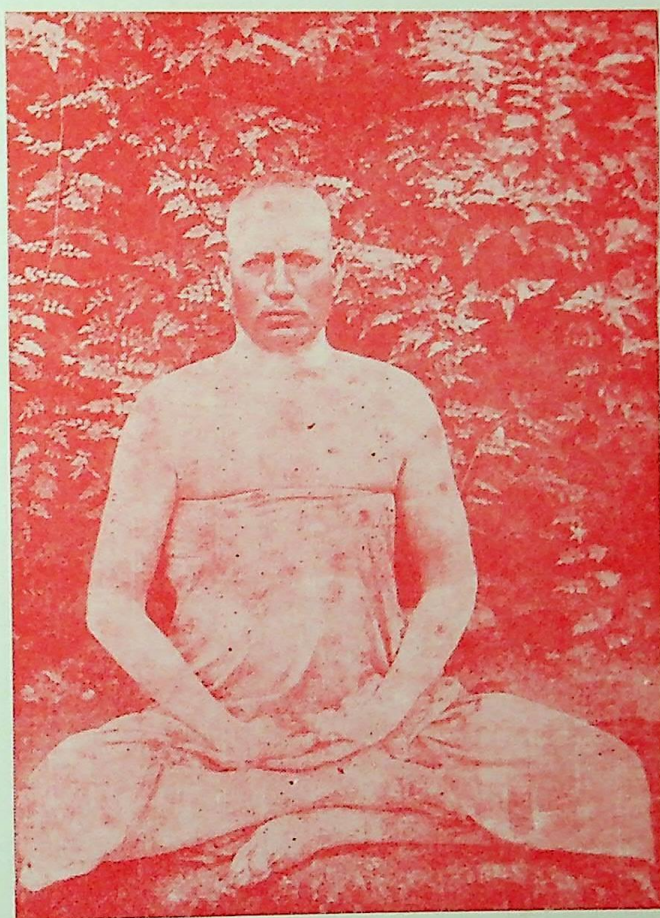
ऋषि दयानन्द संवत् १९२४ (=सन् १८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५-४० के मध्य की प्रतीत होती है, और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। श्री मामराज जी को यह चित्र सन् १९२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेशण करते हुए मेरठ से मिला था।
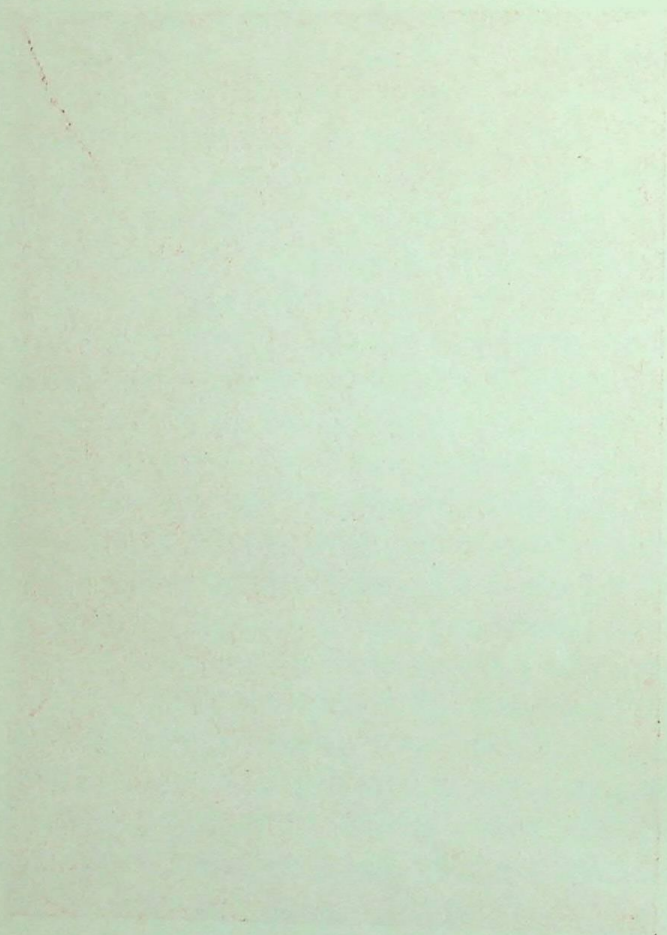
ऋषि दयानन्द सरस्वती

ऋषि दयानन्द का यह चित्र विक्रम सं० १९२४ (=सन् १८६७ ई०) में हरिद्वार के कुम्भ (जहां कुटिया पर पाखण्ड-खण्डनी पताका लगी हुई थी) के अन्तिम समय में लिया गया था, ऐसा पुराने आर्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ है। इसी चित्र के आधार पर चित्रशाला पूना द्वारा एक बड़ा चित्र छपा था। यह मैंने २५ दिसम्बर १९२६ को फर्रुखाबाद के महाशय भुन्नीलाल जी आर्य (वृद्ध) के पास देखा था।

ऋषि दयानन्द सरस्वती

यह चित्र आश्विन सं० १९३१ (=अक्टूबर सन् १८७४) में श्रीमान् कृष्णराव जो गोलवल्कर एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर जबलपुर ने ऋषि दयानन्द को अपने स्थान पर ले जा कर और अपने यहां से वस्त्र पहना तथा कुरसी पर बैठा कर खिचवाया था । इस चित्र में पास में टेबुल के सहारे मुड़ी मूठ की बेंत रक्खी है । इस चित्र को श्री देवेन्द्र बाबू ने स्वयं वहां जाकर देखा था । देखो उनके द्वारा सकलित और आर्य साहित्य मण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित जीवन चरित पृष्ठ २८१ । इस चित्र का वास्तविक कांच का प्लेट उनके पुत्र मनोहरकृष्ण गोलवल्कर ने आर्यसमाज जबलपुर को सौंप दिया है ।

ऋषि दयानन्द सरस्वती

यह चित्र सं० १९३२ (=सन् १८७५) में दूसरी बार बम्बई गमन के अवसर पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने तैयार किया था। इस का उल्लेख श्री देवेन्द्र बाबू संकलित जी० च० पृष्ठ ३३६ में मिलता है।
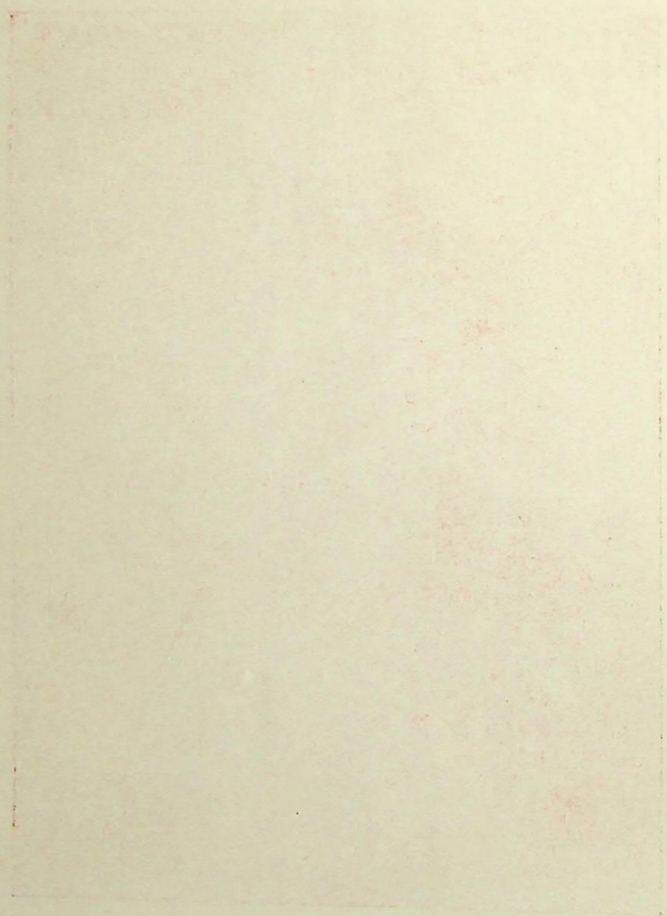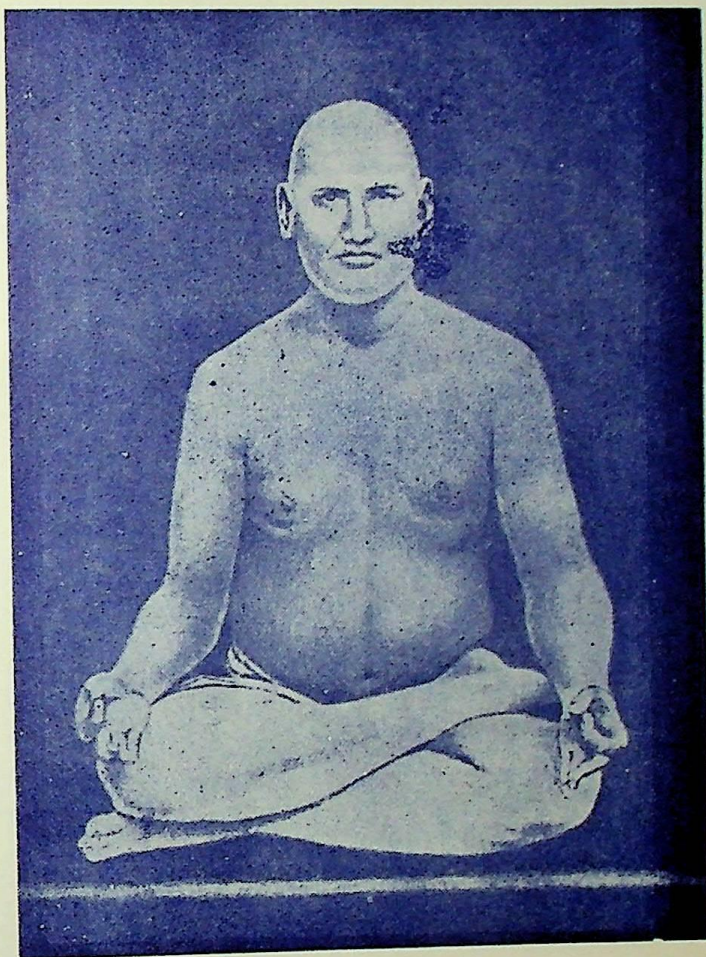
ऋषि दयानन्द सरस्वती समाधि-मुद्रा में

यह चित्र सं० १९३६ (=सन् १८७९) में मेरठ में खींचा गया था।
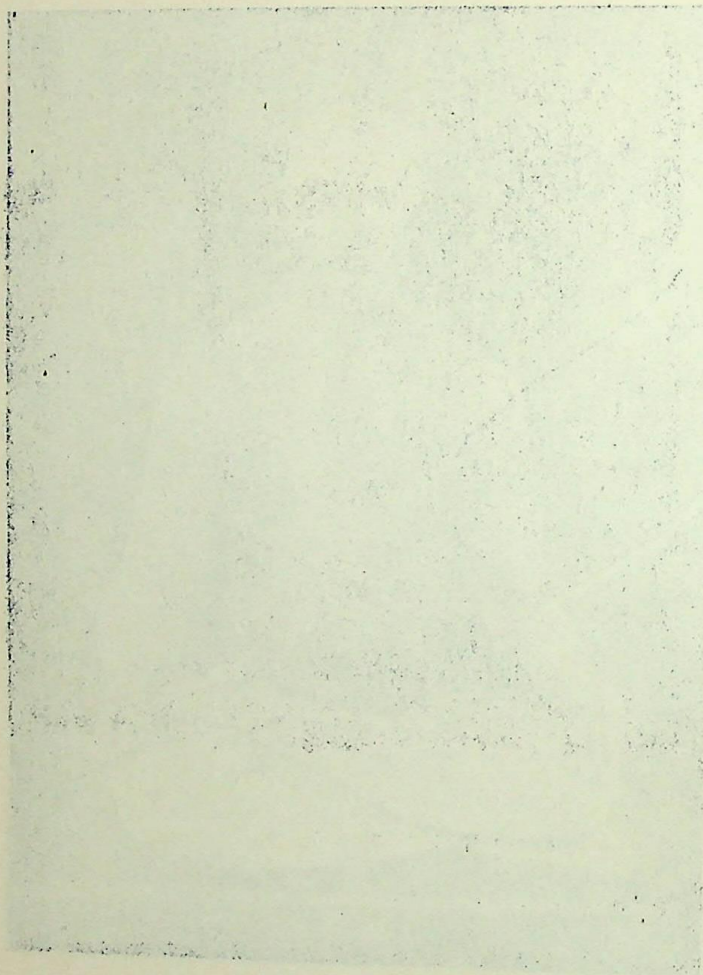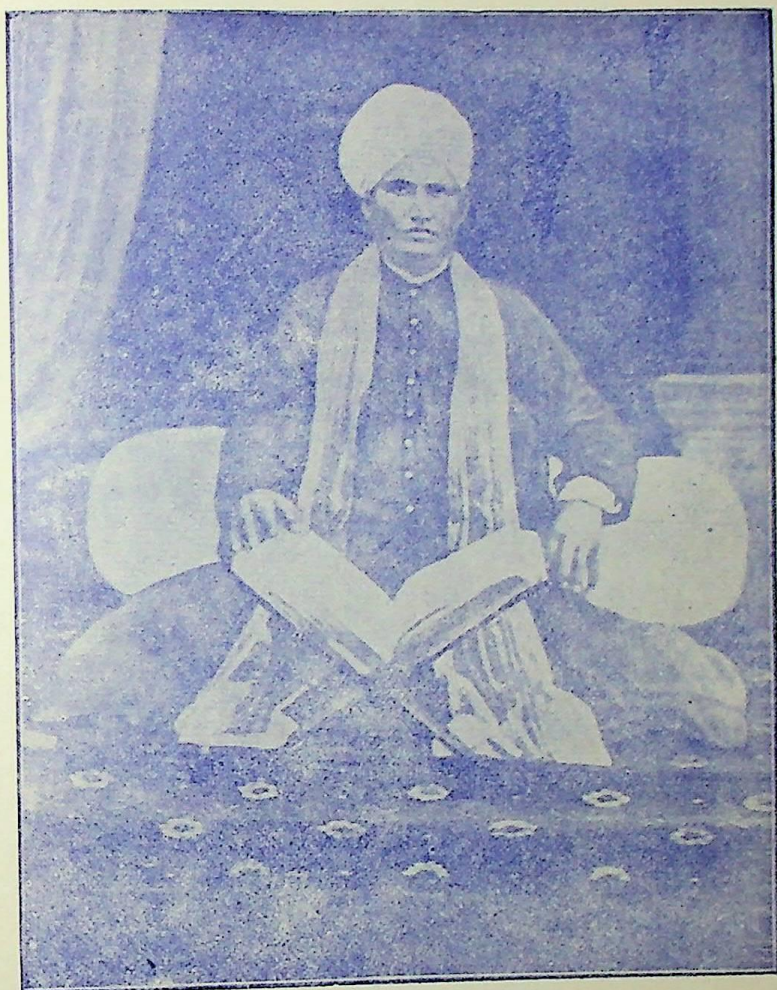
ऋषि दयानन्द सरस्वती

इस चित्र में ऋषि दयानन्द पगड़ी बांधे हुए बैठे हैं, सामने पुस्तक खुली हुई है। अतिसार रोग के कारण शरीर कुछ दुर्बल हो रहा है। यह चित्र सं० १९३६ (=सन् १८७९) में लिया गया था। इसका छोटा सा चित्र महात्मा हंसराज जी ने रा० ब० संसारचन्द्र जी से प्राप्त करके श्री पं० भगवद्दत्त जी को दिया था, उसी से उन्होंने बड़ा चित्र बनवा कर दयानन्द कालेज लाहौर के लालचन्द पुस्तकालय में लगवाया था।
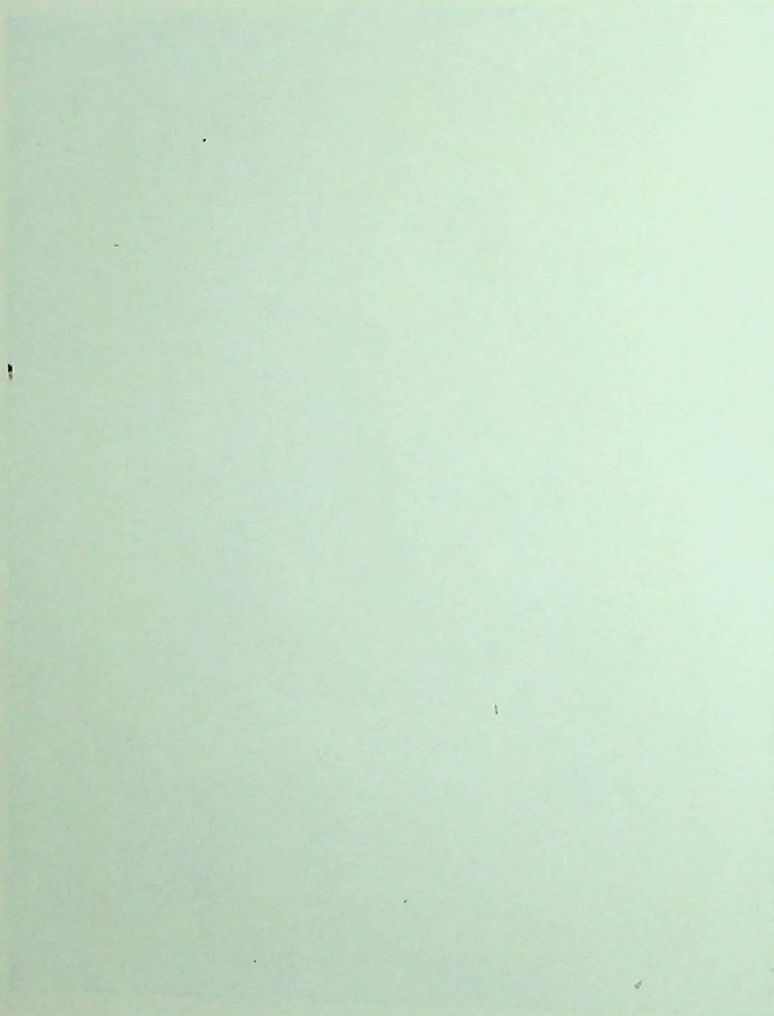
ऋषि दयानन्द सरस्वती

इस चित्र में ऋषि दयानन्द सारे वस्त्र पहने हुए हैं, हाथ में चांदी की मूठ का दण्ड लिये हुए हैं। यह देहरादून में कार्तिक या मार्गशीर्ष सं० १९३७ (=अक्टूबर नवम्बर १८८०) में लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। श्री देवेन्द्र बाबू संकलित जी० च० पृष्ठ ६२४ से इतना तो स्पष्ट है कि सं० १९३७ (सन् १८८०) में देहरादून में ऋषि दयानन्द का एक चित्र लिया गया था।

ऋषि दयानन्द सरस्वती और ब्र० रामानन्द

इस चित्र में ऋषि दयानन्द कुरसी पर बैठे हैं, पैर में खड़ाऊँ पहने हुए हैं, पास में एक ओर ब्र० रामानन्द खड़ा है, तथा दूसरी ओर मेज पर तीन पुस्तकें रक्खी हैं । यह चित्र सम्भवतः शाहपुरे में सं० १९४० के प्रारम्भ में लिया गया होगा । इसी चित्र को रामानन्द के पास भेजने का उल्लेख ऋषि दयानन्द के वैशाख शु० ४ सं० १९४० (=१० मई १८८३) के रामानन्द के नाम लिखे पत्र में मिलता है ।
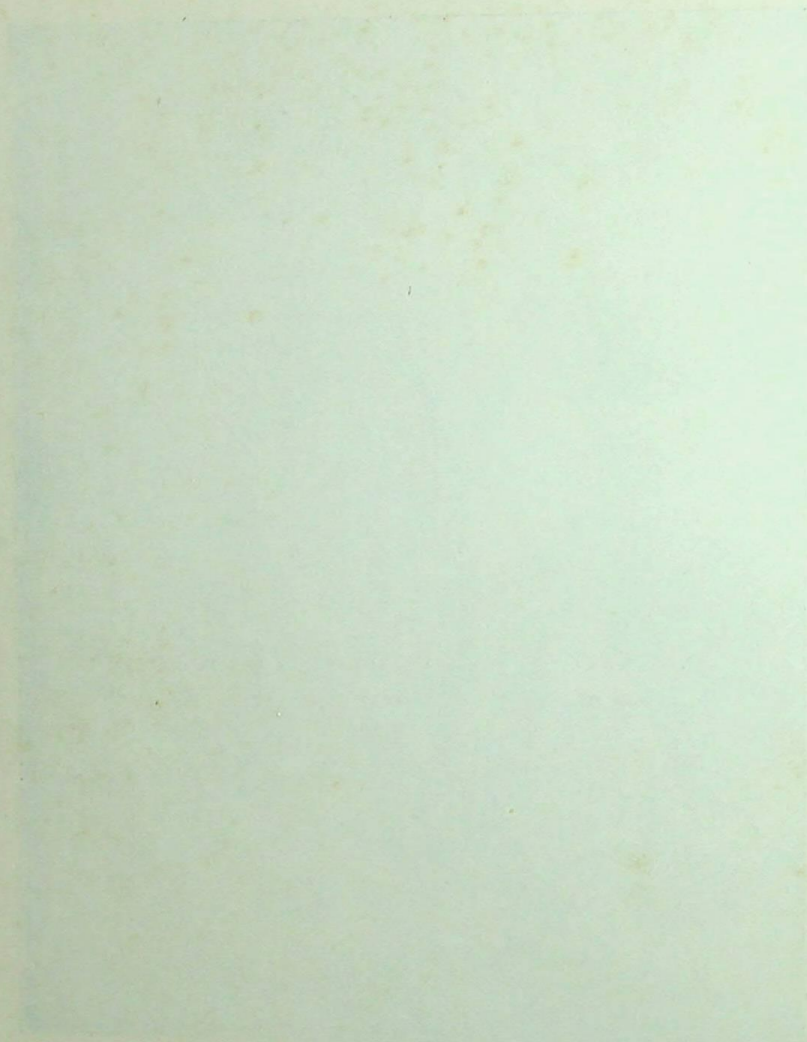
ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र

सं० १९३५ फा० शु० ११ मंगल ता० ४ मार्च सन १८७९

पंडित श्यामजी कृष्णवर्म्मा आनन्दित रहो तुम्हारा
ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ
मैं बहुत शोक इस बातमें करता हूं कि हमारे प्रियबन्धुवर्ग पाताल
देशनिवासी लोगों को मुंबई में आके मिल नहीं सकता
क्योंकि हरद्वार में चैत्र की समाप्ति पर्य्यन्त ठहरने का नोटिस फालगुन शुदी ६ गुरुवार
से दे चुका हूं॥ और यहां इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूं.
अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता॥ जब वे इस देश में ला
हौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब यहां वा कहीं
अत्यन्त प्रेम के साथ उन से मिलूंगा और बातचितें भी यथोचि
त होंगी उनसे मेरा आशीर्वाद कहके कुशल क्षेम प्रेमसे पूं
छना॥ और जो तुमने समाज के विषयमें लिखा कि न आओगे
तो यहां का आर्य्यसमाज टूट जायगा क्या तुमने समाज
हरिचन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आ
ने जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहां २
जा आ सकता हूं जो समाज में योग्य प्रधान हो उसको [illegible] कर
दूसरा नियत करके समाज का काम ठीक २ चलाना चाहि
ये॥ कल यहांसे चलके मुन्शी समर्थदान वेदभाष्य के काम पर निय
त होके मुंबई को आते हैं तुमसे मिलेंगे छापेवालों और
कागज वालोंसे ठीक २ नियम करा देना और बाबू हरिचन्द्र से
चिन्तामणि से भी सब पुस्तक पत्रे दिला देना सब हिसाब किताब
कराके शीघ्र खुलासा करा देना और इनको मकान आदि का
क्लेश कुछ भी कभी न होने पावे

दयानन्द सरस्वती

यह पत्र 'पत्र-विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ २४६-२४७ पर छपा है।

ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुत श्यामजि कृष्णवर्मभ्यो
दयानन्दसरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् शमि
हास्ति तत्रास्त्यं भवदादीनां च नित्यमाशासे ॥
अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थं दाननामानं पुरुषं
वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सन्निधिं मुम्बापुर्यां वर्त्तमानेऽहमिति
प्रेषयामि यथासमयमयं तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथंचित्क्लेशो
न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्यसम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनी
यानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति ॥ ये तत्र सभासदः सज्जनाः
सन्ति तैः सह संमेलनं कृत्वा ये तत्र पाताल देश निवासिनो
वर्त्तन्ते तेभ्योऽत्यन्तादरेणाशिषः संश्राव्य कुशल क्षेमता
प्रष्टव्या ॥ यथा मयि प्रीतिर्वर्त्तते तथैवैतस्मिन् प्रेमभावो
विधेयो विद्याऽध्यापन सहायार्थं स्थानं भवत्प्रबन्धश्च
यथावत्समर्थदानस्य कार्य्य इति च ॥

(दयानन्दसरस्वती)

यह पत्र 'पत्र-विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ २४६-२४७ पर छपा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित एक पत्र की चित्र प्रतिलिपि

बाबू म० धीलाल जी आनन्दित रहो
हम यहांसे चल के आनन्दपूर्वक का
शी में पहुंचकर महाराजे इजान
गर के आनन्दबागमें ठहरे हैं यह
बाग बहुत अच्छा है हवा और
जल यहांका बहुत अच्छा है म
कान भी इस बाग में बहुत और उ
त्तम हैं यहबाग प्रसिद्ध है इसमें
ठहरनेके लिये राजा रससाहेब
ने प्रबंध पहिले कर रक्खा था चिट्ठी
पहुंचने पर जैसा यह बाग है
वैसा काशी में दूसरा नहीं है इ
सके और अवश्य लिखने योग्य
समाचार हों वे लिखे जायंगे आप
लोग भी लिखते रहना॥ सबसे नम
स्ते कहना॥ सं० १९३६ मि० का० ष
८ एक वार दयानन्द सरस्वती
काशी

यह पत्र पत्र-विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ३०४ पर छपा है। (वहां भूल से दो लाइनें दुबारा छप गई हैं)।

ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी लालसिंह जी आनंदित रहो
विदित हो कि हम उदयपुर से फाल्गुन वदि ७ मंग
लवारके दिन ८ चित्तौड़ में आन पहुंचे और अब यहां
से फाल्गुन वदी ११ शनिवार के दिन शामको रेल
में बैठकर चतुर्दशी के दिन शाहपुरा राज
मेवाड़ जिला अजमेर जो कि बड़ी कोठी
से ८ कोश है जायंगे और जो डाक जहां तो
वहीं भेज देना - आगे हाल यह कि एक
स्वीकारपत्र राज उदयपुर में मुद्रांकित स्वीकृत
हुआ और उसमें अधिपति श्री मानन्दि साक्षर
हुए हैं बाकी सब सभासद जब देख लेंगे तब वि-
दित होगा और एक मान्य पत्र भी दिया है और
र छः शास्त्रों का मुख्य २ विषय और मनुस्मृ-
ति का राजधर्म तथा विदुर प्रजागरादि के श्लो-
क कुछ व्याकरण और अन्वय की रीति भी
महाराणा जी ने मुझसे पढ़ी - और रु० १३००) कल्दार
और एक दुशाला वेदभाष्य के सहायार्थ औ
र एक साधारण दुशाला और रु० १००) कल्दार
रामानन्द ब्रह्मचारी को और ५००) रु० कल्दार
फीरोजपुर के अनाथालय के लिये और रु०
३००) कल्दार उसीनें बखशीश करनेवाले नौक-
रियोंको पारितोषिक प्रदान किया

मिती फाल्गुन वदी १२ संवत् १९३९ तदनुसार
तारीख ६ मार्च सन् १८८३ ई०

(हस्ताक्षर)

दयानन्द सरस्वती

यह पत्र पत्र-विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ २६४ पर छपा है।

ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र

राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो

आपका पत्र मेरे पास आया देखकर अभिप्राय जान लि-
या इसके देखने से मुझको निश्चित हुआ कि आपने वेदों से लेके
पूर्वमीमांसा पर्यन्त विद्यापुस्तकों के मध्य में से किसी भी पु-
स्तक के शब्दार्थ संबंधों को नहीं जाना है इसलिये आपको मेरी बनाई
भूमिका का अर्थ भी ठीक विदित न हुआ जो आप मेरे पास आके स-
मझते तो कुछ२ समझ सकते परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों
के प्रत्युत्तर सुनने की इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती वा बा-
ल शास्त्री जी को खड़ा करके सुनियेगा तो भी आप कुछ२ समझ
लेंगे भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े विना
वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में संबन्ध क्या२ उनमें
है और स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परतः प्रमा-
ण और ऋषिमुनिकृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या२ सि-
द्धान्त सिद्ध होते हैं और ऐसे हुए विना क्या२ हानि होती है इन वि-
द्या रहस्य की बातों को आप कभी नहीं समझ सकते। सं० १९३६ मि० वै०
व० सप्तमी शनिवार

दयानन्दसरस्वती

यह पत्र 'पत्र-विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ३३१ पर छपा है।

ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र
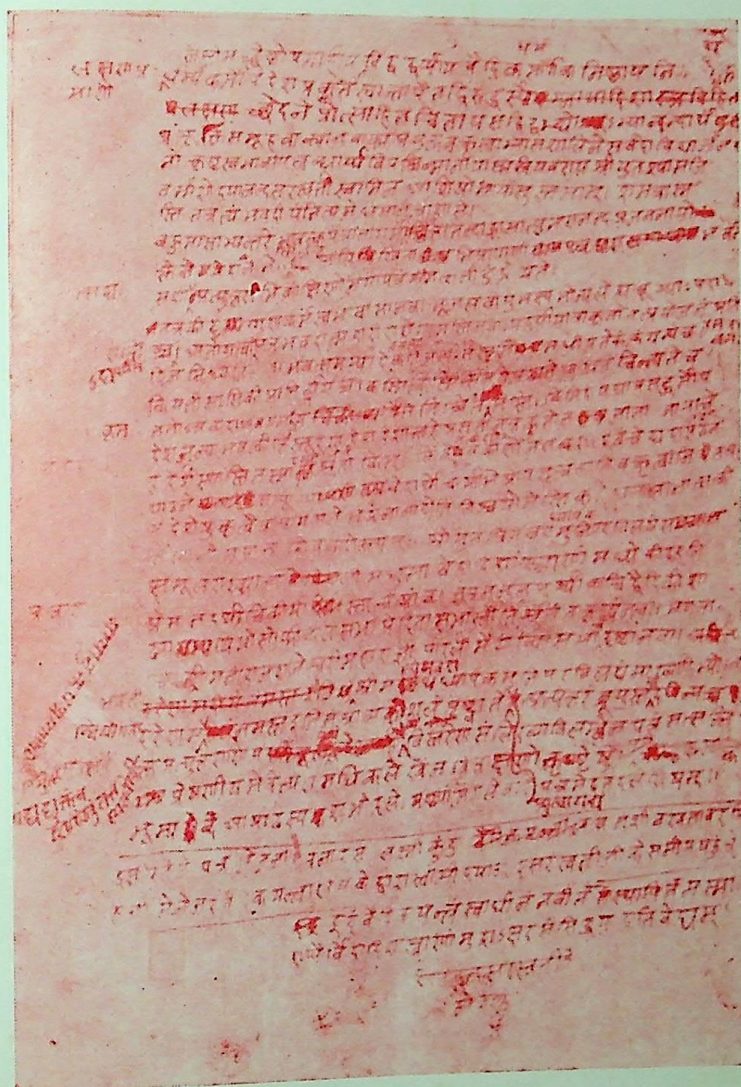
यह पत्र 'पत्र-विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ३४७-३४८ पर छपा है।

ऋषि दयानन्द का स्वहस्त-लिखित पत्र

यह पत्र 'पत्र-विज्ञापन' के भाग २, पृष्ठ ४९५ पर छपा है।

ऋषि दयानन्द के ११ अक्तूबर १८८३ के अन्तिम हस्ताक्षर

Acknowledgment

No. 107 Date 9/11 188 3

For Rs 13 As 6

Signature of the Payee.

Date of delivery

This acknowledgment will be signed either by the payee ... the office of delivery, and will be returned to the ... receipt for money paid ... may order obtained for ...

इसकी प्रतिलिपि 'पत्र-विज्ञापन,' भाग २, पृष्ठ ८१० पर छपी है।

ऋषि दयानन्द सरस्वती कहां और कब

अर्थात्

आगमन-प्रतिगमन की तिथि और तारीख

[स्वर्गीय श्री पं महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल, प्रो० हिन्दु विश्वविद्यालय काशी ने "स्वामी दयानन्द सरस्वती कहां और कब" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसी का संशोधन परिवर्धन तथा तिथियों के साथ अंग्रेजी तारीखों का निर्देश करके हमने इसे पहले सन् १९५८ में 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों के परिशिष्ट' नामक संग्रह में छपा था। उसके पश्चात् गत २४-२५ वर्षों में इसमें पर्याप्त संशोधन हुआ है। अतः हम इसे अधिक शुद्धरूप में सुरक्षित करने के लिए पुनः छाप रहे हैं। इस अनुसन्धानपूर्ण कार्य से ऋ० द० के भावी चरित-लेखकों को जहां सहायता मिलेगी, वहां पुराने जीवनचरितों की भूलों का भी परिज्ञान होगा।]

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
टंकारा	संवत् १८८१	सन् १८२४	सं० १९०३	सन् १८४६
सायला (शैला)	१९०३	१८४६	१९०३ श्रावण	१८४६ जु० अग०
कोट गंगारा (कोटकांगढ़)	,, श्रावण	,, जु० अग०	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०
सिद्धपुर	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०	,, कार्तिक	,, अक्टू० न०
१ अहमदाबाद A	,, कार्तिक	,, अक्टू० न०	,, ,,	,, ,, ,,
१ वड़ौदा	,, पौष	,, दिस०	१९०४	१८४७
१ चाणोद कर्णाली	१९०४	१८४७	,,	,,
व्यासाश्रम	,,	,,	१९०५	१८४८
सिनोर (छिनूर)	१९०५	१८४८	१९०६	१८४९
२ चाणोद कर्णाली	१९०६	१८४९	१९०७	१८५०
२ अहमदाबाद	१९०७	१८५०	१९०८	१८५१
१ आबू	१९०९	१८५२	१९११	१८५४
१ हरिद्वार	१९११ अन्त	१८५५ आदि	१९१२ आरम्भ	१८५५ मध्य
१ हृषीकेश	१९१२	,,	,,	,,
१ देहरादून	,,	,,	,,	,,
टिहरी	,, वैशाख	,, अ० मई	,, वैशाख	,, अप्रै० मई

A जिस स्थान पर ऋषि दयानन्द एक से अधिक अधिक बार गये, उसके नाम के पूर्व आगमन की संख्या दी गई है।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
१ श्रीनगर (गढ़वाल)	संवत् १९१२ वैशाख	सन् १८५५ अप्रै० मई	सं० १९१२ वैशाख	सन् १८५५ अप्रै० मई
रुद्रप्रयाग	" ज्येष्ठ	" मई	" ज्येष्ठ	" मई
अगस्त्य मुनि की समाधि	" "	" "	" "	" "
शिवपुरी	" अषाढ (प्र)A.	" जु०	" भाद्र	" अग० सि०
२ श्रीनगर (गढ़वाल)	" भाद्र	" सि०	" "	" सित०
१ गुप्तकाशी	" भाद्र	" सित०	" "	" सित०
गौरीकुण्ड	" "	" "	" "	" "
भीम गुफा	" आश्विन	" सित० अक्टू०	" आश्विन	" सित० अक्टू०
त्रियुगीनारायण	" "	" " "	" "	" अक्टू०
३ श्रीनगर (गढ़वाल)	" "	" अक्टू०	" "	" "
तुंगनाथ	" "	" "	" "	" "
१ ऊखीमठ	" "	" "	" "	" "
२ गुप्तकाशी	" "	" "	" "	" "
२ ऊखीमठ	" "	" "	" "	" "
जोशीमठ	" कार्तिक	" अक्टू० नव०	" कार्तिक	" अक्टू० नव०
१ बद्रीनाथ	" "	" नव०	" "	" नव०
अलखनन्दा का स्रोत	" "	" "	" "	" "
वसुधरा	" "	" "	" "	" "
माना ग्राम के निकट	" "	" "	" "	" "
२ बद्रीनाथ	" "	" "	" "	" "
चिलकिया घाटी	" अगहन	" नव० दिस०	" अगहन	" नव० दिस०
रामपुर	" "	" दिस०	" "	" दिस०
काशीपुर	" "	" "	" फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च
१ मुरादाबाद	" फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च	" "	" " "
सम्भल	" "	" " "	" "	" " "
१ गढ़मुक्तेश्वर	" "	" " "	" "	" " "
१ फर्रुखाबाद	" चैत्र कृष्णB पक्ष	" मार्च अप्रै०	" चैत्र कृ०	" मार्च अप्रै०
१ शृङ्गीरामपुर	" " "	" " "	" " "	" " "

A जिस वर्ष मलमास के कारण एक नाम के दो महीने होंगे वहां वहां (प्र) से प्रथम और (द्वि) से द्वितीय मास समझें।

B आगे सर्वत्र 'कृ' से कृष्ण पक्ष और शु से 'शुक्ल' पक्ष समझें।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
१ कानपुर	१९१३ चैत्र शुक्लA पक्ष	१८५६ अप्रै०	१९१३ चैत्र शुक्ल	१८५६ अप्रै०
१ प्रयाग	,, श्रावण	,, जुला० अग०	,, श्रावण	,, जुला० अग०
१ मिर्जापुर	,, भाद्र	,, अग०	,, भाद्र	,, सित०
विन्ध्याचल	,, ,,	,, सित०	,, ,,	,, ,,
१ काशी	,, आश्विन कृ०	,, सितम्बर	,, आश्विन शुक्ल	,, सितम्बर
१ चर्णारगढ़ चण्डालगढ़ चुनार (गढ़)	,, ,, शु० २	,, अक्टू० १	१९१४ चैत	१८५७ मार्च अप्रै०
नर्मदा का स्रोत	१९१४ ज्येष्ठ	१८५७ मई जून	१९१६	१८५९
१ हाथरस	१९१७ कार्तिक	१८६० अक्टू० न०	१९१७ कार्तिक	१८६० नव०
१ मुरसान	,, ,,	,, नवम्बर	,, ,,	,, ,,
१ मथुरा	१९१७ कार्तिक	१९६० नव०	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रै० मई
१ आगरा	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रै० मई	१९२१ आश्विन	१८६४ सि० अक्टू०
धौलपुर	१९२१ कार्तिक	१८६४ अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ ग्वालियर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ आबूB	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ ग्वालियर	,, माघ कृ० १२	१८६५ जन०२५मं०	१९२२ वै० शु० १२,१३	१८६५ मई७,८ र.सो.
करौली	१९२२ ज्येष्ठ	,, मई जून	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०
खुशहालगढ़	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ जयपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, चैत्र कृ० ५	१८६६ मार्च ६ मं०
१ बगरू	,, चैत्र कृ० ५	१८६६ मार्च ?C	,, ,, कृ० ७	,, मार्च ?
१ दूदू	,, ,, ७	,, ,, ?	,, ,, ,, ९	,, ,, ?
१ कृष्णगढ़ (किशनगढ़)	,, ,, ९	,, ,, ?	१९२३ ,, शु० १	,, ,, ?
१ अजमेर	१९२३ ,, शु०१	,, ,, ?	,, ,, ,, ५	,, ,, ?
१ पुष्कर	,, ,, ,,	,, ,,	,, ज्येष्ठ (द्वि०)	,, मई जून
२ अजमेर	,, ज्येष्ठ (द्वि०)	,, मई जूनD	,, ,, ,,	,, ,, ,,

A आगे सर्वत्र 'कृ' से कृष्ण पक्ष और 'शु' से शुक्ल पक्ष समझें।

B आबू जाना सन्दिग्ध है। यु० मी०।

C तिथियों का ज्ञान होने पर भी इस समय का पञ्चाँग प्राप्त न होने से तारीखों का उल्लेख नहीं किया।

D पं० लेखराम कृत जीवन चरित के अनुसार ३० मई।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
२ कृष्णगढ़A	१९२३ ज्येष्ठ (द्वि)	१८६६ मई जून	१९२३ ज्येष्ठ (द्वि०)	१८६६ मई जून
२ दूदूA	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ बगरूA	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ जयपुर	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
२ आगरा	,, कार्तिक कृ०९	,, अक्टू० ?	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०
२ मथुरा	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, ,,	,, ,, ,,
१ मेरठ	,, ,,	,, ,, ,,	,, फाल्गुन	१८६७ फर० मार्च
२ हरिद्वार	,, फाल्गुन शु० १	१८६७ मार्च १	१९२४ वैशाख	,, अप्रै० मई
२ हृशीकेश	१९२४ वैशाख	,, अप्रै० मई	,, ,,	,, ,, ,,
३ हरिद्वार	,, ,,	,, ,, ,,	" ,,	,, ,, ,,
कनखल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
लण्ढौरा	,, ,,	,, ,, "	,, ,,	,, ,, ,,
शुकताल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
मीरांपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
मुहम्मदपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
परीक्षितगढ़	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ज्येष्ठ	,, मई जून
पटियाली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कम्पिल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कायमगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
शमसाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ फर्रुखाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर(की ओर)	,, ,,	,, ,, ,,	,, आषाढ़(आरंभ)	,, जून
२ अनूपशहर	,, आषाढ़	,, जून जुलाई	,, ,,	,, जून जुलाई
२ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,

A कृष्णगढ में पाँच, दूदू में ३ दिन, और बगरू में १ रात ठहरते थे। लेख० जी० च० पृष्ठ ६८,६६।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
१ ताहीरपुर	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८६७ जून जु०	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८७५ जून जु०
२ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ रामघाट	,, ,, शु० ५	,, जुलाई ६ शनि	,, ,, शु०	,, जुलाई
३ कर्णवास	,, ,, शु०	,, जुलाई	,, भाद्र	,, अग० सित०
३ रामघाट	,, भाद्र	,, अग० सि०	,, ,,	,, ,, ,,
४ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
अहार	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
३ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ ताहीरपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
३ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, (अन्त)	,, नव०
५ कर्णवास	,, ,, (अन्त)	,, नव०	० मार्गशीर्ष	,, नव० दि०
४ रामघाट	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, ,,	,, ,, ,,
१ अतरौली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
५ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बेलोन	८ ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
६ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, फाल्गुन कृष्ण	१८६८ फर०
४ अनूपशहर	,, फाल्गुन कृ०	१८६८ फर०	,, फाल्गुन शुक्ल	,, मार्च
६ रामघाट	,, ,, शुक्ल	,, मार्च	,, ,, ,,	,, ,,
कछिलाघाट	,, ,, ,,	,, ,,	,, चैत कृष्ण	,, ,,
गढ़ियाघाट	१९२५ चैत शु०	,, अप्रेल	१९२५ ,, शुक्ल	,, अप्रेल
२ सोरों	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
(अम्बागढ़)	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
७ कर्णवास	,, ज्येष्ठ कृष्ण	,, मई	,, कार्तिक	,, अक्टूबर
३ सोरों	,, कार्तिक	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
(अम्बागढ़)	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
सरावल	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
शाहबाजपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
कादिरगंज	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ नरदौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
ककोड़ा	,, ,, शु० १३	,, अक्टू० २६ गुरु	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम
२ नरदौली	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम	,, ,, ,, ११	,, ,, १० मं०

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
२ कायमगंज	सं० १९२५ मार्ग०कृ०११	१८६८ नव०१० मं०	सं० १९२५ मार्ग० शु०	सन् १८६८ नव०
२ कम्पिल	,, ,, शु०	,, नव०	,, पौष	,, दिस०
शुकरुल्लापुर	,, पौष	,, दिस०	,, ,,	,, ,,
३ फर्रुखाबाद	,, ,,	,, ,,	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून
२ शृङ्गीरामपुर	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
जलालाबाद	,, ,,	,, जून	,, ,,	,, जून
कन्नौज	,, आषाढ़	,, जून जुलाई	,, आषाढ़	,, जून जुलाई
बिठूर	,, ,,	,, जुलाई	,, ,,	,, जुलाई
मदारपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ कानपुर	,, ,,	,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
शिवराजपुर	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०	,, ,,	,, ,, ,,
२ प्रयाग	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
रामनगर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्ति०कृ०२,३(?)	,, अक्टू० २२,२३(?)
२ काशी	,, कार्तिक कृ० २,३	,, अक्टू० २२,२३	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०
२ मिर्जापुर	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, माघ	१८७० जन० फरवरी
३ प्रयाग	,, माघ शु० ५	१८७० फर०५ शनि	,, फाल्गुन	,, फरवरी मार्च
३ मिर्जापुर	,, फाल्गुन	,, फर० मार्च	१९२७ चैत शु०	,, अप्रेलA.
मथुराA	... ...	... ...	... ...	... ...
काशीA	... ...	... ...	... ...	— ...
३ काशी	१९२७ चैत शु०B	१८७० अप्रेल	१९२७ ज्येष्ठ	१८७० मई जून
४ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
१ कासगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विनC	,, सित० अक्टू०

A मिर्जापुर निवास काल के मध्य में मिर्जापुर की पाठशाला में पढ़ाने के लिए मथुरा जाकर पं० युगलकिशोर को लाने तथा काशी जाकर आवश्यक ग्रन्थ लाने का वर्णन श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ १९३ पर मिलता है।

B पं० लेखराम कृत ज़ीवनचरित में (हिन्दी सं०) पृष्ठ १७६ पर लिखा है—ज्येष्ठ बदी सं० १९२७ के आरम्भ में तदनुसार १६ मई सन् १८७० सोमवार को काशी पधारे।' इसी के अनुसार मिर्जापुर से प्रस्थान की तिथि तारीख का अनुमान करना चाहिये। हमने पुरानी तिथि मास ही छापा है।

C इसी बीच में ऋषि दयानन्द कुछ दिनों के लिये फर्रुखाबाद भी गये थे। देखो अगले पृष्ठ की पहली टिप्पणी।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
[४ फरुखाबादA	सं० १९२७ भाद्र	सन् १८७० अग०सित०	१९२७ भाद्र	१८७० अग०सित०]
विलराम	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
चकेरी (के निकट)	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
हरनोट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
७ रामघाट	,, ,,	,, सि० अक्टू०	,, ,,	,, ,, ,,
५ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
८ रामघाट	,, कार्तिक पूर्णिमा	,, नव० ८ मं०	,, मार्गशीर्ष	,, नव०
४ चासी	,, मार्ग०	,, नव०	,, ,,	,, ,,
६ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ छलेसर	,, ,, कृ०४,५	,, नव०१२,१३श.र.	,, पौष कृ० १	,, दिस० ६ शु०
२ अतरौली	,, पौष	,, दिस०	,, पौष	,, दिस०
विजौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
५ सोरों	,, ,,	,, ,,	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च
२ कासगंज	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च	१९२८ चैत्र शु०	,, अप्रैल
B[... ...	... ...	... ...	... ...	... ...
... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]

A फर्रुखाबाद के इतिहास पृष्ठ १२२ पर सं० १९२८ के भाद्र मास में फर्रुखाबाद जाने का उल्लेख हैं। उसी वर्णन में मिर्जापुर की पाठशाला से पं० युगलकिशोर को बुलाने का वर्णन भी है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पूर्ण सं० २ पृ० ७ के पत्र से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने पं० गंगादत्त को फर्रुखाबाद बुलाने के लिए सं० १९२७ भाद्र शु० ६ बृहस्पतिवार को पत्र लिखा था। ऋ० द० के जीवन चरित (पं० देवेन्द्र० सं० पृ० १९६) में लिखा है कि कासगंज की पाठशाला के लिये फर्रुखाबाद की पाठशाला के अध्यापक दुलाराम (दिनेशराम) को बुलाया था। इससे स्पष्ट है कि जब फर्रुखाबाद की पाठशाला में कोई अध्यापक नहीं रहा और मथुरा से पं० गंगादत्त शर्मा भी नहीं आये, तब उसी समय (भाद्र सं० १९२७) पं० युगलकिशोर को मिर्जापुर से बुलाया होगा। अतः फर्रुखाबाद के इतिहास में सं० १९२७ के स्थान में १९२८ भूल से छपा है, यह विस्पष्ट है। पाठक सुधार लें। फर्रुखाबाद के इतिहास के आधर पर ही प० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृ० २०६ पर पं० वासीराम जी एम० ए० से भी यही भूल हुई है। ऋषि दयानन्द सं० १९२७ के मार्गशीर्ष में पुनः फर्रुखाबाद पधारे थे, इसका वर्णन फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। इसी प्रकार सं० १९१२ चैत कृष्ण में फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख उक्त इतिहास में नहीं है। इन दोनों वारों का वर्णन जोड़ने पर ऋ०द० फर्रुखाबाद ९ बार पधारे थे। अगले चरित लेखक भूल ठीक करें।

B कासगंज से चैत्र शु०१९२७ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् ज्येष्ठ में रामघाट पहुंचने का उल्लेख मिलता है। इस बीच में श्री स्वामी जी महाराज कहां कहां रहे, यह अज्ञात है।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
१० रामघाट	१९२७ ज्येष्ठ	१८७१ मई जून	१९२८ आषाढ़	१८७१ जून जुलाई
A[... ...	... ...	... ...	... ...	... ...
... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]
८ कर्णवास	१९२८ भाद्र(द्वि)	१८७१ सित०	१९२८ भाद्र (द्वि०)	१८७१ सित०
६ अनूपशहर	,, ,, शु०१४	,, ,, २७ बु०	,, कार्तिक	,, नव०
९ कर्णवास	,, कार्तिक	,, नव०	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०
५ फर्रुखाबादB	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०	,, माघ	१८७२ जनवरी फर०
४ काशी	,, फाल्गुन कृ० १C	१८७२ मार्च १	१९२९ चैत्र शु० ९	,, अप्रैल १६ मं०
मुगलसराय	१९२९ चैत्र शु० ९	,, अप्रैल १६मं०	,, वैशाख कृ०D	,, अप्रैलD
१ डुमरांव	,, वैशाख कृ०D	,, अप्रैलD	,, भाद्र कृ०	,, अग०
१ आरा	,, भाद्र कृ०	,, अगस्त	,, ,, शु० ३,४	,, सि०६,७ शु०श०
१ पटना	,, ,, शु० ३,४	,, सि०६,७शु०श०	,, आ०कृ०३०	,, अक्टू० २ बुध
मुंगेर	,, आश्विन शु० १	,, अक्टू० ३ गु०	,, कार्तिक कृ०२E	,, अक्टू० १८ शु०
१ भागलपुर	,, कार्तिक कृ० ४E	,, अक्टू०२०र०	,, पौष कृ० १	,, दिस० १५ र०
कलकत्ता	,, पौष कृ० २	,, दिस०१६ सो०	,, ,, F	१८७३ जन० ३१ शु०D
मुर्शिदाबाद वालूचा	,, ,,F	१८७३ फर० १ श०	,, ,, F	,, फरवरी २१ शु०
कलकत्ता	,, ,,F	,, फरवरी २२ श०	,, ,, F	,, मार्च १२ बु०
नवद्वीप	,, ,,F	,, मार्च १३ वृ०	,, ,, F	,, मार्च १९ बु०
वराह नगर (कलकत्ता का उपनगर)	,, ,,F	,, मार्च १९बु०	१९३० चैत शु० ४	,, अप्रैल १ मं०

A रामघाट से आषाढ़ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् कर्णवास भाद्र (द्वितीय) में पहुंचे। इस बीच में तीन मास कहां कहां भ्रमण किया, यह अज्ञात है।

B इस बार फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। देखो पूर्व पृष्ठ ४७ की टिप्पणीA।

C पं० लेखराम जी कृत जी० च० (हिन्दी सं०) पृष्ठ १७६ के अनुसार।

D पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २१० के अनुसार मुगलसराय में केवल १० दिन रहे, तदनुसार २६ अप्रैल को डुमराव गये होंगे।

E यहाँ कुछ भूल प्रतीत होती है। मुंगेर से भागलपुर का मार्ग थोड़े समय का है, दो दिन का नहीं। अथवा मार्ग में कहीं अन्यत्र रुके होंगे।

F इस समय हमारे पास संवत् १९२९ का पंचाङ्ग नहीं है। इसलिए तारीख के अनुसार तिथि नहीं दे सके।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
हुगलीA	सं०१९३० चैत शु०४	सन् १८७३ अप्रैल१मं०	सं०१९३०चैतशु१४B	सन् १८७३ अप्रैल१२ शनि
वर्दमान	,, ,, शु० १५	,, ,, १३ र०	,, वैशाख कृ० ४	,, ,, १६ बुध
२ भागलपुर	,, वैशाख कृ० ५	,, ,, १७ गु०	,, ज्येष्ठ कृ० ५	,, मई १७ शनिवार
२ पटना	,, ज्येष्ठ कृ० ६	,, मई १८ रवि	,, ,, कृ०	,, मई
छपरा	,, ,, कृ० १४	,, ,, २५ रवि०	,, ,, शु० १५	,, १० जून मंगल
२ आरा	,, आषाढ़ कृ० १	,, जून ११ बुध	,, श्रावण शु० २	,, जुला० २६ श०
२ डुमरांव	,, श्रावण शु०२	,, जुला०२६श०	,, श्रा०शु०१५	,, अग० ८ शु०
५ मिर्जापुर	,, ,, शु० १५	,, अग० ८ शु०	,, कार्तिक कृ०	,, अक्टूबर
५ प्रयाग	,, कार्तिक कृ०	,, अक्टूबर	,, ,, ,,	,, ,,
३ कानपुर	,, ,, कृ० १४	,, अक्टू०२०सो०	,, मार्गशीर्ष कृ०	,, नव०
१ लखनऊ	,, मार्गशीर्ष कृ०	,, नव०	,, ,, कृ० १४	,, नव० १९ बुध
४ कानपुर	,, ,, कृ० ३०	,, नव० २० बृ०	,, ,, कृ० ३०	,, नव० २० बृ०
५ फर्रुखाबाद	,, ,, शु० १	,, ,, २१ शु०	,, पौष कृ०	,, दिसम्बर
३ कासगञ्ज	,, पौष कृ० ६	,, दिस० १२ बु०	,, ,, ,,	,, ,,
३ अतरौली	,, ,, कृ० ३०	,, दिस०१९ शु०	,, ,, कृ०३०	,, दिस० १९ शु०
२ छलेसर	,, ,, शु० १	,, दिस०२० श०	,, ,, शु० ७	,, दिस० २६ शु०
१ अलीगढ़	,, ,, शु० ७	,, दिस०२६ शु०	,, माघ शु० ५	१८७४ जन० २२ बृ०
२ हाथरस	,, माघ शु ५	१८७४ जन०२२ बृ०	,, ,, शु०	,, जन०
३ मथुरा	,, ,, शु०	,, जन०	,, फाल्गुन शु०११	,, फर० २७ शु०
वृन्दावन	,, फाल्गुन शु० ११	,, फर० २७ शु०	,, चैत्र कृ० ११	,, मार्च १४ श०
४ मथुरा	,, चैत्र कृ० ११	,, मार्च १४ श०	१९३१ ,, शु० २	,, मार्च २० शु०
२ मुरसान	१९३१ चैत्र शु० २	,, मार्च २० शु०	,, ज्येष्ठ	,, मई
६ प्रयाग	,, ज्येष्ठ	,, मई	,, ,,	,, ,,

A जीवनचरितों में ३१ जनवरी को कलकत्ता छोड़ने का तथा पुनः कलकत्ता आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मुर्शिदाबाद-बालूचा आदि जाने का भी उल्लेख नहीं है। हुगली से रवाना होने तथा वर्दमान पहुंचने की भी कोई तारीख नहीं लिखी है। इन ४-५ मास की तारीखों का उल्लेख हमने श्री हेमचन्द्र जी चक्रवर्ती (प्रचारक आदि-ब्रह्म-समाज) की डायरी के अनुसार किया है। डायरी का वह अंश जो ऋषि के जीवन-चरित से संबन्ध रखता है, ज्येष्ठ सं० २०१२ की वेदवाणी में छप चुका है। परन्तु उसके बहुत महत्त्वपूर्ण होने से हम उसे यहां छाप रहे हैं।

B चैत शु० ११ तदनुसार ८ अप्रैल मंगलवार को पं० ताराचन्द्र से शास्त्रार्थ हुआ था। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (तृ० संस्क०). पृष्ठ १२ पं० ११ तथा उसकी टिप्पणी १।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
५ काशी	सं० १९३१ ज्येष्ठ	सन् १८७४ मई	सं०१९३१आषाढ़(द्वितीय)	सन् १८७३ जून
७ प्रयाग	,, आषाढ़(द्वि०)कृ०२	,, जुलाई १ बु०	,, आश्विन	,, अक्टू०
जबलपुर	,, आश्विन	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
नासिक (पंचवटी)	,, ,, शु०	,, ,,	,, ,, शु०	,, ,,
१ बम्बई	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, २० सो०	,, मार्गशीर्ष कृ० १३	,, दिस० ६ र०A
१ सूरत	,, मार्गशीर्ष कृ०१३A[1]	,, दिस० ६ र०	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०
१ भड़ौंच	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०	,, ,,	,, ,,
३ अहमदाबाद	,, ,, शु० ३	,, दिस० ११ श०	,, पौष कृ ५	,, दिस० २८ सो०B
राजकोट	,, पौष कृ० ५B	,, दिस० २८ सो०	,, ,, शु० ११	१८७५ जन० १८ सो०
घोटिलाC	,, ,,कृ०१२ की रात	१८७५ जन०१८ सो०	,, ,, ,, १३प्रात:	,, ,, १९ मं० प्रात:
बड़ोयान	,, पौष शु० १३	,, जन० १९ मं०	,, पौष शु० १४	,, जनवरी २० बुध
४ अहमदाबाद	,, ,, ,, १५D	,, जन० २१ बृ०	,, माघ कृ० ८	,, जनवरी २९ शु०E

A ५ दिसम्बर १९७४ को स्वामी जी ने बम्बई में व्याख्यान दिया था। द्र० पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन-चरित, पृष्ठ २९९,३००। आगे पृष्ठ ३०३ पर सूरत १ दिसम्बर को जाना लिखा है वह अशुद्ध है।

B पौष बदि ५ को राजकोट पहुंचने का उल्लेख 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ४८ पर मिलता है। अहमदाबाद से रात में चले या दिन में इस का उल्लेख नहीं है। पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २९७ में २८ दिसम्बर को अहमदाबाद से चल कर ३१ दिसम्बर को राजकोट पहुंचना लिखा है वह अशुद्ध है। पुनः पौष सुदि ११ सोमवार को राजकोट से चलने का उल्लेख पृष्ठ ४९ पर उपलब्ध होता है।

C चोटिला, राजकोट और बड़ोयान के मध्य में राजकोट से १३-१४ मील पर है, वहां का उल्लेख राजकोट के वर्णन के आस पास किसी जीवन-चरित में नहीं मिलता, परन्तु पं० देवेन्द्रनाथ ने (प्रारम्भिक चार अध्याय उनके ही लिखे हुए हैं) राजकोट से बड़ोयान जाते हुए मार्ग में १ रात चोटिला ठहरने का उल्लेख किया है। देखो -- पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० चरित पृष्ठ १३।

D किसी-किसी पंचांग में इस दिन माघ कृष्ण १ भी लिखा है। पौष पूर्णमासी बृहस्पतिवार को अहमदाबाद पहुंचने का वर्णन 'ऋ० द० और विज्ञापन' भाग१, पृष्ठ ४९ पर मिलता है।

E पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन-चरित पृष्ठ ३२१ में २१ जनवरी को अहमदाबाद आने का उल्लेख है। पुनः पृष्ठ ३२२ पर २७ जनवरी को अहमदाबाद में होने वाली विशेष सभा का उल्लेख किया है। तदनन्तर पृष्ठ ३२६ पर अहमदाबाद से दुबारा सूरत आने और १ व्याख्यान देने का वर्णन है। तत्पश्चात् इसी पृष्ठ पर सूरत से बालसर जाने तथा पृष्ठ ३२७ में बालसर से बसीनरोड जाने और ४ चार दिन वहाँ ठहरने का कथन करके पृष्ठ ३२८ पर २९ जनवरी को बम्बई पहुंचने का वर्णन किया है। २७ जनवरी तक अहमदाबाद रहना और २९ जनवरी को बम्बई पहुंचने से पूर्व सूरत बालसर तथा ४ दिन बसीनरोड ठहरना किसी प्रकार सम्भव

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२ वम्बई	सं० १९३१ माघ कृ० ८	सन् १८७५ जन०२९	शु० सं० १९३२ आषाढ़ कृ०	सन् १८७५ जून
१ पूना	१९३२ आषाढ़ कृ०१A	,, जून २० र०	,, भाद्र शु०B	,, सित०B
भांवुर्डाC	... ...	... ...	... ...	... ...
सातारा	,, भाद्र शु०D	,, सित०D	,, आश्विनE शु०	,, अक्टू०E
२ पूनाF	,, आश्विन शु०E	,, अक्टू०E	,, कार्तिक कृ०G	,, अक्टू०G
३ वम्बई	,, कार्तिक कृ०G	,, अक्टू०G	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी
२ वड़ौदा	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी	,, फाल्गुन	१८७६ फर० मार्च

नहीं । इस वर्णन में कुछ भूल अवश्य है । अगले चरित-लेखक इस पर ध्यान देवें । सम्भव है वह अगली बार अहमदाबाद से लौटते समय का वर्णन हो ।

A २० जून को पूना पहुंचने का उल्लेख लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २७९ पर मिलता है । बम्बई से सम्भवत: २० जून को ही चले होंगे ।

B पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० पृ० ३५७ पर इतना ही उल्लेख है—"पूना से स्वामी जी सितम्बर १८७५ की किसी तारीख को सतारा चले गये ।" इसी जी० च० में पृ० ३५१ पर पूना से विदाई के उपलक्ष में ५ सितम्बर १८७५ रविवार तदनुसार भाद्र शु० ५ सं० १९३२ को समारोह तथा सभा कराने का उल्लेख है । इससे विदित होता है कि ऋ० द० ५ सितम्बर के एक दो दिन के भीतर ही चले गये होंगे ।

C यह पूना के नदी के दूसरे तट पर गांव था । जहां सम्प्रति शिवाजी नगर बसा हुआ है । पूना निवास काल में ही किसी दिन 'श्री भालेकर' ने स्वामी जी का व्याख्यान यहां कराया था । द्र० य० दि० फडके लिखित 'व्यक्ति आणि विचार' पृष्ठ ४९ । D इस विषय में इसी पृष्ठ की B चिह्नित पूर्व टिप्पणी देखें ।

E पं देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५७ पर २३ अक्टूबर तदनुसार कार्तिक कृ० १ को सातारा से पूना लौटने का वर्णन है, वह अशुद्ध है । क्योंकि गुजराती पंचाङ्गानुसारी आश्विन बदी २ (उत्तरभारतीय पंचाङ्गानुसार—कार्तिक बदि २) तदनुसार १६ अक्टूबर को लिखे गये पूर्ण संख्या १८ के पत्र में सातारा से लौट आने का निर्देश है । यह पत्र पूना से लिखा गया या बम्बई से, यह पत्र से स्पष्ट नहीं है । हमारे विचार में यह पत्र पूना से लिखा गया है और २३ अक्टूबर तारीख पूना से बम्बई जाने की प्रतीत होती है । ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन तृतीय संस्क० पृष्ठ ६१ की टिप्पणी ४ भी देखें ।

F पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५६ में प्रथम वार के पूना-वर्णन के प्रसंग में आर्य-समाज की स्थापना का उल्लेख है । परन्तु पूर्ण संख्या २६ के पत्रानुसार द्वितीय बार पूना निवास काल में समाज की स्थापना हुई थी । देखो ऋ० द० पत्र वि० पृष्ठ ६१ । G यहां इसी पृष्ठ की E चिह्न से चिह्नत पूर्व टिप्पणी देखें ।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
५ अहमदाबाद	सं० १९३२ फाल्गुन	सन् १८७६ फर० मार्च	सं० १९३२ फाल्गुन	सन् १८७६ फर० मार्च
२ भड़ौच	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ सूरत	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बलासार	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बसीनरोड	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
४ बम्बई	,, ,,	,, ,, ,,	१९३३ वैशाख शु०८A	,, मई १ सो०A
१ इन्दौर	सं० १९३३ वैशाख शु०	,, मई	,, ,, शु० १	,, मई
७ फर्रुखाबाद	,, ज्येष्ठ कृ० १	,, मई ९ मं०B	,, ज्येष्ठ शु० १	,, मई २४ बुध
६ काशी	,, ,, शु० ४	,, २७ श०	,, भाद्र कृ० १०,११	,, अग० १४,१५सो० मं.
जौनपुर	,, भाद्र कृ० ११	,, अग० १५ मं०	,, ,, कृ० १४	,, अग० १८ शु०
अयोध्या	,, ,, कृ० १४	,, अग० १८ शु०	,, आश्विन शु० ९	,, सित० २७ बु०
२ लखनऊ	,, आश्विन शु० ९	,, सित० २७ बु०	,, कार्तिक शु० १५	,, नव० १ बुध
१ शाहजहांपुर	,, कार्तिक शु०१५	,, नव० १ बु०	,, मार्गशीर्ष कृ० ५	,, नव० ६ सोम
१ बरेली	,, मार्गशीर्ष कृ०५	,, नव० ६ सोम	,, ,, शु०C	,, नव०C
२ मुरादाबाद	,, ,, शु०	,, नव०	,, ,, ,,	,, ,,
२ बरेली	,, ,, ,,	,, ,,	,, पौष कृ० १	,, दिस० २ श०
राजघाट	,, पौष कृ० १	,, दिस० २ शनि	,, ,, कृ०	,, ,, ,,
१० कर्णवास	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, कृ० ३	,, दिस० ४ सो०
३ छलेसर	,, ,, कृ० ३	,, दिस० ४ सो०	,, ,, कृ०	,, दिस०
२ अलीगढ़	,, ,, कृ०	,, दिस०	,, पौष शु० २	,, दिस० १७ र०
१ दिल्ली	,, ,, शु० २	,, दिस० १७ र०	,, माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०
२ मेरठ	,, माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०	,, फाल्गुन शु० २	,, फर० १४ बृ०
१ सहारनपुर	,, फाल्गुन शु० २	,, फरवरी १५ बृ०	,, चैत्र कृ० १२	,, मार्च ११ र०
२ शाहजहांपुर	,, चैत्र कृ० १४	,, फरवरी १३ मं०	,, ,, कृ० ३०	,, मार्च १५ बृ०
चांदापुर	,, चैत्र कृ० ३०	,, मार्च १५ बृ०	१९३४ चैत्र शु० ८	,, मार्च २२ बृ०
३ शाहजहांपुर	१९३४ चैत्र शु० ८	,, मार्च २२ बृ०	,, शु० ९	,, मार्च २३ शु०

A द्र० पं० लेखरामकृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २९१ ।

B द्र० पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २९१ ।

C १८ नव० मार्ग० शु० २ का बरेली से भेजा हुआ पत्र ऋ० द० पत्र वि० पूर्ण सं० ३४, भाग १, पृष्ठ ६५ पर छपा है ।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२ सहारनपुर	१९३४ चैत्र शु०	१८७७ मार्च	१९३४ वैशाख कृ० २	१८७७ मार्च ३१ श०
१ लुधियाना	,, वैशाख कृ० २	,, मार्च ३१ श०	,, ,, शु० ५A	,, अप्रैल १८ बु०A
१ जालन्धर	,, ,, शु० ५ (रात)	,, अप्रै० १८ बु०	,, ,, शु०६(प्रात:)	,, ,, १९ बृ०
१ लाहौर	,, ,, शु० ६	,, अप्रैल १९ बृ०	,, आषाढ़ शु० २B	,, जुलाई १२B बृ
१ अमृतसर	,, आषा० शु० २B	,, जुलाई १२ बृ०B	,, श्रावण शु० ९	,, अग० १७ शु०
[लाहौरC	,, ,, शु०१२(सायं)	,, ,, २२ र०	,, आ० शु०१३(प्रात:)	,, जु० २३ सो०]
गुरुदासपुर	,, श्रावण शु० ९	,, अग० १७ शु०	,, भाद्र कृ० २	,, अग० १८ र०
[वटांलाD	,, भाद्र कृ० २	,, ,, २८ र०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
२ अमृतसर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, ,, शु० ६	,, सित० १३ बृ०
२ जालन्धर	,, ,, शु० ६E	,, सित० १३ बृE	,, आश्विन शु०८F	,, अक्टू० १५ सो०F
३ अमृतसरF	,, आश्विन शु० ९	,, अक्टू० १५ सो०	,, आश्विन शु० ११	,, अक्टू० १७ बु०

A यद्यपि जीवन चरितों में वैशाख शु० ६ बृहस्पतिवार १९ अप्रैल को लुधियाना से लाहौर पधारना लिखा है, तथापि पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३७ में जालन्धर के वर्णन प्रसंग में लिखा है—लुधियाना से लाहौर जाते हुए एक रात के लिए जालन्धर ठहरे थे और सरदार सुचेतसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया था। तदनुसार स्वामी जी लुधियाना से वैशाख शु० ५ अप्रैल १८ बुधवार को रवाना हुए होंगे।

B पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४२९ में ५ जुलाई १८७७=आषाढ़ कृष्ण ९ को अमृतसर पहुंचना लिखा है, परन्तु ऋ०द० के २१ जुलाई के पत्र (पूर्ण संख्या ४९ भाग १, पृष्ठ ९३) से स्पष्ट है कि वे १२ जुलाई= आषाढ़ शु० २ को अमृतसर पहुंचे थे। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३० पर लिखा है—"१२ जुलाई सन् १८७७ रविवार को महाराज लाहौर गये और सन्ध्या समय अनारकली आर्य-समाज में "धर्म की आवश्यकता" और "आर्य-समाज से लाभ" पर व्याख्यान देकर अमृतसर लौट आये।" यहां '१२ जुलाई रविवार' को लाहौर जाना अशुद्ध है, क्योंकि १२ जुलाई को बृहस्पतिवार था, रविवार १५ जुलाई और २२ जुलाई को था। अत: प्रतीत होता है, २२ जुलाई का यहां १२ जुलाई बन गया है।

C इस विषय में इसी पृष्ठ की B चिह्नित टिप्पणी देखो।

D बटाला ठहरने का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन-चरित पृ० ४३६ पर है।

E ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या ५९ (भाग १, पृष्ठ ११३) के पत्रसारांश में १२ सितम्बर को जालन्धर पहुंचना लिखा है, वह भूल से लिखा गया प्रतीत होता है। क्योंकि इसी पत्रव्यवहार के पूर्ण संख्या ५४ (भाग १, पृष्ठ ११०) के पत्र में १३ सितम्बर को प्रात: ९½ बजे की गाड़ी से जालन्धर जाने का निर्देश है। यही तारीख सभी जीवनचरितों में तथा शास्त्रार्थ जालन्धर में छपी है। शास्त्रार्थ जालन्धर श्री पं० लेखराम जी सं० जीवनचरित में अक्षरश: छपा है।

F ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या ६० (भाग १, पृ० ११४-११५) से स्पष्ट है कि ऋषि

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२ लाहौर	सं०१९३४आश्विन शु०११	सं०१८७७अक्टू०१७बु०	सं०१९३४कार्तिक कृ०४	स०१८७७अक्टू० २६ शु०
फिराजपुर	,, कार्तिक कृ० ४	,, अक्टू० २६ शु०	,, ,, कृ० १४	,, नव० ४ रवि
३ लाहौर	,, ,, कृ० ३०	,, नव० ५ सो०	,, ,, शु० २	,, नव० ७ बुध
रावलपिण्डी	,, ,, शु० ३	,, नव० ८ बृ०	,, पौष कृ० ७A	,, दिस० २६ बु०
झेलम	,, पौष कृ० ८A	,, दिस० २७ बृ०	,, ,, शु० ९	१८७८ जन० १३ र०
गुजरात	,, ,, शु० ९	१८७८ जन० १३ र०	,, माघ कृ० ३०	,, फर० २ श०
वजीराबाद	,, माघ कृ० ३०	,, फर० २ श०	,, ,, शु० ५	,, फर० ७ बृ०
गुजरांवाला	,, ,, शु० ५	,, फर० ७ बृ०	,, फाल्गुन कृ० १४	,, मार्च ३ श०
४ लाहौर	,, फाल्गुन कृ० १४	,, मार्च ३ श०	,, ,, शु० ८	,, मार्च १२ मं०
मुलतान	,, ,, शु० ८	,, मार्च १२ मं०	,, १९३५ चैत्र शु०१४	,, अप्रैल १६ सं०
५ लाहौर	१९३५ चैत्र शु० १५	,, अप्रैल १७ बु०	,, वैशाख शु० १४	,, मई १५ बु०
४ अमृतसर	,, वैशाख शु० १४	,, मई १५ बु०	,, श्रावण कृ०	,, जुलाई
३ जालन्धर	,, श्रावण कृ०	,, जुलाई	,, ,, ,,B	,, ,,B
२ लुधियाना	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
अम्बाला	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
१ रुड़की	,, ,, ,,कृ०११C	,, ,, ,, २५वृ०	,, भाद्र कृ० ८	,, अग० २१ बु०

दयानन्द १५ अक्टूबर सोमवार को प्रातः जालन्धर से अमृतसर के लिए रवाना हुए, वहां से १७ अक्टूबर बुधवार की प्रातः लाहौर के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार १५ का आधा दिन, १६ और १७ की प्रातः तक अमृतसर रहे। ऋ० द० के किसी भी जी० च० में अमृतसर के इस निवास का उल्लेख नहीं है।

A श्री पं० लेखराम जी ने ३० दिसम्बर को झेलम पहुंचना लिखा है। श्री पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४५० पर "३० दिसम्बर को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार होकर ३१ दिसम्बर को झेलम रेलवे स्टेशन पर पहुंचे" ऐसा लिखा है। ये दोनों लेख अशुद्ध हैं। ऋ०द० पत्र और विज्ञापन के पूर्ण सं० ७१ के पत्र में ऋ० दयानन्द ने २७ दिसम्बर को झेलम पहुंचना लिखा है। देखो भाग १, पृष्ठ १२५ तथा टि० ३।

B यहां से आगे की रुड़की पहुंचने तक की वास्तविक तिथियां अज्ञात है। श्री पं० लेखराम जी और श्री पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरितों में ११ जुलाई=आषाढ़ शु० १२ तक अमृतसर में निवास करने का उल्लेख है, परन्तु ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या १०० (भाग १,पृ० १५३) के पत्र से १५ जुलाई तक अमृतसर रहनानिश्चित है। इसी प्रकार पूर्ण संख्या १०३ (भाग १, पृ० १५६) के पत्र से स्पष्ट है कि वे २५ जुलाई को या उससे पूर्व रुड़की पहुंच गये थे।

C पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ४१७ पर २५ जुलाई १८७८ को रुड़की पहुंचना लिखा है।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
३ अलीगढ़	सं० १९३५ भाद्र कृ० ९	सन् १८७८ अग० २२ बृ०	सं० १९३५ भाद्र कृ० १३	सन् १८७८ अग० २८ सो०
३ मेरठ	,, भाद्र कृ० १३	,, अग० २६ सो०	,, आश्विन शु० ८	,, अक्टू० ३ बृ०
२ दिल्ली	,, आश्विन शु० ८A	,, अक्टू० ३ बृ० A	,, कार्तिक शु० १२	,, नव० ६ बु०
३ अजमेर	,, कार्तिक शु० १३	,, नव० ७ बृ०	,, ,, शु० १३	,, नव० ७ बृ०
२ पुष्कर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०
४ अजमेर	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०
१ मसूदा	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०
१ नसीरावाद	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०
५ अजमेरB	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०
३ जयपुर	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०	,, ,, शु० १	,, दिस० २४ मं०C
रिवाड़ी	,, ,, शु० २	,, दिस० २५ बु०C	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०
३ दिल्ली	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०
४ मेरठ	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०	,, ,, शु०	,, जन० फर०D
खतौलीD	,, ,, शु०	,, जन० फर०	,, ,, ,,	,, जन० फर०
३ सहारनपुर	,, ,, शु० १५E	,, जन० फर०E	,, ,, शु० १५	,, फर० ६ बृ०E

A श्री पं० लेखराम जी तथा श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी सं० जी० च० में ९ अक्टूबर को देहली पहुंचना लिखा है, वह अशुद्ध है। क्योंकि ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या १४७ के पत्र में ऋ० द० ने 'हम ३ अक्टूबर को दिल्ली आ गये हैं' (भाग १ पृष्ठ २१४, पं० ६) ऐसा स्पष्ट निर्देश किया है।

B इस बार अजमेर ठहरने का उल्लेख किसी जी० च० में नहीं है। परन्तु सभी जीवनचरितों में १४ दिस० को नसीराबाद से चलना और १५ दिन को जयपुर पहुंचना लिखा है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या १८० में लिखा है—'हम अजमेर से जयपुर आये थे' (द्र० भाग १, पृष्ठ २३५, प० १९) इससे स्पष्ट है कि नसीराबाद से १४ दिन को अजमेर पहुंचे और १५ की प्रात: की गाड़ी से जयपुर को रवाना हुए।

C हम २४ दिसम्बर को रवाना होकर २५ को रिवाड़ी……पहुंचे। द्र० पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या १८०, भाग १, पृष्ठ २३६, पं० ४-५।

D हरिद्वार के कुम्भ में जाते हुए मार्ग में खतौली के 'मजहर हसन उर्फ मजवां' के बाग में कुछ घण्टों के लिये ठहरे थे। यह अनुसन्धान श्री मामराज जी खतौली निवासी ने किया है।

E ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या १८७ (भाग १, पृष्ठ २४४) के अनुसार २ फरवरी को स्वामी जी सहारनपुर में विद्यमान थे। क्योंकि उक्त पत्र सं० १९३५ माघ शु० १०=२ फरवरी को सहारनपुर से लिखा गया है, यह पत्र से स्पष्ट है। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन-चरित पृ० ५१९ में सहारनपुर में 'केवल दो ही दिन ठहरे' लिखा है, यह भी अशुद्ध है। उक्त पत्रानुसार फरवरी २ से ६ तक सहारनपुर अवश्य रहे थे।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२ रुड़की	सं०१९३५ फाल्गुनशु०१५A	सन्१८७९फर०६वृ०A	सं०१९३५फाल्गुन कृ०१४B	सन्१८७९फर०२०वृ०B
ज्वालापुर	,, ,, कृ०१४C	,, फर०२०वृ०	,, फा० शु०६	,, फर० २७ वृ०
४ हरिद्वार	,, ,, शु० ६	,, फर० २७ वृ०	१९३६ वैशाख कृ०८	,, अप्रैल १४ सो०
२ देहरादून	१९३६ वैशाख कृ० ८	,, अप्रैल १४ सो०	,, ,, शु०९	,, अप्रैल ३० बु०
४ सहारनपुर	,, ,, शु० १०	,, मई १ वृ०	,, ,, शु०१२	,, मई ३ श०
५ मेरठ	,, ,, शु० १२	,, मई ३ श०	,, ज्येष्ठ शु० २	,, मई २३ शु०
४ अलीगढ़	,, ज्येष्ठ शु० २	,, मई २३ शु०	,, ,, शु० ७	,, मई २८ वुध
४ छलेसर	,, ,, ,, ७	,, मई २८ बु०	,, आषाढ़ शु०१५	,, जुलाई ३ वृ०
कोलD(अलीगढ़)	... — ...	... ...	... — ...	... ...
३ मुरादावाद	,, आषाढ़ शु० १५	,, जुलाई ३ वृ०	,, श्रावण शु०१३E	,, ,, ३१ वृ०
वदायूं	,, श्रावण शु० १४	,, अग० १ शु०	,, भाद्र कृ० १२	,, अग० १४ वृ०
३ बरेली	,, भाद्र कृ० १२	,, ,, १४ वृ०	,, आश्विन कृ० ४	,, सित० ४ वृ०
४ शाहजहांपुर	,, आश्विन कृ० ४	,, सित० ४ वृ०	,, ,, शु०१	,, सित० १७ बु०
३ लखनऊ	,, ,, शु० २	,, सित० १८ वृ०	,, ,, शु०९	,, सित० २४ बु०
५ कानपुर	,, ,, ,, ९	,, सित० २४ बु०	,, ,, शु०९	,, सित० २४ बु०
८ फर्रुखाबाद	,, आश्विन शु०१०	,, सि० २५ वृ०	,,आ० (द्वि०) कृ०७	,, अक्टू० ७ मं०F

A देखो पूर्व पृष्ठ ५५ की E संकेतित सहारनपुर की टिप्पणी।

B पं० देवेन्द्रनाथ सं०जी०च० पृ० ५१९ में रुड़की में केवल १ दिन ठहरना लिखा है, परन्तु पूर्व पृष्ठ ५५ की टि० E में निर्दिष्ट पूर्ण संख्या १८७ के २ फरवरी को सहारनपुर से लिखे गये पत्र में रुड़की में ८ वा १५ दिन रहने का उल्लेख है। इसी प्रकार उक्त जीवनचरित पृ० ५१९ में फाल्गुन शु० ६ अर्थात् २० फरवरी को ज्वालापुर पहुंचने का निर्देश किया है। २० फरवरी को फा० कृ० १४ थी। C द्र० पूर्व टि० B।

D कोल का उल्लेख कोयल नाम से भी मिलता है। यह अलीगढ़ का ही पुराना नाम है। ऋ० द० 'मुख्तियारनामा' की रजिस्ट्री कराने के लिये रुग्णावस्था में ही छलेसर से एक दो दिन के लिये अलीगढ गये थे। ४ जून १८७९ को मुख्तियारनामा की रजिस्ट्री हुई थी। उसी में '४ जून सन् १८७९ मुकाम कोल तहरीर हुआ' (द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन भाग १ पृष्ठ २७२, पं० १८,१९)।

E पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ५५० में ३० जुलाई को मुरादाबाद से प्रस्थान करने का उल्लेख किया है और ३१ की रात के ३ बजे बदायूं पहुंचना लिखा है। ३१ की रात के १२ बजे के बाद १ अगस्त प्रारम्भ हो जाता है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या २२४ (भाग १ पृष्ठ २८७) के अनुसार ३१ जुलाई को मुरादाबाद से प्रस्थान किया था।

F द्र० पं० लेखराम कृत जी० च० (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५२१ तथा '८ अक्टूबर को कैम्प में सभा की' वही, पृष्ठ ५२९।

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
फतेहगढ़ केम्प (छावनी)	सं०१९३६आश्विन(द्वि०)कृ०७A	सन्१८७९अक्टू०७	सं०१९३६आश्विन(द्वि)कृ०८	सन् १८७९अक्टू०८ बु०
६ कानपुर	„ „(द्वि०)कृ०८	„ अक्टू० ८ बु०	„ „ „ शु० २	„ „ १७ गु०
८ प्रयाग	„ „ „ शु०२B	„ „ १७शु०B	„ „ „ शु० ९	„ „ २३ बृ०
६ मिर्जापुर	„ „ „ शु० ९	„ „ २३ बृ०	„ „ „ शु० १५	„ „ ३० बृ०
दानापुर	„ „ „ शु० १५	„ „ ३० बृ०	„ कार्त्तिक शु० ७C	„ नव० २० बृ०C
७ काशी	„ कार्तिक शु०७C	„ नव०२०बृ०C	१९३७ वैशाख कृ० ११	१८८० मई ५ बु०
४ लखनऊ	१९३७ वैशाख कृ०११	१८८० मई ५ बु०	„ „ शु० १०	„ मई १९ बु०
७ कानपुर	„ „ शु०१०	„ मई १९ बु०	„ „ शु० ११	„ मई २० बृ०
९ फर्रुखाबाद	„ „ शु० ११	„ मई २० बृ०	„ आषाढ़ कृ० ८	„ जून ३० बु०
मैनपुरी	„ आषाढ़ कृ० ९	„ जु० १ बृ०	„ „ कृ० १४	„ जु० ६ मं०
भारौल	„ „ कृ० १४	„ जु० ६ मं०	„ „ कृ० ३०	„ जु० ७ बु०
६ मेरठ	„ „ शु०१	„ „ ८बृ०	„ „ भाद्र शु०१३D	„ सि०१६Dबृ०
मुजफ्फरनगर	„ भाद्र शु० १३D	„ सि०१६Dबृ०	„ आश्विन कृ० १३	„ अक्टू० २ श०
७ मेरठ	„ आश्विन कृ० १३	„ अक्टू० २ श०	„ „ शु० ३	„ अक्टू० ६ बु०

A द्र० पूर्व पृष्ठ की टिप्पणी F।

B पूर्णसंख्या २३९,२४१ (भाग १, पृष्ठ २९८ तथा २९९) ता० ११-१२ अक्टू० १८७९ के पत्रों में १६ अक्टूबर को प्रयाग जाने का उल्लेख ऋ० द० ने किया है। किन्तु पूर्णसंख्या २४४ (भाग १, पृष्ठ ३०१, पं० ११) में २३ अक्टूबर को प्रयाग से मिर्जापुर पहुंचने का निर्देश मिलता है। यहाँ पृष्ठ ३०१, पं० ११ में २३ अक्टूबर के स्थान में १३ अक्टूबर भूल से छप गया है। पुराने संस्करणों में ठीक है।

C पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५९२ पर १९ सितम्बर को दानापुर से प्रस्थान करना लिखा है, वहां २० सितम्बर होना चाहिये। भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ के आरम्भ में ऋ०द० ने "कार्तिक सुदि १४ गुरुवार सं १९३६ (=२७ नवम्बर १८७९) को काशी पहुंचना लिखा है वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि पत्र व्यवहार में पूर्णसंख्या २४७, भाग १ पृष्ठ ३०३ पर २० नवम्बर (कातिक शु० ७) का, पूर्णसंख्या २४८ पृष्ठ ३०४ पर कातिक शु० ८ (=२१ नवम्बर) का तथा पूर्णसंख्या २४९ पृ० ३०४ पर २४ नवम्बर (कातिक शु० ११) के काशी से भेजे गए पत्र छपे हुए हैं। अतः कातिक शु० ७=२० नवम्बर (या उससे एक दिन पूर्व) काशी पहुंचना ही उचित है।

D जीवनचरितों में १५ सितम्बर को मुजफ्फरनगर पहुंचना लिखा है, परन्तु भाद्र सुदी १२ बुधवार तदनुसार १५ सितम्बर के पत्र (पूर्ण संख्या ३४६ पृष्ठ ४१० पं० १५) में ऋ०द० ने हम कल ४ बजे की रेल में बैठकर मुजफ्फरनगर जायेंगे, ऐसा स्पष्ट निर्देश किया है। अतः १६ सितम्बर को ही मेरठ से चलना और मुजफ्फरनगर पहुंचना ठीक है।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
५ सहारनपुर	सं०१८३७आश्विन शु०३	सं०१८८०अक्टू०६बु०	सं०१९३७आश्विन शु०३	सन् १८८०अक्टू०६बु०
३ देहरादून	,, ,, शु० ४	,, ,, ७ बृ०	,, मार्ग० कृ० ४	,, नव० २१ र०
अलीगढ़(कोयल)A	,, मार्ग० कृ० ५	,, नव० २२ सोम	,, ,, कृ० ५,६	,, ,, २२,२३
मेरठ	,, ,, कृ०५,६B	,, ,, २२,२३B	,, ,, कृ० ९	,, ,, २६ शु०
३ आगरा	,, ,, कृ० १०	,, ,, २७ शु०	,, फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १० बृ०
भरतपुर	,, फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १० बृ०	,, चैत कृ० ५	,, मार्च २० र०
जयपुर	,, चत कृ० ५	,, मार्च २० र०	१८३८ वैशाख शु० ६	,, मई ४ बु०
६ अजमेर	१९३८ वैशाख शु०७	,, मई ५ बृ०	,, आषाढ़ कृ० १२	,, जून २३ बृ०
२ नसीरावाद	,, आषाढ़ कृ० १२	,, जून २३ बृ०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ मसूदा	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, भाद्र कृ० ९	,, अगस्त १८बृ०
१ ब्यावर	,, भाद्र कृ० ९	,, अगस्त १८बृ०	,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
१ हरिपुर स्टेशन	,, ,, ,, १०	,, ,, १९ शु०	,, ,, ,, १०	,, ,, १९ शु०
रायपुर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,	,, शु० १५	,, सित० ८ बृ०C
२ हरिपुर स्टेशन	,, ,, शु० १५	,, सित० ८बृ०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
२ ब्यावर	,, ,, शु०१५D	,, ,, ९D	,, आश्विन कृ० १३	,, सित०२१ बुधE
३ मसूदा	,, आश्विन कृ० १३	,, सित० २१ बु०	,, ,, शु० १४	,, अक्टू० ६ बृ०

A जीवनचरितों में अलीगढ़ (कोयल) जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ४३१ के पत्र में 'हमने अलीगढ़ पहुंचकर ...... २२ नवम्बर १८८० को रजिस्टरी चिट्ठी इस विषय की भिजवाई' (द्र०भाग १, पृष्ठ४७९, पं०१६-१९) ऐसा स्पष्ट लिखा है। अतः पत्रानुसार हमने यहां अलीगढ़ का निर्देश किया है। जीवनचरितों में २१-२६ नवम्बर तक मेरठ निवास करना लिखा है, वह अशुद्ध है। अथवा यह भी सम्भव है कि देहरादून से २० नवम्बर को चलकर २१ को पहुंचे हों और २२ को कुछ काल के लिए अलीगढ़ आकर उक्त रजिस्टर्ड पत्र भिजवा दिया हो। उभयथा भी अलीगढ़ का निर्देश होना आवश्यक है।

B देखो इसी पृष्ठ की पूर्व A संकेतित टिप्पणी का उत्तरार्ध।

C पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५८९ पर २० दिन रहना लिखा है।

D जी० च० के अनुसार हरिपुर स्टेशन से १० बजे चलकर १२ बजे के पश्चात् ब्यावर स्टेशन पर पहुंचे। भारतीय ज्योतिष के अनुसार १२ बजे रात्रि के बाद भी पूर्व तिथि ही मानी जाती है, अतः हमने तिथि का निर्देश पञ्चाङ्गों के अनुसार किया है, परन्तु तारीख १२ बजे रात के बाद बदल जाती है, अतः तारीख का निर्देश अंग्रेजी ढग पर ८ सितम्बर के बदले ९ सितम्बर किया है। वार का निर्देश हमने यहां नहीं किया, क्योंकि पंचाङ्ग के अनुसार बृहस्पति ही था, परन्तु अंग्रेजी तारीख के अनुसार शुक्र प्रारम्भ हो गया था।

E पं० लेखराम कृत जी० च० (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५८९ में यहाँ १५ दिन रहना लिखा है।

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
हुरडा	सं० १९३८ आश्विन शु० १४	सन् १८८१ अक्टू० ६ वृ०	सं० १९३८ आ० शु० १५	सन् १८८१ अक्टू० ७ शु०
रूपाहेली	,, ,, शु० १५	,, ,, ७ शु०	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, ८ श०
रायला (राटेरा)	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, ८ श०	,, ,, कृ० ३	,, ,, १० सो०
वनेड़ा	,, ,, कृ० ३	,, ,, १० सो०	,, ,, शु० ४	,, ,, २६ बु०
भीलवाड़ा	,, ,, शु० ४	,, ,, २६ बु०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
सोनियाना	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, शु० ५	,, ,, २७ वृ०
१ चित्तौड़	,, ,, शु० ५	,, ,, २७ वृ०	,, पौष कृ० ३०	,, दिस० २१ बु०
२ इन्दौर	,, पौष कृ० ३०	,, दिस० २१ बु०	,, ,, शु० ६	,, ,, २७ मं०
[A	,, ,, शु०	,, दिस०	,, ,, शु०	,, दिस०]
५ वम्वई	,, ,, शु० १०	,, ,, ३० शु०	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०
खण्डवा	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०	,, श्रावण कृ० ४	,, जुलाई ४ मं०
३ इन्दौर	,, श्रावण कृ० ४	,, जुलाई ४ मं०	,, ,, कृ० ५B	,, ,, ६ वृ०B
रतलाम	,, ,, कृ० ६	,, ,, ६ वृ०	,, ,, कृ० ८	,, ,, ८ श०
जावरा	,, ,, कृ० ८	,, ,, ८ श०	,, ,, शु० १०	,, ,, २५C मं०
२ चित्तौड़	,, ,, शु० १०	,, ,, २५ मं०	,, ,, (द्वि०) कृ० ११	,, अग० ९ बु०
१ निम्बाहेड़ा	,, ,, (द्वि०) कृ० ११	,, अग० ९ बु०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,
उदयपुर	,, ,, ,, कृ. १२, १३D	,, ,, १०, ११D वृ. शु.	,, फाल्गुन कृ० ६	१८८३ फर० २८ बु०

A इन्दौर से २७ सितम्बर को रवाना होकर ३० सितम्बर को बम्बई पहुंचने का उल्लेख जीवनचरितों में मिलता है। इन्दौर से बम्बई का मार्ग उस समय लगभग ३० घण्टे का रहा होगा। अत: मार्ग में एक या डेढ़ दिन ऋषि दयानन्द कहां ठहरे, यह अज्ञात है। हमारा विचार है कि ऋ० द० खण्डवा में ठहरे थे। उसी समय खण्डेराव पाण्डुरंग से परिचय हुआ होगा। इसीलिये बम्बई से लौटते समय खण्डवा में ठहरने के लिये उचित निवास स्थान का प्रबन्ध करने के लिये ऋ० द० ने बम्बई से २-३ पत्र भेजे थे। इन पत्रों का उल्लेख खण्डेराव पाण्डुरंग के २७ मई, १७ जून १८८२ के पूर्णसंख्या २५०, २५६, भाग ३, पृष्ठ २१७, २४५ के पत्रों में मिलता है।

B ऋषि दयानन्द रात की दो बजे की गाड़ी से रतलाम के लिए रवाना हुए थे पञ्चाङ्ग के अनुसार ता० ६ के सूर्योदय से पूर्व तक पञ्चमी का निर्देश, और तारीख के निर्देश में अंग्रेजी पद्धति के अनुसार ६ का निर्देश किया है। पृष्ठ ५८ की a संकेतित टिप्पणी की प्रथम पंक्ति भी देखें।

C जावरा से चित्तौड़गढ़ समीप ही है। अत: हमारे विचार में जावरा से ऋ० द० श्रावण शु० १० जु० २५ मंगल को रवाना होकर उसी दिन किसी समय चित्तौड़ पहुंच गये होंगे। हमारे विचार की पुष्टि पूर्ण संख्या ५६३ के पत्र, पृष्ठ ६०० की पंक्ति २२ और पूर्ण संख्या ५६४ के पत्र, पृष्ठ ६०१, पं० ९ से भी होती है।

D जीवनचरितों में श्रावण द्वितीय कृष्णा १३ अगस्त ११ शुक्र को उदयपुर पहुंचना लिखा है, परन्तु ऋ०

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
२ निम्बाहेड़ा	सं०१९३९ फाल्गुन कृ०७	सन्१८८३ मार्च १ बृ०	सं०१९३९ फाल्गुन कृ०७	सन्१८८३ मार्च १ बृ०
३ चित्तौड़	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, कृ० १३	,, ,, ७ बु०
२ रूपाहेली	,, ,, कृ० १४	,, ,, ८ बृ०	,, ,, कृ० १४	,, ,, ८ बृ०
शाहपुरा	,, ,, कृ० १४A	,, ,, ८Aबृ०	१९४० ज्येष्ठ कृ० ४	,, मई २६ श०
७अजमेर	१९४० जेष्ठ कृ०५B	,, मई२७Bर०	,, ,, ज्येष्ठ कृ०६,७	,, मई २८ सो०
१ पाली	,, ,, कृ० ८	,, ,, २९ मं०	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०
१ रोपट	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०
जोधपुर	,, ,, कृ० १०	,, ,, ३१ बृ०	,, आश्विन शु० १५	,, अक्टू० १६ मं०
२ रोपट	,, कार्तिक कृ० १	,, अक्टू० १७ बु०	,, ,, कार्ति० कृ०२,३	,, अक्टू० १८ बृ०
२ पाली	,, ,, कृ० २,३	,, ,, १८ बृ०	,, ,, कृ० ५	,, अक्टूबर २० श०
३ आबू	,, ,, कृ० ६	,, ,, २१ र०	,, ,, कृ० ११	,, ,, २६ शु०
८ अजमेर	,, ,, कृ० १२	,, ,, २७ श०	,, ,, कृ० ३०	,, ,, ३० मं०

—:o:—

बङ्गाल में ऋषि दयानन्द के चार मास

[महर्षि दयानन्द बङ्गाल में ५ महीने तक रहे थे। इस अवसर पर आदिब्रह्मसमाज के प्रचारक श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती प्रायः निरन्तर उनके पास रहे। वे अपनी डायरी में महर्षि के विषय में कुछ लिखते रहे। आदिब्रह्मसमाज में पुराने कागजों में पड़ी उनके हाथ की लिखी हुई डायरी पर सहसा आचार्य क्षितीन्द्र मोहन ठाकुर की

द० के पूर्णसंख्या ५६७ (भाग २, पृष्ठ ६०२) के पत्र से प्रतीत होता है कि वे सम्भवतः श्रा० द्वि० कृ० १२ अगस्त १० को ही उदयपुर पहुंच गये थे।

A जीवनचरितों में फाल्गुन कृष्णा ३०=९ मार्च को शाहपुरा पहुंचना लिखा है, परन्तु ऋ० द० के पूर्ण संख्या ६३० (पृष्ठ ६६२ पं० १७-१८) तथा पूर्ण संख्या ६३३ (पृष्ठ ६६४, पं० १६-१७) के पत्रों के अनुसार फा० कृ० १४=८ मार्च को शाहपुरा पहुंचे होंगे।

B पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरित (पृष्ठ ६९३; ६९४) तथा पं० लेखराम कृत जी० च० (पृष्ठ ६१२) के अनुसार २८ मार्च को अजमेर पहुंचने और २९ को १२ बजे की गाड़ी से रवाना होने का उल्लेख है, परन्तु वह अशुद्ध है। ऋ० द० ने ज्ये० ब० ६ सोम के सं० १९४० (२८ मई १८८३) के पत्र में "कल (=मार्च) संध्या के समय में अजमेर पहुंच गये" ऐसा स्पष्ट लिखा है (द्र० भाग २, पृष्ठ ७१०, पं० ९) और उसी दिन आधी रात की गाड़ी से पाली जाने का निर्देश किया है।

दृष्टि पड़ गई। वह डायरी उन्होंने पं० दीनबन्धु जी को दिखाई। उन्होंने इस डायरी की प्रतिलिपि कर ली और उसका अनुवाद श्री स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने किया है। इसमें ऋषि दयानन्द का चार मास का मितिवार वृत्त विद्यमान है—सम्पादक।]

१६ दिसम्बर सन् १८७२

काशी में शास्त्रार्थ जीतने वाले दयानन्द सरस्वती भागलपुर से कलकत्ता पहुंचे। बैरिस्टर चन्द्रशेखर सेन, पं० सत्यव्रत सामश्रमी, बैरिस्टर उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय आदि कईयों ने "पथरिया-घाट" के राजभवन में सन्यासी के भोजन और निवास का प्रबन्ध किया।

टिप्पणी– बै० चन्द्रशेखर सेन ब्रह्मसमाज के नेता थे। आप काशी शास्त्रार्थ के समय वहां उपस्थित थे। पं० सत्यव्रत सामश्रमी "बंङ्गाल एशियाटिक सोसायटी" के वेदज्ञ पण्डित थे। आप काशी शास्त्रार्थ के उभयवादी सम्मत लेखक थे।

१७ से २० दिसम्बर १८७२

दयानन्द संन्यासी के देखने के लिए 'नाईनान' में जनता का आश्चर्यजनक समूह एकत्र हुआ। उनके साथ वातचीत करने का अवसर नहीं मिला।

२१ दिसम्बर १८७२

संन्यासी के साथ विचार विमर्श का अवसर मिला। मैं सन्तुष्ट हो गया। केशवचन्द्र सेन को भी देखा।

२२ दिसम्बर १८७२

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, समुद्रनाथ ठाकुर और त्रिदेव भट्टाचार्य के साथ मैं संन्यासी से मिला। यज्ञोपवीत, वर्णभेद, यज्ञ, आत्मा और छः दर्शनों के विषय में अगणित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये। आत्मा सन्तुष्ट हुआ।

टि०—द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े पुत्र और समुन्द्र (?) उनके तीसरे पुत्र थे।

२३ से २८ दिसम्बर १८७२

ब्रह्मसमाज के काय में व्यस्त रहने के कारण संन्यासी के दर्शन नहीं कर पाया।

२९ दिसम्बर १८७२

संन्यासी से नये रूप में उपनिषद् की व्याख्या सुनी। केशवचन्द्र सेन के साथ उनका प्रेम हो गया है। आपने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बात पूछी।

३० से ३१ दिसम्बर १८७२

नाईनान मैं नहीं जा सका। मैंने सुना कि अक्षयकुमार दत्त और राजनारायण वासु ने इन दो दिनों में वेद और होम की आलोचना की थी।

टि०—अक्षयकुमार दत्त ब्रह्मसमाज की पत्रिका "तत्त्ववोधिनी" के सम्पादक थे। राज-नारायण वासु योगी अरविन्द के नाना और ब्रह्मसमाज के नेता थे।

१ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन ने दयानन्द सरस्वती को साथ लेकर कलकत्ते के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया।

टि०—केशवचन्द्र सेन नई ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक थे।

२ जनवरी १८७३

संन्यासी के पास मैंने उपनिषद् पढ़ना आरम्भ किया। कृष्णदास पाल ने 'नाईनान' में संन्यासी का दर्शन किया और वार्तालाप किया। वेदविद्यालय की स्थापना के विचार पर कृष्णदास पाल ने प्रसन्नता प्रकट की।

टि०—कृष्णदास पाल कलकत्ता नगरपालिका के सदस्य और वायसराय के मण्डल (कैबिनेट) के सदस्य थे।

३ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के साथ संन्यासी का ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'वदोड़ा बागान' में स्थित घर पर आगमन। विधवाविवाह, नियोग, वालविवाह, जातपात, वृद्धविवाह के विषय में दोनों में विचार विनिमय। विद्यासागर रुग्ण थे। संन्यासी के वेदविद्यालय स्थापित करने के विचार पर प्रसन्नता प्रकाश।

४ जनवरी १८७३

राजा राजेन्द्रनाथ मलिक के मकान पर केशव सेन के द्वारा वेदविद्यालय की स्थापना के लिये बैठक बुलायी गयी। महाराज जितेन्द्रनाथ ठाकुर, उत्तरपाड़ा के जमींदार जयकृष्ण मुखोपाध्याय, कृष्णदास पाल, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखोपाध्याय आदि बैठक में उपस्थित थे। निर्णय हुआ कि यदि संस्कृत कालेज में वेद पढ़ाना सम्भव न हो तो पृथक् विद्यालय स्थापित किया जाय।

टि०—सर जितेन्द्रनाथ ठाकुर सी० एस० आई वायसराय की कौंसिल के सदस्य थे। जयकृष्ण मुखोप्राध्याय उत्त रपाड़ा (हुगली) के जमींदार थे। भूदेव मुखोपाध्याय 'एजूकेशन गजट' के प्रबन्धक और गवर्नर की कौंसिल के सदस्य थे।

५ जनवरी १८७३

संन्यासी ने मुझे यम नियम का उपदेश किया और लघु प्राणयाम की विधि सिखायी। केशवचन्द्र और राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने संन्यासी के दर्शन किये। आर्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में राजेन्द्रलाल की वातचीत हुई।

८ जनवरी १८७३

संन्यासी से योग विद्या का उपदेश लिया। राजनारायण वसु, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और रामतनु लाहरी नाईलान में उनसे मिले। वार्तालाप भी हुआ। ईश्वरचन्द्र जी के साथ समाज संस्कार के विषय में विचार विमर्श हुआ। संन्यासी ने ईश्वरचन्द्र पर बङ्गाल में वेद प्रचार करने के लिये बल दिया। "इस जन्म में और नहीं होगा, अगले जन्म में देखा जायेगा"—ईश्वरचन्द्र ने यह उत्तर दिया। रामतनु लाहरी ने प्राचीन शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की तुलना की।

टि०— रामतनु लाहरी समाज सुधारक ईश्वरचन्द्र के मित्र थे।

९ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के मकान 'लिली काटेज' में संन्यासी दयानन्द का संस्कृत में भाषण सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने सुना और वे अत्यन्त प्रभावित हुवे। राजनारायण वासु ने संन्यासी को 'हिन्दु धर्म की श्रेष्ठता' नाम की एक पुस्तक भेंट की और उस पुस्तक के कुछ सन्दर्भ उनको हिन्दी में सुनाये गये। लिली काटेज में आने से पहले आपने 'एशियाटिक म्यूजियम' (एशियायी संग्रहालय) देखा और वेद, उपनिषद् के कई खण्ड उन्होंने खरीदे[1]।

१० जनवरी १८७३

संन्यासी के निर्देशानुसार मैंने मौनव्रत धारण किया। रमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० और उमेशचन्द्र मित्र वकील ने उनके साथ मिल कर वेदभाष्य और भारत के प्राचीन इतिहास के विषय में वातचीत की। रमेशचन्द्र दत्त संन्यासी के वेद विषयक ज्ञान को देख कर आश्चर्यचकित रह गये।

टि०—रमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० विभिन्न जिलों के मैजिस्ट्रेट, तत्पश्चात् उड़ीसा के कमिश्नर और बड़ोदा राज्य के वित्तमन्त्री रहे थे। रामायण का अंग्रेजो और ऋग्वेद का बङ्गला में अनुवाद किया था। उमेशचन्द्र मित्र हाईकोर्ट के रीडर थे।

११ से १८ जनवरी १८७३

संन्यासी के आदेशानुसार पुनः आठ दिन के लिये मौन व्रत धारण किया गया। प्रतिदिन ब्रह्म-मुहूर्त में आप योग विद्या की शिक्षा देते थे। मैंने देखा कि कई दिन में सूर्यकान्त आचार्य चौधरी, रजनीकान्त गुप्त, यतीन्द्रमोहन ठाकुर, डा० महेन्द्रपाल सरकार, प्रतापचन्द्र मजूमदार, द्वारकानाथ गङ्गोली, गङ्गाधर कविराज आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आपके दर्शन किये।

टि०—महाराज सूर्यकान्त चौधरी जिला मैमन सिंह के जमींदार थे। रजनीकान्त गुप्त साहित्यिक व्यक्ति थे। "पाणिनि विचार" और "आर्य कीर्त्ति" इत्यादि पुस्तकों के प्रणेता थे। डा०

---

१. पता नहीं ये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीमती परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, अथवा नष्ट हो गये। ऋषि दयानन्द के निधन-काल में कौन-कौन से ग्रन्थ उनके पास विद्यमान थे, इसकी सूची के लिये 'ऋ० द० और आ० स० से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' नामक संग्रह में पृष्ठ ९४-१०४ तक देखें।

महेन्द्रलाल सरकार "साइँटिफिक सोसाइटी" (वैज्ञानिक समाज) के प्रवर्त्तक, विश्वविद्यालय के फैलो प्रान्तीय राज्यसभा के सदस्य थे। प्रतापचन्द्र मजूमदार शिकागो की "रिलीजस सोसाइटी" (धार्मिक समाज) में आप ब्रह्म-समाज के प्रतिनिधि रह चुके थे। द्वारकानाथ गङ्गोली ब्रह्मसमाज के नेता, स्त्रीशिक्षा के समर्थक, "हिन्दु महवा सभा" और "भारत सभा" के प्रतिष्ठित सदस्य थे। गङ्गाधर कविराज मुग्धबोध व्याकरण और चरक संहिता के अनुवादक थे।

१९ से २१ जनवरी १८७३

ब्रह्मसमाज के उत्सव में सम्मिलित रहा। २१ जनवरी को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के बुलावे पर मैं दयानन्द संन्यासी को साथ लेकर द्विजेन्द्रनाथ के जोलासां के राजभवन में गया। ब्रह्मसमाज के सब नेता वहां उपस्थित थे। ब्रह्मसमाज और वेद के विषय में सब के साथ संन्यासी का विचार विनिमय हुआ। देवेन्द्रनाथ के पुत्रों के मुख से वेद मन्त्र सुन कर आप प्रसन्न हुवे। आप से राजभवन में ठहरने के लिये आग्रह किया गया, परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया।

टि०—महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर—प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर बड़े पुत्र-आदि ब्रह्म समाज के नेता।

२२ से ३० जनवरी १८७३

संन्यासी ने मुझे एकान्त में योगाभ्यास के लिये कहा। इसलिये मैंने "वहाला" की एक निर्जन झोपड़ी में नौ दिन तक डेरा लगाया। उन दिनों गुरुदेव के सत्संग से में वञ्चित रहा। मैंने सुना—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजनारायण वासु, अक्षयकुमार दत्त, केशवचन्द्र आदि इनके साथ विचारविमर्श और बातचीत के लिए गये थे।

३१ जनवरी १८७३

गुरुदेव संन्यासी दयानन्द ने मुर्शिदाबाद को प्रस्थान किया। साथ उनके एक परिचित भक्त गया।

१ से २१ फरवरी १८७३

संन्यासी दयानन्द ने बालचा में किसी परिचित व्यक्ति के बाग में एकान्त में वास किया। कलकत्ता की जनता से पृथक् रह कर कुछ दिन विश्राम करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।

२२ फरवरी १८७३

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कलकत्ते में पुनरागमन तथा विश्राम।

२३ फरवरी १८७३

गोराचान्द दत्त के घर पर "संन्यासी का "ईश्वर और धर्म के विषय पर व्याख्यान हुआ। केशवसेन सभापति थे। बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। संस्कृत कालेज के बहुत से विद्यार्थियों को साथ लेकर महेशचन्द्र न्यायरत्न सभा में सम्मिलित हुवे। संन्यासी के संस्कृत व्याख्यान का हिन्दी

अनुवाद सुनाया। विद्यार्थियों ने आपत्ति की कि अनुवाद में गड़बडी की जा रही है। न्यायरत्न अप्रसन्न होकर बाहर चले गये।

२४ से २८ फरवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के कल्लू टोला वाले मकान में, ब्रह्मसमाज में, महालय में, खिदरपुर में और शीपुर में केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों से संन्यासी का व्याख्यान और धर्मचर्चा।

१ से ११ मार्च १८७३

योगसाधना के लिये बहाला में एकान्तवास। स्वामी जी के साथ कलकत्ते के अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों का विचारविनिमय-विमर्श।

१३ मार्च १८७३

लक्ष्मीनारायण गोस्वामी के साथ स्वामीजी की नवद्वीप में उपस्थिति।

१४ मार्च १८७३

१५ को नवद्वीप वाजार में और १६ को गङ्गातीर में सभा हुई। झूठा प्रचार हुआ कि मैक्स-मूलर साहब संन्यासी के वेश में नवद्वीप के लोगों को ईसाई बनाने के लिये आये हैं। सैकड़ों हजारों की संख्या में स्त्री पुरुष उनको देखने के लिए टूट पड़े। लक्ष्मीनारायण लोगों के सामने लज्जित हो गया। शास्त्रार्थ के लिये आगे नहीं आया। नवद्वीप में जाकर स्वामी जी से मिला।

१६ से २१ मार्च १८७३

स्वामी जी को साथ लेकर वराह नगर में वापसी।

२२ से ३१ मार्च १८७३

स्वामी जी एकान्त में ग्रन्थ रचना[1] में संलग्न रहे। अवकाश के समय उनका उपदेश हुआ।

१ अप्रेल १८७३

दयानन्द का वराह नगर छोड़ना और भूदेव मुखोपाध्याय के साथ हुगली में स्थित वृन्दावन चिदामण्डल के वाग में भोजन और निवास का प्रवन्ध। रिवरण्ड (पादरी) लाल विहारी के साथ स्वामी जी के प्रश्नोत्तर। पादरी की पराजय।

२ से ५ अप्रेल १८७३

हुगली में उनको देखने के लिये सभा, उपदेश और प्रश्नोत्तर।

---

१. ऋषि दयानन्द इन दिनों किस ग्रन्थ की रचना में संलग्न रहे, यह ज्ञात नहीं हो सका। इन दिनों किसी ग्रन्थ के लिखने का वर्णन जीवनचरितों में उपलब्ध नहीं होता।

६ अप्रेल १८७३

वृन्दा बाबू के मकान पर स्वामी जी का संस्कृत में भाषण । अक्षयचन्द्र सरकार, भूदेव मुखोपाध्याय और भटपली के पण्डित संस्कृत व्याख्यान सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुवे ।

७-८ अप्रेल १८७३

८ अप्रेल को भटपली के पण्डित ताराचरण तर्करत्न के साथ मूर्त्तिपूजा के विषय पर शास्त्रार्थ ताराचरण की पराजय ।

९ अप्रेल १८७३

मुखोपाध्याय के साथ हुगली के विभिन्न स्थानों पर स्वामीजी का धर्मोपदेश ।

१३ अप्रेल १८७३

स्वामी जी की वरद्वान में उपस्थिति । राजा वनवारी कपूर ने राजभवन में भोजन और निवास का प्रवन्ध किया ।

१४-१५ अप्रेल १८७३

वरद्वान राजभवन में स्वामी जी का उपदेश । भारी समारोह । राज वहादुर की धर्मोपदेश में सविधि उपस्थिति, परन्तु उपेक्षा ।

१६ अप्रेल १८७३

स्वामी जी का वरद्वान से भागलपुर को प्रस्थान ।

पर बंठे हुए, उनकी विद्या सरस्वती के प्रवाह के प्रत्येक [शब्द] बूंद को अंकित करने वाली लेखक मंडली पास में बैठी हुई, चारों तरफ [और आसपास] स्वामीजी के प्रमुख समर्थक। इस प्रकार कोई बड़े विद्वान्, कोई छोटे विद्वान्, वक्तृत्व का श्रवण (सेवन) कर गर्दन हिलाने वाले व हंसकर [व्यंग्य] विनोद को रंगीला बनाने के लिये सदा तत्पर रहने वाले और संपूर्ण दीवानखाने [सभागृह] में कोई केवल तमाशा (मौज) देखने के लिए, कोई मूर्तिपूजा से ऊबकर उसमें साधार-सप्रमाण मुक्त होने के लिए, कोई वक्तृत्व (ज्ञान) से लाभ प्राप्त करने के लिये, कोई ब्राह्मणों और भटों की उपहासपूर्ण आलोचना सुनने के लिये इस प्रकार अलग-अलग उद्देश्य से एकत्रित मंडली का ठाट था। ऐसे अपूर्व श्रोतृ समुदाय को देखकर किस वक्ता को भला कृतार्थता की अनुभूति नहीं होगी, फिर पहले ही पंडितंमन्य, अहंकार ने जहां अपना घर बनाया है, ऐसे हमारे परमहंस तो अकांड तांडव करने लगे तो इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है। प्रार्थना-समाज के धुरंधर नेताओं ने चापलूसी कर अपनी जो इतनी घमंडी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है और प्रार्थना-समाज का ठाट-बाट कर आपका भी अतिशय मान-सम्मान और कौतुक कर रहे हैं, इसका कारण क्या है, इसका यदि स्वामी महाराज अपनी विशाल बुद्धि थोड़ी भी खर्च कर, विचार करते तो उनको विश्वास हो गया होता कि जिनका जन्म संपूर्णतया अज्ञान व दुराग्रह के कारण वेदादि शास्त्रों का उपहास करने में गया, जिन्हें स्वदेश में अच्छा कहने लायक आज तक कुछ भी नजर नहीं आया, वैदिक मार्ग का अभ्युदय करने की जिनकी इच्छा तो इतनी प्रबल है कि वह सब एक तरफ [बिस्तर की तरह] लपेटकर किंबहुना उसका समूलोच्छेद कर झूट-मूट आंखे मूंदने [संध्या प्राणायाम] और गायन-वादन करने का धर्म चतुर्दिक प्रसारित करने का जिनका सतत प्रयत्न चलता रहता है, वे आपके चरणों में जो इतने अधिक तन्मय हुए हैं, वे अपना अज्ञान नष्ट कर अपनी मूर्खता स्वीकार करने के लिये हुए होंगे, ऐसी बात नहीं। मनुष्य स्वभाव की जिसे यत्किंचित् भी पहचान है, उसे भी उपर्युक्त विरोध तभी प्रतीत हो गया होता और 'इसमें कुछ तो गड़बड़ घोटाला है'—ऐसा संशय आ गया होता, परन्तु स्वामीजी को वैसा संशय बिल्कुल भी नहीं आया, अपने प्रतिदिन के ऐशोआराम में मस्त हो जाने के कारण उनके युक्ति, प्रमाण, अनुमान सब 'नौ-दो-ग्यारह हो गए। वस्तुतः धर्मसुधार की भावना जिसके मन में हो और नवीन पंथ स्थापित करना हो तो वह [कभी भी] अपने प्रतिपक्षियों की झूठे, कपटी, ढोंगी, मान-सम्मान के भुलावे में कभी नहीं आयेगा, जिस प्रकार महाभारत के युद्ध में शिखंडी ने जो पांडवों का कार्य किया, या किसी एकाध किले के दरवाजे को तोड़ने के लिये ऊंट को आगे करके जो अपना काम साध लेते हैं, वैसा उपयोग आपकी स्तुति-अर्चना (अंजारणी-गोंजारणी) कर यदि कोई कर लेना चाहे तो किसी भी सामान्य से सामान्य मनुष्य को भी अतिशय क्रोध आयेगा, परन्तु प्रार्थना-समाज के अध्वर्युओं [रानाडे-कुंटे] ने अपने पंथ की संपुष्टि हेतु, बलि देने के लिये आर्यसमाज की स्वामीजी द्वारा स्थापना (उत्पत्ति) कर अपना उपर्युक्त उद्देश्य दुष्ट हेतु से पोषण करने का निश्चय कर लेने पर, बेचारे उस आर्यसमाज के [संस्थापक] जनक को, वह दुष्ट उद्देश्य, थोडा सा भी अंतरध्यान में नहीं आया—यह आश्चर्य की बात है। स्वामी जी के वक्तृत्व के परीक्षण के लिए इतनी प्रस्तावना बहुत है। यह इतनी लंबी लिखी प्रस्तावना भी संभवतः किसी को अच्छी न लगे, परन्तु इस [पुणे] शहर में महीने दो महीने से अजेय लोकप्रिय वीर की तरह जो चारों ओर सतत सुशोभित होते थे। जिनके व्याख्यानों (इतना व्याख्यान शब्द भी स्वामीजी के स्वार्थी समर्थकों ने ही उनके भाषणों को

दिया था, वास्तव में यह व्याख्यान शब्द भी उनके प्रसंग के शोभनीय नहीं है) (एखीं त्वास पुरतेपणीं शोभष्याची मारामारच)। को बड़े-बड़े विद्वान् भी अपने सींगो को मोड़कर बछडों [बालकों] में प्रविष्ट हो, छोटे-छोटे बच्चों के साथ अतिशय भक्ति [भावना] से सुनते थे। जिन्होंने हजारों वर्षों से प्रचलित प्रवाह को सहस्त्रबाहु अर्जुन [कार्तवीर्य] की तरह सहसा रोककर इस आर्यभूमि के हितैषियों में प्रथम स्तर (पहली पायरी) प्राप्त करने की अभिलाषा रखी है और उपर्युक्त महान् उपकार के फलस्वरूप जिनके समर्पित सच्छिष्यों ने उन्हें गजेन्द्रमस्तकारूढ कर गगन भेदी जय घोषों व विशाल समारोह के साथ किसी समर विजयी [क्षत्रिय] वीर की तरह उनसे ['फौजी छावनी' कैम्प क्षेत्र की ओर से] नगर प्रवेश करवाया'। ऐसे श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्यत्वाद्यनेक गुण विराजमान दयानन्दजी की स्तुति(गुणानुवाद)एकाध पृष्ठ में भला कैसे पूर्ण होगी। इसके अतिरिक्त पूर्व निर्देशानुसार उनके उपासकों ने तो स्वामी महाराज की वह यशोदुंदुभि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक

---

१. श्रीमत्परमहंस ने अपने छुटपुट (चुटपुट) शास्त्र ज्ञान से पुणे को ही क्या अपितु समस्त भारतवर्षीय पंडितों को भी परास्त कर दिया था और उनसे शास्त्रार्थ करने की हिम्मत किसी की भी नहीं होती थी। हमारे दृष्टिकोण के अनुसार इतना प्रताप किसी भी संतुलित समझदार व बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए काफी हो गया होता। स्वामी जी द्वारा षड्रिपुओं पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी उनमें से पांचवां रिपु अचानक उच्छृंखल हो उठा, जिस कारण शिष्य मंडली के अन्तःकरण में स्वामी जी के प्रति जो प्रेम-भक्ति उमड़ आने में सहायता मिली। स्वामी जी की एकाध नए दुल्हे के समान बड़े ही ठाट-बाट से बरात निकलेगी। यह समाचार बहुत से लोगों को तो पहले सत्य प्रतीत नहीं हुआ। क्षुद्र प्रचार यन्त्रों द्वारा ब्राह्मणों ने (गटार यंत्रावरील भटांनी) निरर्थक ही द्वेष भावना से यह मन घडंत बात फैलायी होगी। ऐसा प्रतीत हुआ। परन्तु थोडी देर में [जो कुछ] देखा तो उससे सबकी भ्रांति दूर हो गयी। महापौर [नगराध्यक्ष] और बुद्धिहीन श्रमिकों ने (कामाठयांनी) मशाल और दीपक संभाल लिए हैं। परमहंस [स्वामी दयानन्द] गजेन्द्रारूढ हो गए हैं। आगे बाजों के दल (ताफे) जल रहे हैं और असत्यवादी व दुष्ट ब्राह्मणों के चिरकालीन दासता से मुक्त हुए (ऐसे) उनके शिष्य बड़ी कृतार्थता मानकर अपने सद्गुरु का पार्श्वभाग सुशोभित कर रहे हैं। इस ठाट-बाट से पालकी में सुशोभित [वेद] शास्त्रों के सहयोग से (सवाईनें) जुलूस (स्वारी) [प्रतिगामी] ब्राह्मणों की नाक काटती हुई (नाक ठेचीतच) शहर में प्रविष्ट हुई। अन्त में बुधवार ['बुधवार पेठ' नामक बाजार] में प्रविष्ट होकर जिस स्थान [भिडेवाडा-भिडेचेंबर्स] से दया व आनन्द का शुभ समाचार चारों ओर फैला, उस पवित्र जगह पर सब बरातियों का प्रवेश हुआ। श्रीमान् [दयानन्द] सिंहासन पर आसीन हुए। फिर सद्धर्म के कल्याण के लिए इतना (येवढा) प्रयत्न कर थकी-मांदी (भाग लेली) शिष्य मंडली बड़ी कृतार्थ होती हुई, जहां जगह मिली वहां बैठ गई। बाद में एक दो सच्छिष्यों ने सुन्दर सरस भाषण देकर एक पंडित की ओर से जगद्गुरु [दयानन्द] का स्तुतिपाठ करवाया। इस प्रकार महीने-डेढ महीने से चल रहे प्रयासों का सभी तरह अच्छे ढंग से समापन होकर एक [आर्य]समाज स्थापना के सिवाय अन्य कोई कार्य शेष न रहा हो, ऐसा नजर आया। परन्तु परमेश्वर की लीला अगाध है। उनकी मूर्खता को [अदृश्य एवं] नष्ट सा कर वास्तविक स्वरूप की प्रतीति जनमानस में अंकित करने के लिए दयानन्द जी व उनके शिष्यों ने इतना ठाट (विभु) रचने पर भी वह अकस्मात् ढह गया और 'हे धरती मां ! तू मुझे अपने अन्तर में ले-ले' (दे माय धरणी ठाय) अकस्मात् ऐसा क्षण (प्रसंग) सब पर आ गुजरा। पालकी की (छबिन्याची) प्रतिपक्षी मंडली जो बाहर खड़ी थी उसकी, और उससे भी अधिक जिनको स्वामी जी के प्रति अन्तरात्मा से विशेष तड़प व सहानुभूति थी, ऐसी विशेष मंडली जो ऊपर मंजिल (माडी) पर बैठी थी, उसकी जो एकाध घंटे तक जो परस्पर युद्ध और परेशानी हुई वह

बार बजाकर दूर-सुदूरवर्ती प्रदेशों तक पहुंचा कर [स्वामी महाराज का यश] दीर्घ काल पर्यन्त सुरक्षित रखने की व्यवस्था की है। तब उसे तदनुकूल ही कहना चाहिये। मूर्ति पूजा और तद् विषयक [अर्थात्] मूर्ति पूजा का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों पर व मूर्तिपूजक लोगों पर स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में जो अपने पांडित्य का भयंकर प्रलय मचाया है, उसमें कितना तथ्य है। प्रस्तुत [मूर्ति-पूजा.] के मार्ग का वेद में आधार है वा नहीं। स्वामीजी के व्याख्यानों यज्ञ के विषय में, यज्ञ से हवा शुद्ध होने के विषय में, विमानों के विषय में व तार-यंत्रादि के विषयों में जो वर्णन [हुआ] है; वह प्रमाण, युक्ति, अनुमान से कितना सत्य प्रमाणित होगा या यह सब 'गोलंकार' ही है। वैसे ही विभिन्न शास्त्रों का जो आधार दिखलाया गया है, वह पूर्णतः वास्तविकता के धरातल पर आधारित होकर पंडित [स्वामी दयानन्दजी] की अखिल भारतीय शास्त्र पारंगतता सत्य है या उनके भावुक शिष्य वर्ग की वह केवल प्रेम-भाव प्रतिक्रिया है(भाविक शिष्य वर्गाची तो केवळ प्रेमाचो उकळी आहे).आदि विषयों पर यदि यथार्थ निरूपण करना चाहें तो एक विशाल पोथा बनेगा (वराच ग्रंथ माजेल)। यहा जो यह बहुत बड़ा समारोह जिस कारण हुआ उस आर्यसमाज की व स्वयं (खुद्) उसके संस्थापक स्वामीजी को ऊपर जो थोडी सी हकीकत दी है वह [वक्तृत्व इस] विषय के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए पाठकों को अप्रासंगित प्रतीत नहीं होगी, ऐसा हमें प्रतीत होता है।

वर्णनातीत है उस घटना का कितना भी वर्णन करें तो भी वह पूर्णतः संपन्न न हो सकेगी। जिस गजेन्द्र ने स्वामी जी की बरात को सुशोभित कर अपना जीवन सौभाग्यशाली व सफल बना लिया (धन्य करून घेतले) उसकी कोई पूंछ खींचकर, कोई सूंड खींचकर और मंहत को निःशुल्क प्रायश्चित देकर (तिस या ठिकाणी फुकटा फाकट प्रायश्चित मिलून) पुणे के दुष्ट व गुंडे (दुष्ट व दांडग्या) ब्राह्मणों ने गधे की तरह सुदूर वापिस भागने के लिए मजबूर कर दिया। इस शहर में सौ डेढ सौ वर्ष से जो दीपिकाएं संचित मूर्ति (पूजा) से उत्पन्न अन्धकार को ही मानों दूर कर रही थीं, उन्हें भी एकदम बुझाकर दीपक धारी को भाग जाने में ही अपनी सुरक्षा प्रतीत हुई। बाजे वालों व ताशे वालों ने भी [पलायन रूपी] मुक्ति का मार्ग ही पसंद किया। इसी समय (इतक्यात) पुलिस के सिपाही दौडते हुए आए, चार-पांच हजार की भीड़ में बड़ी मुश्किल से 'लाठी चार्ज' के बाद प्रवेश-नियन्त्रण हुआ, फिर जो लाठियों व वाद्ययन्त्रों का प्रहार शुरू हुआ वह अत्यंत ही निर्मम था (मोठ्या मारामारी ने रिघाव होऊन मग ज्यानी जो दांडक्याचा व वाद्यांचा मार सुरु केला तो मोठा कठिन) [इस प्रकार] सैकड़ों लोगों पर स्वामीजी के वक्तृत्व व उनके सच्छिष्यों की प्रेममयी स्पष्ट फलीभूत हुई। किसी के हिस्से में लाठी, किसी के हिस्से में चाबुक, किसी के हिस्से में पत्थर तो किसी के हिस्से में कीचड़ के गोलों (लपकों) का (ऐसा) प्रसाद किसी प्रकार का भेदभाव (पंक्तिभेद) न करते हुए भरपूर वितरित किया गया। प्रथम मंजिल पर (माडीवरील) [श्रोतृ] मंडली खिड़की बन्द करके बैठी हुई थी। उनमें से कोई बीच-बीच में उत्सुकतावश एकाध खिडकी थोडी सी खोलकर (उगीच एखादी खिडकी अंभळ लिकलिकी करून) नीचे की चहल-पहल (मौज) देखने की कोशिश करता तो उसे निश्चित रूप से कीचड़ का प्रसाद मिल जाता था। इस प्रकार सितम्बर महीने की पांचवीं तारीख मोहरम के जुलूस (दसवीं) की तरह पुणे में इस वर्ष बहुचर्चित एवं उल्लेखनीय रही (गाजली)। अस्तु।

इस छोटे से नाटक की परिसमाप्ति अन्त में इस प्रकार हुई कि स्वामी जी के पास इस [संकट के] समय में एक भी सच्छिष्य नहीं रहा और हरेक ने अपने-अपने [घर का] रास्ता नाप लिया। अन्त में पंद्रह-बीस एक ओर व पंद्रह-बीस दूसरी ओर दुतर्फा पुलिस वालों की पंक्ति और पीछे से हो रहे जय घोषों के मध्य स्वामी जी की सवारी अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ी (निज धामाला चालती झाली)। — विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

अब स्वामीजी के वक्तृत्व [के विषय में संक्षेप में लिखते हैं]—अतिशय कालांतर के पश्चात् प्राप्त सद् गुरु [स्वामी] जी के विषय में उनके चेले उन पर जिन-जिन गुणों का अतिशय स्नेहिल भक्ति-भाव और बुद्धि से आरोप करते हैं, उनमें से उपर्युक्त वक्तृत्व यह गुण अत्यंत ही महान् (मोठा) है। स्वामीजी की विद्वत्ता कुछ भी हो, उनके व्याख्यान में, उनके प्रमाणों में (कोटचात) तर्किकता (युक्ति) कितनी भी हो, इस समय में तो (निदान पक्षी) प्रस्तुत वक्तृत्व का गुण उनमें अतिशय महान् है। इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है। स्वामी दयानन्द के उपर्युक्त शिष्यों व अन्य अनेक लोगों का भी यही मत होगा। परन्तु [निबंध माला के] गतांक में संप्रति स्वदेश के वक्तृत्व को कौन सो दशा है व उसकी अनभिज्ञता (अभिज्ञता) तो कितनी है। इस विषय में जो [कुछ] लिखा है, उसे देखते हुए उपर्युक्त मत के विषय में किसी भी समझदार (समंजस्य) मनुष्य को विशेष आश्चर्य नहीं होगा। पद (हुछयाच्या) व प्रसिद्ध (लोकिकाच्या) के बल पर वक्तृत्व का तेज कितना अधिक प्रभावित करता है, यह हम पीछे लिख चुके हैं। गवर्नर साहब, आदि की बात तो छोडिये यदि किसी तहसीलदार (मामलेदार) या स्कूल के इंसपैक्टर ने कहीं, कैसा भी भाषण दिया तो भी वह 'सरस' ('सुरस'), चिन्ताकषक (मनोवेधक) आदि लगेगा ही। वैसे ही स्वदेश की परिस्थिति (हालारवी), धर्म की पतितावस्था इत्यादि के सम्बन्ध में यदि कोई व्याख्यान दे या कीर्त्तन करे तो विद्वान् व समझदार (सुझ) मंडली अवश्य ही एकत्रित होकर उस वक्ता के भाषण या कीर्त्तनकार के श्रद्धांजलि परक (शोकपरक) आख्यान को अवश्य ही [निश्चित रूपेण] सम्मान मिलेगा। पुरातन धार्मिक भोले लोगों की कीर्त्तन पर जैसी भक्ति भावना हुआ करती थी व कीर्त्तन को जाते समय प्रतिचरण पर सौ अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य मिलता है—आदि धारणाएं थीं। उसी प्रकार आधुनिक मान्यताएं नए प्रकार के भक्तिभावों से ओत-प्रोत हैं। यदि पुस्तकालय, पदार्थ-संग्रहालय आदि की स्थापना हो रही हो तो कभी बाधा नहीं डालनी चाहिये, चाहे फिर कोई पूरे साल भर भी उस ओर नहीं झांके (ढुंकूनहि पाहिले नाहों) तो भी चिंता की बात नहीं। भट-भिक्षुओं के हाथ कभी एक पैसा भी नहीं देना चाहिये, परन्तु दयानन्द जी जैसे कोई एकाध नितांत निःस्पृह, देशहितचिंतक के शिष्य परिवार के साथ कहीं भी जाने पर जितनी अधिक उनकी आवभगत (वरदास्त) की जाएगी उतनी आर्यजननी की सेवा में ही पहुंचेगी (घरी रुजू होते)। एकाध उत्कृष्ट कीर्तनकार यदि भावुक हो गया तो उसे कोई पूछेगा नहीं, स्वदेश का विषय प्रस्तुत कर कोई शोक गीत गाने (रडगाणे गाण्यास) खड़ा हो गया तो सुनने के लिये विद्वद् मंडली की भीड़ एकत्रित हो जायेगी। स्वर्गीय परशुराम पंत गोडबोले जैसे सज्जन व सच्चे परोपकारी गृहस्थ का देहांत हो गया तो उस संदर्भ में कोई विशेष पूछताछ भी नहीं होगी, पर कोई एकाध वडे साहव सैंकडों लोगों को डुबा कर स्वर्गवासी हो गए तो तत्काल उनके पराक्रम के स्मारक बनने लगेंगे। तो इसी नव-भक्ति भाव का अनुसरण कर प्रस्तुत वक्ता [स्वामी दयानन्द सरस्वती] की जो चारों ओर महिमा हो रही है (वह ईस नव-भक्ति के कारण ही)। गतांक की एक टिप्पणी में (एक) वसईकर वक्ता की जो लोक प्रियता (लौकिक) लिखी थी, वह [लोक प्रियता] उसे जैसे केवल मात्र वाक्पटुता (बोलकेपणावरून) के कारण प्राप्त हुई (और) वैसे ही यहां भी एक वक्तृत्व निष्ठ गृहस्थ को प्रस्तुत गुण के कारण [संपूर्ण] गत वर्ष भर वहुत ही [सं मान मिलता रहा. [विल्कुल वैसे ही स्वामीजी की बात है]। ये महाराज [स्वामी दयानन्द] [भी] यहां इतने दिनों तक यशस्वी होते रहे (गाजले) यदि इसे उनकी रसमय मधुर वाणी का केवल प्रताप

कहें तो फिर मुम्बई आदि स्थानों पर वैसा क्यों नहीं हुआ. यहां के 'ज्ञान प्रकाश' आदि समाचार पत्रों में जैसे स्वामीजी की महिमा निरंतर गूंजती (गाजत) रही थी. वैसे कुछ महिने पूर्व इंदुप्रकाश आदि पत्रों में उनकी महिमा क्यों नहीं दिखलाई दी ? स्पष्ट है कि भावी[1] आर्यसमाज के दोनों सुदृढ स्तंभों [रानाडे-कुंटे] ने यहां जिस प्रकार स्वामीजी को पुरस्कृत किया है वैसा पुरस्कार स्वामीजी को दूसरे किसी भी स्थान पर नहीं मिला है। और उसी कारण परमहंस [स्वामी दयानन्दजी] की वाणी पर सरस्वती ने जैसे यहां भरपूर (निर्भर) तांडव किया, वैसा दूसरे स्थान पर कहीं भी नहीं हुआ। इस प्रकार पंडित [स्वामी दयानन्द] जी की वक्तृत्व कीर्ति का पहला कारण स्थान माहात्म्य है। 'इसाप नीति' के झोपडी पर चढे बकरी के बच्चे के समान ('इसापनीती' तील खोपटावर चढवेल्या करडा प्रमाणे) यदि उसे महदाश्रय से उन्नति प्राप्त न होती तो ब्राह्मण-भटों पर, ज्योतिषियों पर, देव [भगवान] पर, मूर्ति पर, पुराणों पर और अधिक (तो) क्या कहें, परन्तु तुकाराम, तुलसीदास आदि पर व बेचारे कालीदास पर भी—ये महापुरुष जिस प्रकार टूट पडे (यथास्थित घसरले) वैसे उन्हें टूट-पडने या आक्रमण प्रहार करने का अवसर प्राप्त न होता। उनका 'मतलब सिंधु', 'गडबडाध्याय', 'गोलंकार' वगैर शब्द (चट सारे) उनके, उनके पास ही रह जाते। [स्वामीजी के वक्ता के रूप में यशस्वी होने का] दूसरा कारण-विषय माहात्म्य है। हमारे देश में चारों ओर अंग्रेजी शासन (अंमल) स्थापित होने से, रानी साहब के रत्न जटित मुकुट से कमांडर इन चीफ के रोब से (तुप्याने) व मैडम के आदेश से (गल्लाचूर्णाने), वैसे ही आगगाडी [ट्रेन], विद्युत् यंत्र (तारायंत्र), फोटोग्राफी आदि आश्चर्यमयी कलाओं से ईसाई धर्म को अपूर्व शोभा प्राप्त हुई और वह जब इधर चमचमाने लगा, तब हमारे नौखिखिए लोगों के (नव्या शिकलेल्या लोकांचे) नेत्र कभी के तृप्त हो गए (तेव्हांच दिपून गेले)। उन्हें लगने लगा कि जिस धर्म में इतना [भोग] विलास [मौजा] है, वही वास्तविक सत्यधर्म होना चाहिए। हमारे बुधवार (बुधवार [के] पेठ' [बाजार] में मिलने वाले) के पंचे [कटिवस्त्र] पहनने वाले [ब्राह्मण] भट, हास्य व्यंग्यात्मक शैली में मर्म स्पर्शी प्रहार करने वाले शास्त्री (शालजोड़ी उड़वणारे शास्त्री) इनके पास कहां असली सद्धर्म होगा ? उसमें से पादरी साहब की कपटी प्रार्थनाएं (आर्जवे) व नाना प्रकार के प्रलोभन दिखाने के ढंग। तब इन सब कारणों के कारण निश्चित रूप से ईसाई धर्म [मत] का महद् गौरव और पौराणिक धर्म की विडम्बना [शुरु हुई]। यह विडम्बना वीस-पच्चीस वर्षों से व्यापक स्तर पर प्रचलित है। नई विद्वद् मंडली में जिसने उपर्युक्त उपहास का स्वाद (सुख) न लिया हो ऐसा कोई व्यक्ति ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। अस्तु (असो)। जब इस प्रकार के आनंद का (मौजेचा) विषय उपस्थित होने पर और हमारे स्वामीजी जैसे रंगीले [विनोदी] अभिनय करने वाले होंगे (रंगेल नकले असल्यावर) तो फिर उस बहार की बात तो पूछना ही क्या ? प्रतिष्ठित श्रेष्ठ स्थान पर व बड़े-विद्वानों के मेले में तमाके (स्वांग) का (मौज) मजा यदि सुनने [देखने] को मिले और उससे पतित व धर्म भ्रष्ट (पातक) न होते हुए, उलटे मुफ्त में पुण्य संग्रह भी होता हो तो फिर कौन ऐसा होगा जो इस मूल्यवान समय (लाख रुपयाची वेल) को गंवायेगा। सारांश में जो सैंकड़ों लोग स्वामीजी का वक्तृत्व कान खोलकर सुनने और जी भर कर हंसने के लिये

१. ऊपर जिसे 'भावी' कहा है वह आर्यसमाज जब से स्वामीजी ने पुणे से प्रयाण किया है, तब से दो बार स्थापित किया गया है। यह इस प्रकार वारंवार (वरचेवर) क्यों पतनोन्मुख हो रहा है—कौन जाने ? प्राण-प्रतिष्ठा का एक बार स्वामी जी असली मन्त्र देगें तो उससे दोनों का भी उपहास न होने की व्यवस्था (तजवीज) हो जायेगी।

—विष्णु शास्त्री चिपळणकर

(कानभरून ऐकण्यास व हंशा पिकवण्यास) हिंदू क्लब में रोज एकत्रित होते थे, उसका कारण उपर्युक्त रहस्य (बीज) है। यदि स्वामीजी को अपने वक्तृत्व का (कितना) सामर्थ्य है, यह देखना था तो मूर्तिपूजा मंडन अथवा दूसरा कोई एकाध विषय लेकर देखना था, [व्याख्यान देना चाहिये था]। अर्थात् उसी स्थान पर रेवरंड नीलकंठ शास्त्री के व्याख्यान की जो दयनीय दशा हुई थी-(जो मजा उड़ाली होती), वैसी ही दुर्दशा स्वामी जो के व्याख्यानों की होती थी। अस्तु। जिस वक्तृत्व-कला की ख्याति पर स्वामीजी के भक्त इतने हर्षोल्लासित हो झूमते थे, उस वक्तृत्व-कला के उपर्युक्त दो प्रमुख कारण हैं। इसके अतिक्ति परमहंस [स्वामी दयानंद] की स्निग्ध [मधुर], [धीर] गंभीर आवाज, उभरे हुए गालों सहित वह भव्य मुख मुद्रा (ती भव्य फुगीर मुद्रा), संन्यस्त भगवे वस्त्र (भगवती कफनी), रेशमी केसरी वस्त्र [पगड़ी शान से] सिर पर लपेट कर्ण-कपोलों के पास छोड़े हुए उसके दो झोकदार पल्ले (मुकटा डोक्यास गुंडाळून ते झोकदार सोडलेले पल्ले), डीलडौल वाले सशक्त शरीर के नाटकी हाव-भाव (डौलाचे नाटकी हाव भाव), उन्नत आसन आदि सब सामग्री को ध्यान में रखने पर [स्वामी दयानन्द के] वक्तृत्व का जो इतना उत्कृष्ट परिपाक [पूर्ण विकास] हुआ, इसका किसी भी व्यक्ति को आश्चर्य नहीं होगा।

मूल संदर्भः— **शीर्षक—** वक्तृत्व
मासिक पत्रिका—निबंधमाला [क्रमाक-२३]
संपादक व लेखक—विष्णु शास्त्री चिपळूणकर
वर्ष—दूसरा अंक—११
प्रकाशनकाल दिनांक नवम्बर १८७५
आर्यभाषानुवाद संदर्भ—
पुस्तक— कै० विष्णु शास्त्री चिपळूणकर यांची निबंध माला
लेखक—कै० विष्णु कृष्ण [शास्त्री] चिपळूणकर
आवृत्ति—नवीन
प्रकाशक—रा० रा० शंकर नरहर जोशी यांनी ८१८ सदाशिव पेठ पुणे शहर ये थे आपल्या चित्रशाला छापखान्यात छापून प्रसिद्ध केली।
प्रकाशन काल—सन् १९१७ मूल्य—४ रुपये
प्रस्तावना लेखक—हरि रघुनाथ भागवत
आर्य भाषानुवादक—प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वड़वलकर,
[उपमन्त्री—महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा]
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय,
नांदेड़ ४३१६०१ (मराठवाडा-महाराष्ट्र)

---

१. गत जुलाई मास में हिन्दू क्लब में महत् संघर्ष (झटापट) चल रहा था। पहले दिन स्वामी जी के और दूसरे दिन रेवरंड 'बुवा' के व्याख्यान होते थे। उसमें मजे की बात यह थी कि स्वामी जी के समय दीवान खाने में जाने के लिए [बड़ी भीड़ रहती थी] पंक्ति (रीघ) नहीं होती थी और रेवरंड शास्त्री 'बुवा' के [व्याख्यान] काल में तो यदि एक-एक [प्रत्येक] श्रोता विस्तर साथ में लेकर [यदि] प्रभु ईसा मसीह का भी ध्यान करने का [शिव संकल्प] निश्चय करता, तो भी, जितनी चाहिये उतनी भरपूर जगह [रिक्त रहती] थी! और बिस्तर की जरूरत भी वस्तुतः आवश्यकता ही थी! [क्योंकि प्रत्येक श्रोता को नींद आ जाती थी]।
—विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

महर्षि दयानन्द अनुपम युग महापुरुष थे

[लेखक—श्री मोहन लाल जी 'मोहित' मारीशस]

महर्षि दयान्द एक अनुपम युग महापुरुष थे। उनका जन्म गुजरात में हुआ। उस समय भारत में अंग्रेजों का राज्य था, और विश्व में अंग्रेजी भाषार्थभाषी को सभ्य समझा जाता था। उसी समय बंगाल में राजा राममोहनराय जी भारत के पुनरुत्थान कार्य में संलग्न थे। वे पश्चिमी संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित और अंग्रेजी शिक्षा के सबल समर्थक थे। उनके सामने देश का जो रूप था, वह अंग्रेजी राजनीति एवं राजनय के द्वारा सत्ता संघर्ष में राजनीतिक औपनिवेशिक महत्वाकांक्षी का परिपोषक था। भारतीय समाज की अनेक विमूढ़ विकृतियां और कुटिल रीतियां उनके सामने थीं, परन्तु उनको देखने, समझने और व्यापक रूप में जोड़ कर भारतीय संस्कृति की परम्परा में उनके कारणों के समयोचित विश्लेषण-विवेचन की क्षमता उनके पास नहीं थी।

उसका प्रमुख कारण था कि बंगाल और कलकत्ता में अंग्रेजी शिक्षा तथा सभ्यता का प्रबल-प्रभाव था। अंग्रेजी शिक्षा में पठित वर्ग के मानस को अपने ढंग से सोचने समझने के लिये प्रेरित किया। शिक्षित वर्ग जितना प्रबुद्ध होता जाता जा रहा था, उसकी मानसिक वृत्ति पश्चिम संस्कृति से पराभूत हो रही थी। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति को अपनाने की उसकी आकांक्षा बढ़ती जा रही थी उसका परिणाम यह हुआ कि अपने, देश, धर्म, समाज तथा संस्कृति के प्रति हमारे बौद्धिक वर्ग में हीन-भाव उत्पन्न हुआ। शिक्षित वर्ग में पश्चिमीय सभ्यता की दासवृत्ति एक तरफ और दूसरी ओर सामान्य जनता में अन्धविश्वास एवं घोर अज्ञानतम था।

तत्कालीन समाज-सुधारकगण भारतीय आधुनिकीकरण का मार्ग हर प्रकार से पश्चिमीय-करण के रूप में चला रहे थे। श्री राजा राममोहनराय से लेकर श्री नेहरू तक ऐसे भारतीय नेताओं में देव दयानन्द बिलकुल अलग थे। भारत-पुनरुत्थान के नेताओं में दयानन्द का स्थान सर्वोपरि है।

बीस वर्ष पर्यन्त भारत के विविध प्रदेशों का १० हजार माइल से अधिक का पदाम्यां-परिभ्रमण किया और योगसाधना तथा हजारों श्रुति सम्मत शास्त्रों का स्वाध्याय एवं योगज मेधा से अनुपम मानस-मन्थन के बाद ऋषि दयानन्द ने जन-जीवन के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक मनोभूमि का मार्मिक अनुभव प्राप्त किया, और निश्चय किया कि भारतीय पुनरुत्थान और आधुनिकीकरण, भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति के आधार पर ही सम्भव हैं, और महात्मा गांधी ने भी माना है कि भारतीय सम्पूर्ण विकास की सम्भावनाएं भारतीय व्यक्तित्व की खोज के आधार पर ही संयोजित की जा सकती हैं। भारतीय रंग-मंच पर महात्मा गांधी उस समय आए जब दयानन्द द्वारा उठाये हुवे भारतीय, समाज के सारे प्रश्न पूर्णरूप से शिक्षित समाज में विचार का विषय बन चुके थे। अनेक दिशाओं में जन-मानस आंदोलित हो चुका था, उनमें आत्मगौरव तथा आत्म-विश्वास का भाव जाग चुका था। गांधी के समय तक ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध भारत में राजनैतिक आन्दोलन का रूप अधिक स्पष्टता के साथ उभर आया था। क्योंकि राजसभा कांग्रेस के जन्म से १० वर्ष पूर्व ही ऋषि दयानन्द ने लिखा है—कोई कितना ही करे जो स्वदेशी राज्य है, वह सर्वोपरि है, स्वदेश में स्वराज्य चाहिए। श्रीमती एवी वोन्टेने आल इण्डिया नेशनल कांग्रेस कलकत्ता में

अध्यक्षीय भाषण में कहा था "Dayanand was the first to proclaim India for ndian" अर्थात् दयानन्द ने ही सर्वप्रथम यह कहा था कि भारत भारतीयों का है।

वैदिक धर्म का पुनरुत्थान

सत्यार्थप्रकाश के माध्यम से जनता में राष्ट्रीय गौरव और स्वाधीनता सद्भावना जाग चुकी थी।

महाभारत के बाद अज्ञान और अन्धविश्वास निर्बाध गति से आगे बढ़े। अपस्वार्थ मत पंथों के भ्रमजाल में मानवता मरणासन्न हो चुकी थी। एकेश्वरवाद वैदिक-धर्म को अज्ञान और अन्ध-विश्वास ने विकृत बना दिया था। और विज्ञान तर्क से शून्य अनेक प्रतीक की कल्पना कर ली गई थी।

ऋषि दयानन्द ने वेदानुकूल एकेश्वरपूजा का सुन्दर संविधान बना दिया है। ज्ञान, कर्म उपासना, तीन सरल साधन वेदानुकूल हैं। भारत में अनेक कुरीतियां जड़ पकड़ चुकी थीं। जैसे— बालविवाह, सतीप्रथा, कन्यावध, छूआछूत, गुणकर्मविहीन-जन्म-जातिवाद और स्त्री शूद्र को शिक्षा से वंचित आदि दुर्गुण जैसे कोढरूपी रोगों ने राष्ट्र का अंग-भंग कर दिया था, दयानन्द के अमर सन्देश ने रामबाण औषधरूप से राष्ट्र को नवजीवन दिया।

ऋषि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने मानव कल्याण का घोर बाधक अज्ञान और अन्धविश्वास को बताया और उनका समूल विनाश का अचूक साधक साधन सत्यार्थ-प्रकाश में दिया है। और राष्ट्र के नव निर्माण के लिए तत्कालीन बहुभाषी भारत में राष्ट्र भाषा का स्थान हिन्दी को दिया। उनकी मातृ-भाषा गुजराती और स्वयं संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। फिर भी अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।

महर्षि की हिन्दी-सेवा के विषय में डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त एम. ए. पी. एच. डी. के लेखा-नुसार-स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु जी दोनों समकालीन समसामयिक थे। भारतेन्दु जी को इस का श्रेय है कि उन्होंने भाषा का परिष्कार किया और जन प्रिय चालू भाषा का निर्माण किया, विचारणीय और आश्चर्य का विषय यह है कि स्वामी दयानन्द ने भी तत्कालीन परिस्थिति में हिन्दी के निर्माण और प्रचार में भारतेन्दु जी की अपेक्षा कम सहयोग नहीं दिया, तथापि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने उनका वर्णन अन्यमनस्कता से किया, और यदि उनका कार्य इतना महान् व्यापक और दीप्त न होता तो वे उन्हें बिल्कुल ही छोड़ जाते।

दोनों पुरुषों की हिन्दी सेवा की तुलना

जिस समय हम स्वामी जी के भाषा कार्य पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि उन्हें इस कार्य में भारतेन्दु जी की अपेक्षा अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। हिन्दी भारतेन्दु जी की मातृभाषा थी, वे एक धनी पिता के लाडले पुत्र थे और सुविधाएं थी। उधर स्वामी जी के मार्ग

में सब से वड़ी वाधा यह थी कि उनकी मातृभाषा यह न थी । उन्हें पहले हिन्दी सीखनी पड़ी और शीघ्र ही सीख कर व्याख्यान और पुस्तक-लेखन का कार्य करना पड़ा।

हिन्दी का प्रारम्भ उन्होंने १८७४ ई० से किया और नव वर्ष ही भारतेन्दु के कार्य काल का लगभग आधा ही काम करने को समय मिला, इसी बीच में हिन्दी सीख कर लिखने और बोलने का अभ्यास किया, अनेक पुस्तक रचीं. पत्र और विज्ञापन लिखे, व्याख्यान दिए, राजाओं में उपदेश कार्य किया और वेद-भाष्य भी किया इस अल्प काल और प्रतिकूल परिस्थितियों में अनेक बाधाओं से लड़ते हुए हिन्दी के लिए जो कार्य किया उसका मूल्य भारतेन्दु से अधिक है, और स्तुत्य है । १० वर्ष के कार्यकाल में स्वामी दयानन्द ने ६६ पुस्तकें लिखी हैं। जिन में अभी कुछ अप्रकाशित हैं। कुल मिलाकर उनका लेखन कार्य लगभग २०,००० फुलस्केप पृष्ठों में है।

ऋषि दयानन्द की संवेदना क्षमता के समान उनकी विवेक बुद्धि प्रखर थी। भारतीय समाज की यथार्थ स्थिति का जितना मार्मिक अनुभव प्राप्त किया, उतनी ही गहराई से उन्होंने इस समाज के अधःपतन के कारणों का विवेचन विश्लेषण भी किया। वेद का पढ़ना-पढ़ाना परम धर्म है। महर्षि ने घोषणा की और सहस्रों वर्षों से अज्ञान अन्धकार में भटकते मानव के अन्तर में प्रसुप्त विवेक को जाग्रत किया। सत्यार्थप्रकाश जैसे अनुपम ग्रंथ के स्वध्याय से मानव समाज के नेतृत्व वर्ग को दिशा-बोध प्राप्त हुआ ।

आर्यसमाज ने धार्मिक सामाजिक विश्वास और दास-मनोवृत्ति को दूर करके मानसिक क्षितिज को उदार एवं विशाल बनाया। समाज में भ्रातृ-भाव और समता को सक्रिय बनाया। धार्मिक, सामाजिक व्यवहार में जो विषमता थी, उसका निराकरण कर मानव को मनोवोचित प्रतिष्ठा दिलाने में मार्ग-दर्शक बना। प्रत्येक धर्म की सच्ची कसौटी का वह प्रभाव है, जो आचार-विचार पर पड़ता है। आर्यसमाज इस अग्नि परीक्षा में खरा उतरा है । दयानन्द जी कथनी और करनी में सवर्था खरे उतरे। महर्षि की घोषणा है, स्वदेश में स्वराज्य बनाना और संसार का उपकार करना मुख्य उद्देश्य है। दोनों उद्देश्य लोकहितकारी सर्वतन्त्र सिद्धान्त विश्ववन्दनीय है। दयानन्द की युग-वाणी ने नई पीढ़ी को संस्कार-ग्राही मनोभूमि में धार्मिक सामाजिक और आध्यात्मिकता के अंकुर को पल्लवित, पुष्पित किया। और उनमें सद्-विवेक पूर्वक शाश्वत सत्य का मूल्यांकन की क्षमता प्रदान की।

महर्षि दयानन्द अनुपम युग महापुरुष थे।
महर्षि तेरा अनुपम सुयश जग में छा रहा है।
तेरे बताये पावन पथ पर संसार आ रहा है।

ऋषि दयानन्द की पूना-यात्रा

[ले०—श्री भास्कर रामचन्द्र जी भालेराव, पूना]

[श्री पं० भास्कर रामचन्द्र भालेराव पूना के प्रसिद्ध इतिहास-मर्मज्ञ व्यक्ति थे। आपने ऋषि दयानन्द की पूना-यात्रा से संबद्ध एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। वह आर्यमित्र सं० १९८७ वि० के दीपावली अंक में प्रकाशित हुआ था। वहां से लेकर "पूना-प्रवचन" नाम से पूना के १५ व्याख्यानों के सम्पादक श्रीरामजी शर्मा आगरा ने उसे 'पूना-प्रवचन' के आरम्भ में प्रकाशित किया था। इसे हम वेदवाणी सितम्बर १९६५ के अंक में छाप चुके हैं फिर भी प्रकृत प्रसंग में उपयोगी होने से यहां दे रहे हैं। सम्पा०]

जब स्वामी जी पूना पहुंचे तो उनके आसपास दिन-रात सहस्रों मनुष्यों की भीड़ लगी रहती थी। पूना विद्याओं और कलाओं का केन्द्र होते हुए भी गुण्डेपन में भी कम नहीं है। वहाँ के सभा-मंच पर व्याख्यान देना सरल कार्य नहीं है। प्रथम तो वहाँ के "शुहदे" व्याख्यान के बीच में ही विघ्न डालने की पूरी कोशिश करते हैं, अगर वक्ता व्याख्यान देने में सफल भी हुआ तो व्याख्यान के अनन्तर प्रश्नोत्तरों तथा विरुद्ध सिद्धांतों का तांता बंध जाता है। जो वक्ता पूना के सभा-मंच पर सफल हो जाए उसे विश्वविजयी ही समझना चाहिए। पूना लगभग ६० वर्षों से इस विषय में बदनाम है। यह दृश्य अब भी प्रतिवर्ष वसन्त व्याख्यान-माला के अवसर पर विभिन्न प्रान्तों के नेताओं तथा वक्ताओं के व्याख्यानों के समय देखा जा सकता है। ऐसे शहर में स्वामी दयानन्द जी अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों द्वारा लगातार दो मास तक जनता को अपनी ओर आकृष्ट करते रहे इसका कारण उनका विशाल व्यक्तित्व ही था।

एक हिन्दु संन्यासी द्वारा जन्म परक वर्ण-व्यवस्था, मूर्ति पूजा, श्राद्ध आदि के विरुद्ध भाषण सुनकर पुराणमताभिमानी पुरुष क्षुब्ध हो उठे। पूना के तत्कालीन अनभिषिक्त राजा देशपूज्य महामति रानाडे आदि स्वामी जी के भक्त बन गए थे तो भी शुहदे अपनी करतूत दिखाने से कब चूकने लगे? दो मास के अनन्तर स्वामीजी की विदाई के उपलक्ष में हाथी पर वेदभगवान् तथा स्वामीजी की सवारी निकालने का आयोजन किया गया और प्रतिपक्षियों ने उसमें विघ्न डालने को कमर कसी तत्संबन्धी स्वामी जी के पक्ष और विपक्ष की कई बातें तत्कालीन सामग्री से जानी जा सकती हैं। जहां रानाडे जी की धर्मपत्नी की आत्म-जीवनी में पूर्वपक्ष का वर्णन पाया जाता है, वहां महाराष्ट्र के भारतेन्दु राष्ट्रीय हलचलों के जनक विष्णुशास्त्री चिपलूनकर जी की निबन्धमाला में विरुद्ध पक्ष का भी वर्णन पाया जाता है। चिपलूनकर जी यद्यपि पुराण मतवादी थे तो भी वे स्वामी जी की निस्पृहता, स्वदेशाभिमान, सच्ची लगन और भावस्थिति के विषय में सद्हेतु तथा उसकी सिद्धि के प्रीत्यर्थ निर्भीकतापूर्वक सतत प्रयत्न के वे पूरे कायल थे। उन्होंने स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनके विचारों से सहमत न होते हुए भी कृतज्ञता बुद्धि दर्शायी है। हम सबसे पहले स्वामीजी के पक्ष का विवेचन करेंगे।

---

१. इस ग्रन्थ की सबसे प्रथम सूचना मुझे श्री प्रो० भवानी लालजी भारतीय से सन् १९६५ में प्राप्त हुई उनकी कृपा से हो उक्त पुस्तक देखने को मिली थी। उपदेश मञ्जरी का श्रेष्ठ संस्करण प्रकाशित्त करने के लिए इस संस्करण से बहुत सहायता मिली है। —सम्पादक

[श्री फाटक जी का लेख]

मराठी चरित्र लेखक श्री फाटक जी ने लिखा है कि सन् १८७५ में स्वामी जी ने बम्बई का पर्यटन किया और वहां पर उन्हें व्याख्यानों द्वारा बड़ी सफलता मिली। कहा जाता है कि बम्बई की सफलता ही के कारण उन्हें आर्यसमाज के सिद्धान्त[1] निश्चित करने की प्रेरणा हुई। बम्बई के लोकप्रिय नेता गोपालराव देशमुख स्वामीजी के अनुयायी बन गये थे। इसी से [महाराष्ट्र में अपने सिद्धान्तों का विशेषरूपेण प्रचार करने की दृष्टि से स्वामीजी ने जुलाई में पूना की ओर प्रयाण किया। महा-मति रानाडे जो यद्यपि प्रार्थना-समाजी थे तथापि उन्होंने स्वामीजी का बड़ा सत्कार किया। प्रार्थना-समाज में कोई ग्रन्थ ईश्वर-प्रणीत नहीं माना जाता, परन्तु स्वामी जी तो वेदों को ईश्वर-प्रणीत मानते थे। तो भी रानाडे जी ने उनके व्याख्यानों का पूर्ण प्रबन्ध किया और स्वयं भी प्रतिदिन व्याख्यान सुनने को उपस्थित रहे। स्वामीजी मूर्ति-पूजा, श्राद्ध, तथा जातिभेद के विरुद्ध थे। अतः मत-भिन्नता रखते हुए भी उक्त सिद्धान्तों का प्रचार करने के निमित्त, कहा जाता है कि, रानाडे जी ने ही स्वामी जी को निमन्त्रित किया। रानाडे जी अपने समकालीन पुरुषों में अद्वितीय थे और प्रत्येक मनुष्य की प्रतिभा का यथावत् उपयोग करने की कला में निपुण थे। इसी से इनके द्वारा स्वामी जी के सिद्धान्तों का प्रचार होना कोई आश्चर्य नहीं है। स्वामीजी पूना में दो मास तक रहे और इस अवधि में उनके १५ व्याख्यान हुए। उनके व्याख्यान प्रायः हिन्दी में हुआ करते थे। यद्यपि महाराष्ट्र में हिन्दी का समझना कठिन नहीं था तथापि सर्वसाधारण जनता में उनका प्रचार करने के उद्देश्य से प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीयुत महादेव मोरेश्वर कुन्टे तथा साहित्य-सेवी गणेश जनार्दन आगाशे स्वामी जी के व्याख्यानों के नोट लिखते और दूसरे दिन उन्हीं के मराठी अनुवाद छपाकर वितरण किये जाते थे। स्वामीजी के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिए पूना के पुराणमताभिमानी महामहोपाध्याय रामशास्त्री आपटे ने भी व्याख्यानों का तांता बांधा, पर प्रायः सारा शिक्षित समाज स्वामीजी के व्याख्यानों से ही अघा जाता था। अतः शास्त्री जी के व्याख्यानों की ओर कोई फटका तक नहीं। स्वामी जी के खण्डन के लिये एक और महाशय आगे बढ़े जिनका नाम रैवरेण्ड नीलकण्ठ शास्त्री था। शास्त्री जी ब्राह्मण थे, पर आपने क्रिश्चियन धर्म की दीक्षा ली थी। जिस स्थान पर स्वामी जी के व्याख्यान हुआ करते थे वहीं पर इन क्रिश्चियन महाशय के व्याख्यानों का प्रबन्ध भी किया जाता था, पर उनके व्याख्यानों में सर्वदा श्रोताओं की कमी रहा करती थी। इस प्रकार उस समय हिन्दु तथा क्रिश्चियन धर्म के अभिमानी समाजसुधारकों को सदा हेय दृष्टि से देखते थे। स्वामी जी की सारे शहर में बड़ी 'वाह-वाह' हुई और आपने वहां पर आर्यसमाज भी स्थापित किया। रानाडे जी कार्य-कारिणी समिति के एक सभासद् बनाये गये।

अन्त में स्वामी जी ने प्रस्थान करने की ठानी तब पूना के तत्कालीन प्रसिद्ध वकील गंगाराम भाऊ म्हसके जी ने अपने अन्तिम व्याख्यान के लिए आप को अपने पूना केन्टोनमेन्ट के बंगले पर निमन्त्रित किया। उस दिन हाथी पर स्वामीजी का जलूस निकालना भी निश्चित हुआ। स्वामी जी ने पालकी में वेद भगवान् की सवारी निकालने का अनुरोध किया और खुद की सवारी निकालने की मनाही की। अन्त में पालकी में बिठला कर उनकी सवारी निकाली गई। पालकी के साथ मशालें भी जलाई गई थीं। एक स्थान पर यह भी उल्लेख पाया जाता है कि स्वामीजी हाथी पर चढ़ाये गये थे और वेद पालकी में।] स्वामीजी की सवारी को अपना अपमान समझकर

---

१. यहां आर्यसमाज के नियमों से तात्पर्य जानना चाहिये। आर्यसमाज के प्रथम अट्ठाईस नियम बम्बई में ही ऋ० दयानन्द ने बनाये थे।

कुछ बिगड़े दिलों ने एक नई सूझ निकाली। एक गधे के सिर पर पीले रंग का साफा बांधा गया और उसे एक जर्जीन दुशाला उढ़ाकर स्वामी गर्दभानन्द का जय-जयकार करते हुए पूना के गलीकूचों में घुमाया। स्वामीजी की सवारी में झगड़ा होने की आशंका से कई लोगों ने सवारी न निकालने का भी अनुरोध किया। म्हसके जी ने तो पुलिस से सहायता लेने तक की बात कह डाली। तब महामति रानाडेजी ने कहा—

"जरा देखें तो सही कि पूना में समाज सुधार के झण्डे का पीछा करने वाले कितने बहादुर मौजूद हैं, यदि सुधार पक्ष कसौटी पर कसा गया तो विरुद्ध पक्ष को उनके सामर्थ्य का पता चल जायगा। कोई भी सुधार बिना कष्ट सहे प्रचलित नहीं हो सकता। अतः सुधारकों को कष्ट सहने को तैयार हो जाना चाहिये। यदि सवारी पर पत्थर और मोरियों के कीच भी बरसे तो भी मैं उसे शान्तिपूर्वक सह लूंगा, आप भी मेरी तरह तय्यार हो जावें।"

रानाडेजी के आदेशानुसार अन्त में सवारी निकाली गई, इतने में बुधवारिया बाजार में भिडेजी के मकान के पास, सामने से गाजे-बाजे सहित गर्दभानन्दजी के जय-जयकार के नारे बुलन्द हुए, और सारा अन्तरिक्ष गुञ्जायमान हो उठा। स्वामीजी की सवारी के साथ पुलिस भी थी, पर केवल शोभा के लिए। साथ ही गर्दभानन्द के भक्तों की लीला की ओर उसका लक्ष्य था। अन्त में स्वामी जी भिडेगृह के हाल में पहुंचे और वहां उनका अन्तिम व्याख्यान आरम्भ हुआ। व्याख्यान बन्द करने के उद्देश्य से गर्दभानन्द का जय जयकार होने लगा तब स्वामी जी के एक शिष्य ने कुपित होकर पुलिस की सहायता से गर्दभानन्द को प्रसाद दिया। बिचारे गर्दभानन्द को जुलूस का आनन्द लूटने का ज्ञान नहीं था। अतः वह 'प्रसाद' के भय से अपने भक्तों के चंगुल से भाग निकला, पर उसके भक्तों ने उसे रोक लिया। एकदम हुल्लड़बाजों ने हाथी पर भी पत्थर बरसाये। उस दिन वर्षा होने के कारण रास्ते में कीच हो गई थी, अतः हुल्लड़बाजों ने खिड़कियों द्वारा 'हाल' में कीचड़ फेंकना आरम्भ किया। स्वामीजी के श्रोताओं को भी कीच प्रसाद मिला। अन्त में हाल की खिड़कियां और दरवाजे बन्द कर दिये गये रास्ते में पुलिस और लोगों में मुठभेड़ हो गई। रात्रि के ९½ (साढ़े नौ) बजे तक हल्ला रहा, अन्त में सिटी मजिस्ट्रेट मौके पर आये और स्वामीजी अपने स्थान को रवाना हुए। रानाडेजी को भी कीच-प्रसाद मिल चुका था। उनके घर लौटने पर जब कुटुम्बीय जनों ने उन्हें देख कर आश्चर्य प्रकट किया तो आपने हंस कर उत्तर दिया—

"यदि मैं भी सबके साथ था तो मुझे क्यों न प्रसाद मिलता ? पक्षाभिमान तो ऐसा ही हुआ करता है— प्रतिपक्षियों को छोटे बड़े से क्या अटकी ? हम भी मान और अपमान का विचार क्यों करें ? ऐसी घटनायें होनी तो स्वाभाविक ही हैं।"

उक्त हुल्लड़ में एक सिपाही बुरी तरह से घायल हुआ और दस-पन्द्रह आदमियों को भी चोट आई। गर्दभानन्द की सवारी निकालने वाले दो अगुआ भी पकड़े गये, और उन्हें सजा भुगतनी पड़ी। वे अगुआ कमिश्नर की कचहरी के चपरासी थे। पर, परदे की ओट में छिपे हुए अगुआ और ही थे। जब तहकीकात में उनके नाम प्रकट हुए और उनके पकड़े जाने की सम्भावना हुई, तब वे रानाडेजी के शरण में आये। कई मित्रों ने रानाडेजी से उदारता का निषेध भी किया पर आपने उन्हें क्षमा प्रदान की। स्वामी जी की फजीहत करने में सार्थक होने वाले कितने ही लोग पूना में मौजूद थे, पर आर्यसमाज की वर्तमान उपयोगिता को उस समय मानने वाले महामति रानाडे जैसे महापुरुष बिरले ही थे। इस उदाहरण से यथार्थ में रानाडेजी की उच्चाशयता जानी जा सकती है। उक्त घटना तारीख ५ सितम्बर सन् १८७५ ई० को हुई।

[प्रतिपक्षीय पं० विष्णुशास्त्री चिपलूनकर का लेख]

अब हम संक्षेप में प्रतिपक्षीय लोगों द्वारा लिखित वर्णन उद्धृत करते हैं। पीछे हम कह आये हैं कि पं० विष्णु शास्त्री चिपलूनकर महाराष्ट्र के राष्ट्रीय पक्ष के जनक कहे जा सकते हैं। वे मराठी के मैकाले और भारतेन्दु थे। चिपलूनकरजी पुराण-मत के कट्टर अभिमानी थे और सुधारकों के विरुद्ध थे। इसी से स्वामी जी के विरुद्ध लेख लिखना स्वाभाविक ही था। अपनी निवन्ध माला के वक्तृत्व नामक विशाल निबन्ध में आपने स्वामी जी के कई गुणों के प्रशंसक होते हुए भी प्रतिकूलता दृष्टि से वर्णन किया है। यथा—

"स्वामी जी की बुद्ध, ईसामसीह, मुहम्मद की नाईं नए मत के संस्थापक होने की महत्त्वाकांक्षा है। आप कबीर, तुलसीदास, तुकाराम आदि को महामूर्ख और महादुष्ट कह कर चमार, बलाई, भंगी, प्रभृति शूद्र जातियों का उद्धार करने पर कमर कसे हुए हैं। आप का अन्तरंग[1] बड़ा कठोर है आपने कहा है[2] कि बाल्यावस्था में आपके मामा[3] की मृत्यु हो जाने पर भी आप की आंखों से आंसू तक नहीं आये। सम्भवतः आप की यही कठोरता अब परिपक्व हो गई है। स्वामी जी का धार्मिक विवेचन सुनकर संस्कृत न जाननेवाले भी गहरे विद्वान् बन कर बड़े-बड़े पण्डितों से टक्कर लेने लगते हैं। तेंतीस करोड़ देवताओं को छोड़कर एक देवता को मानो, मूर्ति पूजा पाप की ओर झुकाती है। उसी से हमारे देश का नाश हुआ और ग्रीक, रोमन, मिश्र, पारसीक आदि का नाम-निशान भी न रहा। नए जमाने के अनुसार नई बातों का अवलम्बन करो, ये स्वामी जी के मुख्य सिद्धान्त हैं, पर स्वामी जी के व्याख्यानों में से एक भी देवता कम नहीं हुआ। न एकाध मूर्ति ही खण्डित हुई। जिन लोगों के उद्धार के लिए वे स्वर्ग को नसैनी लगा रहे हैं, उनका भी स्वामी जी पर विश्वास नहीं है। क्रिश्चियन धर्म स्वीकार करने वालों को तो वे पतित कहते हैं। आप हमेशा वेदों की दुहाई दिया करते हैं। ऊंचे सभा मञ्च पर बैठे हुए, अपने आस-पास बड़े गण्यमान लोगों का झुण्ड देख कर स्वामी जी अवश्य ही अपने को कृतार्थ समझते होंगे। 'युक्ति से' 'प्रमाण से' 'अनुमान से' आप का तकिया कलाम है। स्वामी जी के व्याख्यान में यज्ञ, हवा-शुद्धि, विमान, तार आदि की वेदों से जो दुहाई दी जाती है वह प्रमाण युक्ति या अनुमान से कहां तक सत्य होगी, यह तो पण्डित लोग ही जानें। तो भी आपकी वक्तृता उच्चकोटि की होती है, इसमें सन्देह नहीं। 'मतलब सिन्धु' 'गड़बड़ाध्याय' आदि आपके मुख्य प्रमाण हैं। आप की स्निग्ध वाणी, गम्भीर आवाज, भव्य और पुष्ट चेहरा, भगवा वस्त्र, रेशमी साफा, और उसके दोनों ओर छूटे हुए छोर, अपूर्व अभिनय, ऊंची बैठक और तर्क युक्त भाषण-शैली के देखते हुए यदि उनके व्याख्यान प्रभावशाली हों तो कोई आश्चर्य नहीं है।"

निबन्ध माला में उक्त तीखी आलोचना पढ़कर रत्नागिरि के एक पाठक[4] ने शास्त्री जी को यहां तक लिख भेजा कि "स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे परोपकारी विद्वान् तथा देशाभिमानी सज्जनों की हंसी उड़ाने से तुम्हें, तुम्हारे पाठकों को, तथा जिनकी उन्नति के उद्योग कर रहे हो, उन्हें कोई लाभ नहीं हो सकता।" शास्त्रीजी ने उसका भी उत्तर दिया। श्री पं० चिपलूनकर जी जिस राष्ट्रीय वा गरम दल के जनक कहे जाते हैं उस पक्ष के

---

१. अर्थात् हृदय वा आत्मा। २. पन्द्रहवें व्याख्यान में स्वचरित वर्णन में।

३. मामा नहीं, चाचा की मृत्यु का निर्देश किया है।

४. लेखक महोदय ने इन महानुभावों के नाम का उल्लेख नहीं किया। नामोल्लेख कर देते तो ऐसे स्पष्ट और सत्यवादी महानुभाव का नाम भी चिरस्थायी हो जाता।

लोकमान्य तिलक से लगा कर आज तक के प्रायः सभी अनुयायी समाजसुधारकों के प्रति उनके से ही भाव रखते चले आए हैं।

स्वामी जी की सवारी का जो मुकद्दमा चला और उस पर मजिस्ट्रेट ने 'फाईण्डिग' लिखा उसमें प्रोफेसर मैक्समूलर तथा सीग के द्वारा लिखे जाने की भी बात आपने कही। गर्दभानन्द की सवारी का आपने अच्छा वर्णन किया है। हाथी पर बैठे हुए स्वामी जी को दूल्हा बतलाकर पूना के गुण्डों की लीला का बड़ा अनूठा वर्णन किया है।

अब हम रानाडे जी की धर्मपत्नी, महान् समाज सेविका की आत्मजीवनी से तत्सम्बन्धी विवेचन उद्धृत करते हैं—

[श्री रानाडेजी की धर्मपत्नी का लेख]

"लाहौर से स्वामी जी पूना पधारे और भिड़े बाड़े में प्रतिदिन उनके व्याख्यान होने लगे। रानाडे जी सन्ध्या को २—२॥ घण्टा व्याख्यान सुनने और प्रबन्ध करने में लगे रहते थे। अन्तिम दिन बिदाई की सवारी निकालना निश्चित हुआ। पूना के गुण्डों में हलचल मच गई। उन्होंने स्वामीजी की फजीहत करने की युक्ति सोची। ५-५० बैण्ड ताशा ढोल सहित गर्दभानन्द को सजाकर सवारी निकाली, शहर में कहकहा मच गया। प्रातः-काल से सन्ध्या तक गली-कूचों से सवारी निकाली गई, और जय-जयकार के नारे बुलन्द किए गए। उक्त सम्मान गर्दभानन्द को अच्छा न लगा अतः दूसरे दिन आप समाधि लगा कर निज धाम चले गये। फिर इसका पता नहीं चला। उस दिन सन्ध्या के चार बजे श्रोतागण एकत्रित हुए। स्वामी जी बड़े रसीले वक्ता थे, उनकी वाणी बड़ी गम्भीर थी 'वक्तृता बड़ी मार्मिक तथा आलंकारिक हुआ करती थीं, जिससे श्रोतागण तल्लीन हो जाया करते थे। ७०-७५ मिनट में आपने आलंकारिक और विनोदपूर्ण भाषा में श्रोताओं को धन्यवाद दिये। बाहर हाथी सजा सजाया खड़ा था, ज्यों ही सब लोग वहां आ पहुंचे, त्योंही गर्दभानन्द जी के जय-जयकार के नारे बुलन्द हुए। पालकी में वेद रखे गए और हाथी पर स्वामीजी बिठलाये गये[1] उस रोज वर्षा हो जाने के कारण गुण्डों को कीचड़ से बड़ी सहायता मिली। पुलिस भी साथ थी; पर उसे सूचित किया गया था कि जब तक सहायता न मांगी जावे वे तटस्थ रहें। अन्त में हल्लागुल्ला मचा, पर स्वामी जी की सवारी सुरक्षित रूप में अपने स्थान पर पहुंच गई और विरोधियों को अपने मुंह की खानी पड़ी।"

इस प्रकार महामति रानाडे जी जैसे धीर-गम्भीर नेता के उद्योग तथा स्वामी जी के अपूर्व व्यक्तित्व के कारण स्वामी जी का पूना का कार्यक्रम बड़ा बोधप्रद, उत्साही, मनोरंजक तथा चिरस्मरणीय रहा। अब भी जब कभी पूना में स्वामी जी के आगमन की बात छिड़ती है तब कौतूहलपूर्ण कहकहा मच जाता है। हिन्दी भाषा-भाषी जनता[2] को तो उसकी बिलकुल कल्पना तक नहीं है। इसी से उसका यह संक्षेप वर्णन किया गया है। आशा है, पाठकों को पसन्द आयेगा और उसमें स्वामीजी के जीवन की एक अप्रकाशित घटना का पता चलेगा।

भास्कर रामचन्द्र भालेराव

---

१. श्री पं० घासीरामजी एम० ए० ने श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी द्वारा संगृहीत जीवन-चरित में 'हाथी पर सवारी निकालने को' गलत बताया है। परन्तु श्रीरानाडेजी की धर्मपत्नी के लेख से मानना होगा कि ऋषि दयानन्द की सवारी हाथी पर निकाली गई थी।

२. अर्थात् उत्तर भारतवासी। सम्पादक ॥

सन् १८७४   वि० १९३०

जनवरी		फरवरी		मार्च	
१ बृहस्पति	पौष शुक्ला १४	१ रवि	माघ शुक्ला पूर्णिमा	१ रवि	फाल्गुन शुक्ला १३
२ शुक्र	१५	२ सोम	फाल्गुन[2] कृष्णा १	२ सोम	१४
३ शनि	माघ[1] कृष्णा १	३ मंगल	२	३ मंगल	पूर्णिमा
४ रवि	२	४ बुध	३	४ बुध	चैत्र[3] कृष्णा १
५ सोम	३	५ बृहस्पति	४	५ बृहस्पति	२
६ मंगल	४	६ शुक्र	५	६ शुक्र	३
७ बुध	५	७ शनि	६	७ शनि	४

ईसवी सन् मास तारीख और वि० सं० मास तिथि का

तुलना-पत्र

१ जनवरी सन् १८७४ से ३१ दिसम्बर, सन् १८८३ तक

पौष शुक्ला १४, सं० १९३० से पौष शुक्ला २, सं० १९४० तक

जनवरी		फरवरी		मार्च	
२३ शुक्र	६	२३ सोम	७	२३ सोम	६
२४ शनि	७	२४ मंगल	८	२४ मंगल	७
२५ रवि	८	२५ बुध	९	२५ बुध	८
२६ सोम	९	२६ बृहस्पति	१०;११	२६ बृहस्पति	९
२७ मंगल	१०	२७ शुक्र	१२	२७ शुक्र	१०
२८ बुध	११	२८ शनि	१२	२८ शनि	११
२९ बृहस्पति	१२			२९ रवि	१२
३० शुक्र	१३			३० सोम	१३
३१ शनि	१४			३१ मंगल	१४

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा ।

लोकमान्य तिलक से लगा कर आज तक के प्रायः सभी अनुयायी समाजसुधारकों के प्रति उनके से ही भाव रखते चले आए हैं।

स्वामी जी की सवारी का जो मुकद्दमा चला और उस पर मजिस्ट्रेट ने 'फाईण्डिग' लिखा उसमें प्रोफेसर मॅक्समूलर तथा सीग के द्वारा लिखे जाने की भी बात आपने कही। गर्दभानन्द की सवारी का आपने अच्छा वर्णन किया है। हाथी पर बैठे हुए स्वामी जी को दूल्हा बतलाकर पूना के गुण्डों की लीला का बड़ा अनूठा वर्णन किया है।

अब हम रानाडे जी की धर्मपत्नी, महान् समाज सेविका की आत्मजीवनी से तत्सम्बन्धी विवेचन उद्धृत करते हैं—

[श्री रानाडेजी की धर्मपत्नी का लेख]

इस प्रकार महामति रानाडे जी जैसे धीर-गम्भीर नेता के उद्योग तथा स्वामी जी के अपूर्व व्यक्तित्व के कारण स्वामी जी का पूना का कार्यक्रम बड़ा बोधप्रद, उत्साही, मनोरंजक तथा चिरस्मरणीय रहा। अब भी जब कभी पूना में स्वामी जी के आगमन की बात छिड़ती है तब कौतूहलपूर्ण कहकहा मच जाता है। हिन्दी भाषा-भाषी जनता[2] को तो उसकी बिलकुल कल्पना तक नहीं है। इसी से उसका यह संक्षेप वर्णन किया गया है। आशा है, पाठकों को पसन्द आयेगा और उसमें स्वामीजी के जीवन की एक अप्रकाशित घटना का पता चलेगा।

भास्कर रामचन्द्र भालेराव

---

१. श्री पं० घासीरामजी एम० ए० ने श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी द्वारा संगृहीत जीवन-चरित में 'हाथी पर सवारी निकालने को' गलत बताया है। परन्तु श्रीरानाडेजी की धर्मपत्नी के लेख से मानना होगा कि ऋषि दयानन्द की सवारी हाथी पर निकाली गई थी।

२. अर्थात् उत्तर भारतवासी। सम्पादक ॥

सन् १८७४ वि० १९३०

जनवरी			फरवरी			मार्च		
१	बृहस्पति	पौष शुक्ला १४	१	रवि	माघ शुक्ला पूर्णिमा	१	रवि	फाल्गुन शुक्ला १३
२	शुक्र	१५	२	सोम	फाल्गुन[2] कृष्णा १	२	सोम	१४
३	शनि	माघ[1] कृष्णा १	३	मंगल	२	३	मंगल	पूर्णिमा
४	रवि	२	४	बुध	३	४	बुध	चैत्र[3] कृष्णा १
५	सोम	३	५	बृहस्पति	४	५	बृहस्पति	२
६	मंगल	४	६	शुक्र	५	६	शुक्र	३
७	बुध	५	७	शनि	६	७	शनि	४
८	बृहस्पति	...	८	रवि	७	८	रवि	५
९	शुक्र	६	९	सोम	...	९	सोम	६
१०	शनि	७	१०	मंगल	८	१०	मंगल	७
११	रवि	८	११	बुध	९	११	बुध	८
१२	सोम	९	१२	बृहस्पति	१०	१२	बृहस्पति	९
१३	मंगल	१०	१३	शुक्र	११, १२	१३	शुक्र	१०
१४	बुध	११	१४	शनि	१३	१४	शनि	११
१५	बृहस्पति	१२	१५	रवि	१४	१५	रवि	१२
१६	शुक्र	१३	१६	सोम	अमावस्या	१६	सोम	१३
१७	शनि	१४	१७	मंगल	फाल्गुन शुक्ला १	१७	मंगल	१४
१८	रवि	अमावस्या	१८	बुध	२	१८	बुध	अमावस्या
१९	सोम	माघ शुक्ला १	१९	बृहस्पति	३	१९	बृहस्पति	चैत्र शुक्ला १
२०	मंगल	२	२०	शुक्र	४	२०	शुक्र	१९३१ २,३
२१	बुध	३,४	२१	शनि	५	२१	शनि	४
२२	बृहस्पति	५	२२	रवि	६	२२	रवि	५
२३	शुक्र	६	२३	सोम	७	२३	सोम	६
२४	शनि	७	२४	मंगल	८	२४	मंगल	७
२५	रवि	८	२५	बुध	९	२५	बुध	८
२६	सोम	९	२६	बृहस्पति	१०;११	२६	बृहस्पति	९
२७	मंगल	१०	२७	शुक्र	१२	२७	शुक्र	१०
२८	बुध	११	२८	शनि	१२	२८	शनि	११
२९	बृहस्पति	१२				२९	रवि	१२
३०	शुक्र	१३				३०	सोम	१३
३१	शनि	१४				३१	मंगल	१४

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुण कृष्णा।

सन् १८७४ वि० १९३१

अप्रैल		मई		जून	
१ बुध	चैत्र शु० पूर्णिमा	१ शुक्र	वैशाख शु० पूर्णिमा	१ सोम	आषाढ[3] कृष्णा १
२ बृहस्पति	...	२ शनि	ज्येष्ठ[2] कृष्णा १	२ मंगल	२
३ शुक्र	वैशाख[1] कृष्णा १	३ रवि	२	३ बुध	३
४ शनि	२	४ सोम	३	४ बृहस्पति	४
५ रवि	३	५ मंगल	४	५ शुक्र	५
६ सोम	४	६ बुध	५	६ शनि	६, ७
७ मंगल	५	७ बृहस्पति	६	७ रवि	८
८ बुध	६	८ शुक्र	७	८ सोम	९
९ बृहस्पति	७	९ शनि	८	९ मंगल	१०
१० शुक्र	८	१० रवि	९	१० बुध	११
११ शनि	९	११ सोम	१०	११ बृहस्पति	१२
१२ रवि	१०, ११	१२ मंगल	११	१२ शुक्र	१३
१३ सोम	१२	१३ बुध	१२	१३ शनि	१४
१४ मंगल	१३	१४ बृहस्पति	१३, १४	१४ रवि	अमावस्या
१५ बुध	१४	१५ शुक्र	अमावस्या	१५ सोम	आषाढ शुक्ला १
१६ बृहस्पति	अमावस्या	१६ शनि	ज्येष्ठ शुक्ला १	१६ मंगल	(अधिक) २
१७ शुक्र	वैशाख शुक्ला १	१७ रवि	२	१७ बुध	३
१८ शनि	२	१८ सोम	३	१८ बृहस्पति	४
१९ रवि	३	१९ मंगल	४	१९ शुक्र	५
२० सोम	४	२० बुध	५	२० शनि	६
२१ मंगल	५	२१ बृहस्पति	६	२१ रवि	७
२२ बुध	६	२२ शुक्र	७	२२ सोम	८
२३ बृहस्पति	७	२३ शनि	८	२३ मंगल	९
२४ शुक्र	८	२४ रवि	९	२४ बुध	१०
२५ शनि	९	२५ सोम	१०	२५ बृहस्पति	११
२६ रवि	१०	२६ मंगल	११	२६ शुक्र	१२
२७ सोम	११	२७ बुध	...	२७ शनि	१३
२८ मंगल	१२	२८ बृहस्पति	१२	२८ रवि	१४
२९ बुध	१३	२९ शुक्र	१३	२९ सोम	पूर्णिमा
३० बृहस्पति	१४	३० शनि	१४	३० मंगल	आषाढ कृष्णा १
		३१ रवि	पूर्णिमा		

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा ।

२. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा ।

३. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा ।

सन् १८७४ वि० १९३१

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	बुध	आषाढ कृष्णा २	१	शनि	श्रावण[1] कृष्णा ४	१	मंगल	भाद्र कृष्णा ५,६
२	बृहस्पति	(अधिक) ३	२	रवि	५	२	बुध	७
३	शुक्र	४	३	सोम	६	३	बृहस्पति	८
४	शनि	५	४	मंगल	७	४	शुक्र	९
५	रवि	६	५	बुध	८	५	शनि	१०
६	सोम	७	६	बृहस्पति	९	६	रवि	११
७	मंगल	८	७	शुक्र	१०	७	सोम	१२
८	बुध	९, १०	८	शनि	११	८	मंगल	१३
९	बृहस्पति	११	९	रवि	१२	९	बुध	१४
१०	शुक्र	१२	१०	सोम	१३	१०	बृहस्पति	अमावस्या
११	शनि	१३	११	मंगल	१४	११	शुक्र	भाद्र शुक्ला १
१२	रवि	१४	१२	बुध	अमावस्या	१२	शनि	२
१३	सोम	अमावस्या	१३	बृहस्पति	श्रा० शुक्ला १	१३	रवि	३
१४	मंगल	आषाढ शुक्ला १	१४	शुक्र	२	१४	सोम	४
१५	बुध	२	१५	शनि	३	१५	मंगल	...
१६	बृहस्पति	३	१६	रवि	४	१६	बुध	५
१७	शुक्र	४	१७	सोम	५	१७	बृहस्पति	६
१८	शनि	५	१८	मंगल	६	१८	शुक्र	७
१९	रवि	६	१९	बुध	७	१९	शनि	८
२०	सोम	७	२०	बृहस्पति	८	२०	रवि	९
२१	मंगल	८	२१	शुक्र	९	२१	सोम	१०
२२	बुध	...	२२	शनि	१०	२२	मंगल	११
२३	बृहस्पति	९	२३	रवि	११	२३	बुध	१२
२४	शुक्र	१०	२४	सोम	१२	२४	बृहस्पति	१३,१४
२५	शनि	११	२५	मंगल	१३	२५	शुक्र	पूर्णिमा
२६	रवि	१२	२६	बुध	१४	२६	शनि	आश्विन[3] कृष्णा १
२७	सोम	१३	२७	बृहस्पति	पूर्णिमा	२७	रवि	२
२८	मंगल	१४	२८	शुक्र	भाद्र[2] कृष्णा १	२८	सोम	३
२९	बुध	पूर्णिमा	२९	शनि	२	२९	मंगल	४
३०	बृह०	श्रावण[1] कृष्णा १	३०	रवि	३	३०	बुध	५
३१	शुक्र	२,३	३१	सोम	४			

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।

सन् १८७४ वि० १९३१

अक्तूबर

तारीख	वार	तिथि
१	बृहस्पति	आश्विन[1] कृष्णा ६
२	शुक्र	७
३	शनि	८
४	रवि	९
५	सोम	१०
६	मंगल	११
७	बुध	२२
८	बृहस्पति	१३
९	शुक्र	१४
१०	शनि	अमावस्या
११	रवि	आश्विन शुक्ला १
१२	सोम	२
१३	मंगल	३
१४	बुध	४
१५	बृहस्पति	५
१६	शुक्र	६
१७	शनि	७
१८	रवि	८
१९	सोम	९
२०	मंगल	१०
२१	बुध	११
२२	बृहस्पति	१२
२३	शुक्र	१३
२४	शनि	१४
२५	रवि	पूर्णिमा
२६	सोम	कार्त्तिक कृष्णा[2] १
२७	मंगल	२,३
२८	बुध	४
२९	बृहस्पति	५
३०	शुक्र	६
३१	शनि	७

नवम्बर

तारीख	वार	तिथि
१	रवि	कार्त्तिक कृष्णा ८
२	सोम	९
३	मंगल	१०
४	बुध	११
५	बृहस्पति	१२
६	शुक्र	१३
७	शनि	...
८	रवि	१४
९	सोम	अमावस्या
१०	मंगल	कार्त्तिक शुक्ला १
११	बुध	२
१२	बृहस्पति	३
१३	शुक्र	४
१४	शनि	५
१५	रवि	६
१६	सोम	७
१७	मंगल	८
१८	बुध	९
१९	बृहस्पति	१०
२०	शुक्र	११, १२
२१	शनि	१३
२२	रवि	१४
२३	सोम	पूर्णिमा
२४	मंगल	मार्ग०[3] कृष्णा १
२५	बुध	२
२६	बृहस्पति	३
२७	शुक्र	४
२८	शनि	५
२९	रवि	६
३०	सोम	७

दिसम्बर

तारीख	वार	तिथि
१	मंगल	मार्ग० कृष्णा ८
२	बुध	९
३	बृहस्पति	१०
४	शुक्र	११
५	शनि	१२
६	रवि	१३
७	सोम	१४
८	मंगल	अमावस्या
९	बुध	मार्ग० शुक्ला १
१०	बृहस्पति	...
११	शुक्र	२
१२	शनि	३
१३	रवि	४,५
१४	सोम	६
१५	मंगल	७
१६	बुध	८
१७	बृहस्पति	९
१८	शुक्र	१०
१९	शनि	११
२०	रवि	१२
२१	सोम	१३
२२	मंगल	१४
२३	बुध	पूर्णिमा
२४	बृहस्पति	पौष[4] कृष्णा १
२५	शुक्र	२
२६	शनि	३
२७	रवि	४
२८	सोम	५
२९	मंगल	६
३०	बुध	७
३१	बृहस्पति	८

१. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती कार्त्तिक कृष्णा ।
४. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा ।

सन् १८७५ वि० १९३१

जनवरी

तारीख	वार	तिथि
१	शुक्र	पौष[1] कृष्णा ९
२	शनि	१०
३	रवि	११
४	सोम	१२
५	मंगल	१३
६	बुध	१४
७	बृहस्पति	अमावस्या
८	शुक्र	पौष शुक्ला १
९	शनि	२
१०	रवि	३
११	सोम	४
१२	मंगल	५
१३	बुध	६
१४	बृहस्पति	७
१५	शुक्र	८
१६	शनि	९
१७	रवि	१०,११
१८	सोम	१२
१९	मंगल	१३
२०	बुध	१४
२१	बृहस्पति	पूर्णिमा
२२	शुक्र	माघ[2] कृष्णा १
२३	शनि	२
२४	रवि	३
२५	सोम	४
२६	मंगल	५
२७	बुध	६
२८	बृहस्पति	७
२९	शुक्र	...
३०	शनि	८
३१	रवि	९

फरवरी

तारीख	वार	तिथि
१	सोम	माघ कृष्णा १०
२	मंगल	११
३	बुध	१२
४	बृहस्पति	१३
५	शुक्र	१४
६	शनि	अमावस्या
७	रवि	माघ शुक्ल १
८	सोम	२
९	मंगल	३
१०	बुध	४,५
११	बृहस्पति	६
१२	शुक्र	७
१३	शनि	८
१४	रवि	९
१५	सोम	१०
१६	मंगल	११
१७	बुध	१२
१८	बृहस्पति	१३
१९	शुक्र	१४
२०	शनि	पूर्णिमा
२१	रवि	फाल्गुन[3] कृष्णा १
२२	सोम	२
२३	मंगल	३
२४	बुध	४
२५	बृहस्पति	५
२६	शुक्र	६
२७	शनि	७
२८	रवि	८

मार्च

तारीख	वार	तिथि
१	सोम	फाल्गुन कृष्णा ९
२	मंगल	१०
३	बुध	११
४	बृहस्पति	१२
५	शुक्र	१३
६	शनि	१४
७	रवि	अमावस्या
८	सोम	फाल्गुन शुक्ला १
९	मंगल	२
१०	बुध	३
११	बृहस्पति	४
१२	शुक्र	५
१३	शनि	६
१४	रवि	७
१५	सोम	८
१६	मंगल	९,१०
१७	बुध	११
१८	बृहस्पति	१२
१९	शुक्र	१३
२०	शनि	१४
२१	रवि	पूर्णिमा
२२	सोम	चैत्र[4] कृष्णा १
२३	मंगल	...
२४	बुध	२
२५	बृहस्पति	३
२६	शुक्र	४
२७	शनि	५
२८	रवि	६
२९	सोम	७
३०	मंगल	८
३१	बुध	९

१. दक्षिणी गुजराती मार्ग० कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

सन् १८७५ वि० १९३२

अप्रैल		मई		जून	
१ बृहस्पति चैत्र[1] कृष्णा	१०	१ शनि वैशाख कृष्णा	११	१ मंगल ज्येष्ठ कृष्णा	१२
२ शुक्र	११	२ रवि	१२	२ बुध	१३,१४
३ शनि	१३	३ सोम	१३	३ बृहस्पति	अमावस्या
४ रवि	१४	४ मंगल	१४	४ शुक्र ज्येष्ठ शुक्ला	१
५ सोम	१४	५ बुध	अमावस्या	५ शनि	२
६ मंगल	अमावस्या	६ बृहस्पति वैशाख शुक्ला	१	६ रवि	३
७ बुध चैत्र शुक्ला	१	७ शुक्र	२	७ सोम	४
८ बृहस्पति १९३२	२,३	८ शनि	३	८ मंगल	५
९ शुक्र	४	९ रवि	४	९ बुध	६
१० शनि	५	१० सोम	५	१० बृहस्पति	७
११ रवि	६	११ मंगल	६	११ शुक्र	८
१२ सोम	७	१२ बुध	७,८	१२ शनि	९
१३ मंगल	८	१३ बृहस्पति	९	१३ रवि	१०
१४ बुध	९	१४ शुक्र	१०	१४ सोम	११
१५ बृहस्पति	१०	१५ शनि	११	१५ मंगल	१२
१६ शुक्र	११	१६ रवि	...	१६ बुध	१३
१७ शनि	१२	१७ सोम	१२	१७ बृहस्पति	१४
१८ रवि	१३	१८ मँगल	१३	१८ शुक्र	पूर्णिमा
१९ सोम	१४	१९ बुध	१४	१९ शनि आषाढ़[4] कृष्णा	१
२० मंगल	पूर्णिमा	२० बृहस्पति	पूर्णिमा	२० रवि	...
२१ बुध वैशाख[2] कृष्णा	१	२१ शुक्र ज्येष्ठ[3] कृष्णा	१	२१ सोम	२
२२ बृहस्पति	२	२२ शनि	२	२२ मंगल	३
२३ शुक्र	३	२३ रवि	३	२३ बुध	४
२४ शनि	४	२४ सोम	४	२४ बृहस्पति	५,६
२५ रवि	५	२५ मंगल	५	२५ शुक्र	७
२६ सोम	...	२६ बुध	६	२६ शनि	८
२६ मंगल	६	२७ बृहस्पति	७	२७ रवि	९
२८ बुध	७	२८ शुक्र	८	२८ सोम	१०
२९ बृहस्पति	८	२९ शनि	९	२९ मंगल	११
३० शुक्र	९,१०	३० रवि	१०	३० बुध	१२
		३१ सोम	११		

१. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

२. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।

४. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८७५ — वि० १९३२

जुलाई		अगस्त		सितम्बर	
१ बृह० आषाढ़[1] कृष्णा	१३	१ रवि श्रावण कृष्णा	अमावस्या	१ बुध भाद्र शुक्ला	२
२ शुक्र	१४	२ सोम श्रावण शुक्ला	१	२ बृहस्पति	३
३ शनि	अमावस्या	३ मंगल	२	३ शुक्र	...
४ रवि आषाढ शुक्ला	१	४ बुध	३	४ शनि	४
५ सोम	२,३	५ बृहस्पति	४	५ रवि	५
६ मंगल	४	६ शुक्र	५	६ सोम	६
७ बुध	५	७ शनि	६	७ मंगल	७
८ बृहस्पति	६	८ रवि	७	८ बुध	८
९ शुक्र	७	९ सोम	८	९ बृहस्पति	९
१० शनि	...	१० मंगल	९	१० शुक्र	१०
११ रवि	८	११ बुध	१०	११ शनि	११
१२ सोम	९	१२ बृहस्पति	११	१२ रवि	१२
१३ मंगल	१०	१३ शुक्र	१२	१३ सोम	१३
१४ बुध	११	१४ शनि	१३	१४ मंगल	१४
१५ बृहस्पति	१२	१५ रवि	...	१५ बुध	पूर्णिमा
१६ शुक्र	१३	१६ सोम	१४	१६ बृहस्पति आश्विन[4] कृष्णा	१
१७ शनि	१४	१७ मंगल भाद्र[3] पूर्णिमा	१	१७ शुक्र	२
१८ रवि	पूर्णिमा	१८ बुध	२	१८ शनि	३
१९ सोम श्रावण[2] कृष्णा	१	१९ बृहस्पति	३	१९ रवि	४
२० मंगल	२	२० शुक्र	४	२० सोम	५,६
२१ बुध	३	२१ शनि	५	२१ मंगल	७
२२ बृहस्पति	४	२२ रवि	६	२२ बुध	८
२३ शुक्र	५	२३ सोम	७	२३ बृहस्पति	९
२४ शनि	६	२४ मंगल	८	२४ शुक्र	१०
२५ रवि	७	२५ बुध	९	२५ शनि	११
२६ सोम	८	२६ बृहस्पति	१०	२६ रवि	१२
२७ मंगल	९,१०	२७ शुक्र	११	२७ सोम	१३
२८ बुध	११	२८ शनि	१२	२८ मंगल	१४
२९ बृहस्पति	१२	२९ रवि	१३,१४	२९ बुध	अमावस्या
३० शुक्र	१३	३० सोम	अमावस्या	३० बृहस्पति आश्विन शुक्ला	१
३१ शनि	१४	३१ मंगल	१		

१. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती आषाढ़ कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा। ४. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८७५ — वि० १९३२

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ शुक्र आश्विन शुक्ला	२	१ सोम कार्तिक शुक्ला	३	१ बुध मार्ग० शुक्ला	३
२ शनि	३	२ मंगल	४	२ बृहस्पति	४
३ रवि	४	३ बुध	५	३ शुक्र	५
४ सोम	५	४ बृहस्पति	६	४ शनि	६
५ मंगल	६	५ शुक्र	७	५ रवि	७
६ बुध	७	६ शनि	८	६ सोम	८
७ बृहस्पति	...	७ रवि	९	७ मंगल	९
८ शुक्र	९	८ सोम	१०	८ बुध	१०
९ शनि	९	९ मंगल	११	९ बृहस्पति	११
१० रवि	१०	१० बुध	१२	१० शुक्र	११,१३
११ सोम	११	११ बृहस्पति	१३	११ शनि	१४
१२ मंगल	१३	१२ शुक्र	१४	१२ रवि	पूर्णिमा
१३ बुध	१३	१३ शनि	पूर्णिमा	१३ सोम पौष[3] कृष्णा	१
१४ बृहस्पति	पूर्णिमा	१४ रवि मार्गशीर्ष[2] कृष्णा	१	१४ मंगल	२
१५ शुक्र कार्त्तिक[1] कृष्णा	१	१५ सोम	२	१५ बुध	३
१६ शनि	२	१६ मंगल	३,४	१६ बृहस्पति	४
१७ रवि	३	१७ बुध	५	१७ शुक्र	५
१८ सोम	४	१८ बृहस्पति	६	१८ शनि	६
१९ मंगल	५	१९ शुक्र	७	१९ रवि	७
२० बुध	६	२० शनि	८	२० सोम	८
२१ बृहस्पति	७	२१ रवि	९	२१ मंगल	९
२२ शुक्र	८	२२ सोम	१०	२२ बुध	१०
२३ शनि	९	२३ मंगल	११	२३ बृहस्पति	११
२४ रवि	२०	२४ बुध	१२	२४ शुक्र	१२
२५ सोम	११	२५ बृहस्पति	१३	२५ शनि	१३
२६ मंगल	१२	२६ शुक्र	१४	२६ रवि	१४
२७ बुध	१३	२७ शनि	अमावस्या	२७ सोम	अमावस्या
२८ बृहस्पति	१४	२८ रवि मार्गशीर्ष शुक्ला	१	२८ मंगल पौष शुक्ला	१
२९ शुक्र	अमावस्या	२९ सोम	...	२९ बुध	२
३० शनि कार्त्तिक शुक्ला	१	३० मंगल	२	३० बृहस्पति	३
३१ रवि	२			३१ शुक्र	४

१. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती कार्त्तिक कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

सन् १८७६ वि० १९३२, ३३

जनवरी			फरवरी			मार्च		
१	शनि	पौष शुक्ला ५	१	मंगल	माघ शुक्ला ६	१	बुध	फाल्गुन शुक्ला ५,६
२	रवि	६	२	बुध	७	२	बृहस्पति	७
३	सोम	७	३	बृहस्पति	८	३	शुक्र	८
४	मंगल	८	४	शुक्र	९	४	शनि	९
५	बुध	९	५	शनि	१०	५	रवि	१०
६	बृहस्पति	१०	६	रवि	११,१२	६	सोम	११
७	शुक्र	११	७	सोम	१३	७	मंगल	१२
८	शनि	१२	८	मंगल	१४	८	बुध	१३
९	रवि	१३	९	बुध	पूर्णिमा	९	बृहस्पति	१४
१०	सोम	१४	१०	बृहस्पति	फाल्गुन[2] कृ० १	१०	शुक्र	पूर्णिमा
११	मंगल	पूर्णिमा	११	शुक्र	२	११	शनि	चैत्र[3] कृष्णा १
१२	बुध	माघ[1] कृष्णा १	१२	शनि	३	१२	रवि	२
१३	बृहस्पति	२	१३	रवि	४	१३	सोम	३
१४	शुक्र	३,४	१४	सोम	५	१४	मंगल	४
१५	शनि	५	१५	मंगल	६	१५	बुध	५
१६	रवि	६	१६	बुध	७	१६	बृहस्पति	६
१७	सोम	७	१७	बृहस्पति	८	१७	शुक्र	७
१८	मंगल	...	१८	शुक्र	९	१८	शनि	८
१९	बुध	८	१९	शनि	१०	१९	रवि	९
२०	बृहस्पति	९	२०	रवि	...	२०	सोम	१०
२१	शुक्र	१०	२१	सोम	११	२१	मंगल	११
२२	शनि	११	२२	मंगल	१२	२२	बुध	१२
२३	रवि	१२	२३	बुध	१३	२३	बृहस्पति	१३
२४	सोम	१३	२४	बृहस्पति	१४	२४	शुक्र	१४
२५	मंगल	१४	२५	शुक्र	अमावस्या	२५	शनि	अमावस्या
२६	बुध	अमावस्या	२६	शनि	फाल्गुन शुक्ला १	२६	रवि	चैत्र शुक्ला १
२७	बृहस्पति	माघ शुक्ला १	२७	रवि	२	२७	सोम	१९३३ २
२८	शुक्र	२	२८	सोम	३	२८	मंगल	३
२९	शनि	३	२९	मंगल	४	२९	बुध	४
३०	रवि	४				३०	बृहस्पति	५
३१	सोम	५				३१	शुक्र	६

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

सन् १८७६　　　　　　　　　　　　　　　　वि० १९३३

अप्रैल

तारीख	वार	मास	तिथि
१	शनि	चैत्र शुक्ला	७
२	रवि		८
३	सोम		९,१०
४	मंगल		११
५	बुध		१२
६	बृहस्पति		१३
७	शुक्र		१४
८	शनि		पूर्णिमा
९	रवि	वैशाख[1] कृष्णा	१
१०	सोम		२
११	मंगल		३
१२	बुध		४
१३	बृहस्पति		...
१४	शुक्र		५
१५	शनि		६
१६	रवि		७
१७	सोम		८
१८	मंगल		९
१९	बुध		१०
२०	बृहस्पति		११
२१	शुक्र		१२
२२	शनि		१३
२३	रवि		१४
२४	सोम		अमावस्या
२५	मंगल	वैशाख शुक्ला	१
२६	बुध		२
२७	बृहस्पति		३,४
२८	शुक्र		५
२९	शनि		६
३०	रवि		७

मई

तारीख	वार	मास	तिथि
१	सोम	वैशाख शु०	८
२	मंगल		९
३	बुध		१०
४	बृहस्पति		११
५	शुक्र		१२
६	शनि		१३
७	रवि		१४
८	सोम		पूर्णिमा
९	मंगल	ज्येष्ठ[2] कृष्णा	१
१०	बुध		२
११	बृहस्पति		३
१२	शुक्र		४
१३	शनि		५
१४	रवि		६
१५	सोम		७
१६	मंगल		८
१७	बुध		९
१८	बृहस्पति		१०
१९	शुक्र		११
२०	शनि		१२
२१	रवि		१३
२२	सोम		१४
२३	मंगल		अमावस्या
२४	बुध	ज्येष्ठ शुक्ला	१
२५	बृहस्पति		२
२६	शुक्र		३
२७	शनि		४
२८	रवि		५
२९	सोम		६,७
३०	मंगल		८
३१	बुध		९

जून

तारीख	वार	मास	तिथि
१	बृह०	येज्ष्ठ शुक्ला	१०
२	शुक्र		११
३	शनि		१२
४	रवि		१३
५	सोम		१४
६	मंगल।		पूर्णिमा
७	बुध		...
८	बृह०	आषाढ[3] कृष्णा	१
९	शुक्र		२
१०	शनि		३
११	रवि		४
१२	सोम		५
१३	मंगल		६
१४	बुध		७
१५	बृहस्पति		८
१६	शुक्र		९
१७	शनि		१०
१८	रवि		११
१९	सोम		१२
२०	मंगल		१३,१४
२१	बुध		अमावस्या
२२	बृहस्पति	आषाढ शुक्ला	१
२३	शुक्र		२
२४	शनि		३
२५	रवि		४
२६	सोम		५
२७	मंगल		६
२८	बुध		७
२९	बृहस्पति		८
३०	शुक्र		९

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।　　२. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८७६ — वि० १९३३

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	शनि	आषाढ शुक्ला १०	१	मंगल	श्रावण शुक्ला १२	१	शुक्र	भाद्र शुक्ला १३
२	रवि	११	२	बुध	—	२	शनि	१४
३	सोम	१२	३	बृहस्पति	१३	३	रवि	पूर्णिमा
४	मंगल	१३	४	शुक्र	१४	४	सोम	आश्विन[3] कृष्णा १
५	बुध	१४	५	शनि	पूर्णिमा	५	मंगल	२
६	बृहस्पति	पूर्णिमा	६	रवि	भाद्र[2] कृष्णा १	६	बुध	३
७	शुक्र	श्रावण[1] कृष्णा १	७	सोम	२	७	बृहस्पति	४
८	शनि	२	८	मंगल	३	८	शुक्र	५
९	रवि	३	९	बुध	४	९	शनि	६
१०	सोम	४	१०	बृहस्पति	५	१०	रवि	७
११	मंगल	५	११	शुक्र	६	११	सोम	८
१२	बुध	६	१२	शनि	७	१२	मंगल	९
१३	बृहस्पति	७	१३	रवि	८	१३	बुध	१०
१४	शुक्र	८	१४	सोम	९, १०	१४	बृहस्पति	११
१५	शनि	९	१५	मंगल	११	१५	शुक्र	१२
१६	रवि	१०	१६	बुध	१२	१६	शनि	१३, १४
१७	सोम	११	१७	बृहस्पति	१३	१७	रवि	अमावस्या
१८	मंगल	१२	१८	शुक्र	१४	१८	सोम	आश्विन शुक्ला १
१९	बुध	१३	१९	शनि	अमावस्या	१९	मंगल	२
२०	बृहस्पति	१४	२०	रवि	भाद्र शुक्ला १	२०	बुध	३
२१	शुक्र	अमावस्या	२१	सोम	२	२१	बृहस्पति	४
२२	शनि	१, २	२२	मंगल	३	२२	शुक्र	५
२३	रवि	३	२३	बुध	४	२३	शनि	६
२४	सोम	४	२४	बृहस्पति	५	२४	रवि	७
२५	मंगल	५	२५	शुक्र	६	२५	सोम	८
२६	बुध	६	२६	शनि	७	२६	मंगल	...
२७	बृहस्पति	७	२७	रवि	८	२७	बुध	९
२८	शुक्र	८	२८	सोम	९	२८	बृहस्पति	१०
२९	शनि	९	२९	मंगल	१०	२९	शुक्र	११
३०	रवि	१०	३०	बुध	११	३०	शनि	१२
३१	सोम	११	३१	बृहस्हति	१२			

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ़ कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।

सन् १८७६ | वि० १९३३

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ रवि	आश्विन शुक्ला १३	१ बुध	कार्तिक पूर्णिमा	१ शुक्र	मार्गशीर्ष पूर्णिमा
२ सोम	१४	२ बृह०	मार्गशीर्ष[2] कृष्णा १	२ शनि	पौष[3] कृष्णा १
३ मंगल	पूर्णिमा	३ शुक्र	२	३ रवि	२
४ बुध	कार्तिक[1] कृष्णा १	४ शनि	३	४ सोम	३
५ बृहस्पति	२	५ रवि	४	५ मंगल	४,५
६ शुक्र	३	६ सोम	५	६ बुध	६
७ शनि	४	७ मंगल	६	७ बृहस्पति	७
८ रवि	५	८ बुध	७	८ शुक्र	८
९ सोम	६,७	९ बृहस्पति	८	९ शनि	९
१० मंगल	८	१० शुक्र	९	१० रवि	१०
११ बुध	९	११ शनि	१०	११ सोम	११
१२ बृहस्पति	१०	१२ रवि	११,१२	१२ मंगल	१२
१३ शुक्र	११	१३ सोम	१३	१३ बुध	१३
१४ शनि	१२	१४ मंगल	१४	१४ बृहस्पति	१४
१५ रवि	१३	१५ बुध	अमावस्या	१५ शुक्र	अमावस्या
१६ सोम	१४	१६ बृहस्पति	मार्गशीर्ष शुक्ला १	१६ शनि	पौष शुक्ला १
१७ मंगल	अमावस्या	१७ शुक्र	...	१७ रवि	२
१८ बुध	कार्तिक शुक्ला १	१८ शनि	२	१८ सोम	३
१९ बृहस्पति	२	१९ रवि	३	१९ मंगल	...
२० शुक्र	३	२० सोम	४	२० बुध	४
२१ शनि	४	२१ मंगल	५	२१ बृहस्पति	५
२२ रवि	५	२२ बुध	६	२२ शुक्र	६
२३ सोम	६	२३ बृहस्पति	७	२३ शनि	७
२४ मंगल	७	२४ शुक्र	८	२४ रवि	८
२५ बुध	८	२५ शनि	९	२५ सोम	९
२६ बृहस्पति	९	२६ रवि	१०	२६ मंगल	१०
२७ शुक्र	१०	२७ सोम	११	२७ बुध	११
२८ शनि	११	२८ मंगल	१२	२८ बृहस्पति	१२
२९ रवि	१२	२९ बुध	१३	२९ शुक्र	१३,१४
३० सोम	१३	३० बृहस्पति	१४	३० शनि	पूर्णिमा
३१ मंगल	१४			३१ रवि	माघ[4] कृष्णा १

१. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा।

सन् १८७७   वि० १९३३, ३४

जनवरी			फरवरी			मार्च		
१	सोम माघ[1] कृष्णा	२	१	बृहस्पति फाल्गुन[3] कृष्णा	३,४	१	बृहस्पति चैत्र[3] कृष्णा	२
२	मंगल	३	२	शुक्र	५	२	शुक्र	३
३	बुध	४	३	शनि	६	३	शनि	४
४	बृहस्पति	५	४	रवि	७	४	रवि	५
५	शुक्र	६	५	सोम	८	५	सोम	६
६	शनि	७	६	मंगल	९	६	मंगल	७
७	रवि	८	७	बुध	१०	७	बुध	८
८	सोम	९	८	बृहस्पति	११	८	बृहस्पति	९
९	मंगल	१०	९	बुध	...	९	शुक्र	०१
१०	बुध	११	१०	शनि	१२	१०	शनि	११
११	बृहस्पति	१२	११	रवि	१३	११	रवि	१२
१२	शुक्र	१३	१२	सोम	१४	१२	सोम	१३
१३	शनि	१४	१३	मंगल	अमास्या	१३	मंगल	...
१४	रवि	अमावस्या	१४	बुध फाल्गुन शुक्ला	१	१४	बुध	१४
१५	सोम माघ शुक्ला	१	१५	बृहस्पति	२	१५	बृहस्पति	अमावस्या
१६	मंगल	२	१६	शुक्र	३	१६	शुक्र चैत्र शुक्ला	१
१७	बुध	३	१७	शनि	४	१७	शनि १९३४	२
१८	बृहस्पति	४	१८	रवि	५	१८	रवि	३
१९	शुक्र	५	१९	सोम	६	१९	सोम	४
२०	शनि	६	२०	मंगल	७	२०	मंगल	५
२१	रवि	७	२१	बुध	८	२१	बुध	६,७
२२	सोम	८	२२	बृहस्पति	९	२२	बृहस्पति	८
२३	मंगल	९	२३	शुक्र	१०	२३	शुक्र	९
२४	बुध	१०	२५	शनि	११	२४	शनि	१०
२५	बृहस्पति	११	२५	रवि	१२,१३	२५	रवि	११
२६	शुक्र	१२	२६	सोम	१४	२६	सोम	१२
२७	शनि	१३	२७	मंगल	पूर्णिमा	२७	मंगल	१३
२८	रवि	१४	२८	बुध चैत्र[3] कृष्णा	१	२८	बुध	१४
२९	सोम	पूर्णिमा				२९	बृहस्पति	पूर्णिमा
३०	मंगल फाल्गुन[2] कृष्णा	१				३०	शुक्र वैशाख[4] कृष्णा	१
३१	बुध	२				३१	शनि	२

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा ।
४. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा ।

सन् १८७७ वि० १९३४

अप्रैल			मई			जून		
१	रवि	वैशाख[1] कृष्णा ३	१	मंगल	ज्येष्ठ[2] कृष्ण ४	१	शुक्र	ज्येष्ठ कृष्णा ५
२	सोम	४	२	बुध	५	२	शनि	६
३	मंगल	५	३	बृहस्पति	६	३	रवि	७
४	बुध	६	४	शुक्र	७	४	सोम	८
५	बृहस्पति	७	५	शनि	८	५	मंगल	९
६	शुक्र	८	६	रवि	...	६	बुध	१०
७	शनि	९	७	सोम	९	७	बृहस्पति	११
८	रवि	१०	८	मंगल	१०	८	शुक्र	१२
९	सोम	११	९	बुध	११	९	शनि	१३
१०	मंगल	१२	१०	बृहस्पति	१२	१०	रवि	१४
११	बुध	१३	११	शुक्र	१३	११	सोम	अमावस्या
१२	बृहस्पति	१४	१२	शनि	१४	१२	मंगल	ज्येष्ठ शुक्ला १
१३	शुक्र	अमावस्या	१३	रवि	अमावस्या	१३	बुध	२
१४	शनि	वैशाख कृष्णा १	१४	सोम	ज्येष्ठ शुक्ला १	१४	बृहस्पति	३
१५	रवि	२	१५	मँगल	(अधिक) २,३	१५	शुक्र	४
१६	सोम	३	१६	बुध	४	१६	शनि	५
१७	मंगल	४	१७	बृहस्पति	५	१७	रवि	६,७
१८	बुध	५	१८	शुक्र	६	१८	सोम	८
१९	बृहस्पति	६	१९	शनि	७	१९	मंगल	९
२०	शुक्र	७	२०	रवि	८	२०	बुध	१०
२१	शनि	८	२१	सोम	९	२१	बृहस्पति	११
२२	रवि	९	२२	मंगल	१०	२२	शुक्र	१२
२३	सोम	१०,११	२३	बुध	११	२३	शनि	१३
२४	मंगल	१२	२४	बृहस्पति	१२	२४	रवि	१४
२५	बुध	१३	२५	शुक्र	१३	२५	सोम	पूर्णिमा
२६	बृहस्पति	१४	२६	शनि	१४	२६	मंगल	आषाढ़[3] कृष्णा १
२७	शुक्र	पूर्णिमा	२७	रवि	पूर्णिमा	२७	बुध	२
२८	शनि	ज्येष्ठ[2] कृष्णा १	२८	सोम	ज्येष्ठ कृष्णा १	२८	बुध	३
२९	रवि	२	२९	मंगल	(अधिक) २	२९	बृहस्पति	४
३०	सोम	३	३०	बुध	३	३०	शुक्र	५
			३१	बृहस्पति	४			

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।
३ दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८७७ वि० १९३४

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	रवि	आषाढ[1] कृष्णा ५	१	बुध	श्रावण[1] कृष्णा ७	१	शनि	भाद्र कृष्णा[3] ८
२	सोम	६	२	बृहस्पति	८	२	रवि	९,१०
३	मंगल	७	३	शुक्र	९	३	सोम	११
४	बुध	८	४	शनि	१०	४	मंगल	१२
५	बृहस्पति	९	५	रवि	११	५	बुध	१३
६	शुक्र	१०	६	सोम	१२	६	बृहस्पति	१४
७	शनि	११	७	मंगल	१३	७	शुक्र	अमावस्या
८	रवि	१२	८	बुध	१४	८	शनि	भाद्र शुक्ला १
९	सोम	१३,१४	९	बृहस्पति	अमावस्या	९	रवि	२
१०	मंगल	अमावस्या	१०	शुक्र	श्रावण शुक्ला १,२	१०	सोम	३
११	बुध	आषाढ शुक्ला १	११	शनि	३	११	मंगल	४
१२	बृहस्पति	२	१२	रवि	४	१२	बुध	५
१३	शुक्र	३	१३	सोम	५	१३	बृहस्पति	६
१४	शनि	४	१४	मंगल	६	१४	शुक्र	७
१५	रवि	५	१५	बुध	७	१५	शनि	८
१६	सोम	६	१६	बृहस्पति	८	१६	रवि	९
१७	मंगल	७	१७	शुक्र	९	१७	सोम	१०
१८	बुध	८	१८	शनि	१०	१८	मंगल	११
१९	बृहस्पति	९	१९	रवि	११	१९	बुध	१२
२०	शुक्र	१०	२०	सोम	१२	२०	बृहस्पति	१३
२१	शनि	११	२१	मंगल	१३	२१	शुक्र	१४
२२	रवि	१२	२२	बुध	१४	२२	शनि	पूर्णिमा
२३	सोम	१३	२३	बृहस्पति	पूर्णिमा	२३	रवि	आश्विन[4] कृष्णा १
२४	मंगल	१४	२४	शुक्र	भाद्र[3] कृष्णा १	२४	सोम	२
२५	बुध	पूर्णिमा	२५	शनि	...	२५	मंगल	३
२६	बृह०	श्रावण[1] कृष्णा १	२६	रवि	२	२६	बुध	४
२७	शुक्र	२	२७	सोम	३	२७	बृहस्पति	५
२८	शनि	३	२८	मंगल	४	२८	शुक्र	६
२९	रवि	४	२९	बुध	५	२९	शनि	७
३०	सोम	५	३०	बृहस्पति	६	३०	रवि	८
३१	मंगल	६	३१	शुक्र	७			

१. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती आषाढ कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८७७ वि० १९३४

अक्तूबर			नवम्बर			दिसम्बर		
१	सोम	आश्विन[1] कृष्णा ९	१	बृह०	कार्तिक कृष्णा ११	१	शनि	मार्ग०कृ० ११,१२
२	मंगल	१०	२	शुक्र	१२	२	रवि	१३
३	बुध	११	३	शनि	१३	३	सोम	१४
४	बृहस्पति	१२	४	रवि	१४	४	मंगल	अमावस्या
५	शुक्र	१३,१४	५	सोम	अमावस्या	५	बुध	मार्गशीर्ष शुक्ला १
६	शनि	अमावस्या	६	मंगल	कार्तिक शुक्ला १	६	बृहस्पति	२
७	रवि	आश्विन शुक्ला १	७	बुध	२	७	शुक्र	३
८	सोम	२	८	बृहस्पति	३	८	शनि	४
९	मंगल	३	९	शुक्र	४	९	रवि	...
१०	बुध	४	१०	शनि	५	१०	सोम	५
११	बृहस्पति	५	११	रवि	६	११	मंगल	६
१२	शुक्र	६	१२	सोम	७	१२	बुध	७
१३	शनि	७	१३	मंगल	८	१३	बृहस्पति	८
१४	रवि	८	१४	बुध	९	१४	शुक्र	९
१५	सोम	९	१५	बृहस्पति	१०	१५	शनि	१०
१६	मंगल	१०	१६	शुक्र	११	१६	रवि	११
१७	बुध	११	१७	शनि	११	१७	सोम	१२
१८	बृहस्पति	...	१८	रवि	१३	१८	मंगल	१३
१९	शुक्र	१२	१९	सोम	१४	१९	बुध	१४
२०	शनि	१३	२०	मंगल	पूर्णिमा	२०	बृहस्पति	पूर्णिमा
२१	रवि	१४	२१	बुध	मार्ग०[3] कृष्णा १	२१	शुक्र	पौष[4] कृष्णा १
२२	सोम	पूर्णिमा	२२	बृहस्पति	२	२२	शनि	२
२३	मंगल	कार्तिक[2] कृष्णा १	२३	शुक्र	३	२३	रवि	३
२४	बुध	२	२४	शनि	४	२४	सोम	४
२५	बृहस्पति	३	२५	रवि	५	२५	मंगल	५,६
२६	शुक्र	४	२६	सोम	६	२६	बुध	७
२७	शनि	५	२७	मंगल	७	२७	बृहस्पति	८
२८	रवि	६	२८	बुध	८	२५	शुक्र	९
२९	सोम	७,८	२९	बृहस्पति	९	२६	शनि	१०
३०	मंगल	९	३०	शुक्र	१०	३०	रवि	११
३१	बुध	१०				३१	सोम	१२

१. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा । २. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा ।

३. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा । ४. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा ।

सन् १८७८ — वि० १९३४

जनवरी			फरवरी			मार्च		
१	मंगल	पौष[1] कृष्णा १३	१	शुक्र	माघ कृष्णा १४	१	शुक्र	फाल्गुन कृष्णा १३
२	बुध	१४	२	शनि	अमावस्या	२	शनि	१४
३	बृहस्पति	अमावस्या	३	रवि	माघ शुक्ला १	३	रवि	...
४	शुक्र	१	४	सोम	२	४	सोम	अमावस्या
५	शनि	२	५	मंगल	३	५	मंगल	फाल्गुन शुक्ला १
६	रवि	३	६	बुध	४	६	बुध	२
७	सोम	४	७	बृहस्पति	५	७	बृहस्पति	३
८	मंगल	५	८	शुक्र	६	८	शुक्र	४
९	बुध	६	९	शनि	७	९	शनि	५
१०	बृहस्पति	---	१०	रवि	८	१०	रवि	६
११	शुक्र	७	११	सोम	९	११	सोम	७
१२	शनि	८	१२	मंगल	१०	१२	मंगल	८
१३	रवि	९	१३	बुध	११	१३	बुध	९
१४	सोम	१०	१४	बृहस्पति	१२	१४	बृहस्पति	१०
१५	मंगल	११	१५	शुक्र	१३	१५	शुक्र	११
१६	बुध	१२	१६	शनि	१४	१६	शनि	१२
१७	बृहस्पति	१३	१७	रवि	पूर्णिमा	१७	रवि	१३,१४
१८	शुक्र	१४, पूर्णिमा	१८	सोम	फाल्गुन[3] कृष्णा १	१८	सोम	पूर्णिमा
१९	शनि	माघ[2] कृष्णा १	१९	मंगल	२	१९	मंगल	चैत्र[4] कृष्णा १
२०	रवि	२	२०	बुध	३	२०	बुध	२
२१	सोम	३	२१	बृहस्पति	४,५	२१	बृहस्पति	३
२२	मंगल	४	२२	शुक्र	६	२२	शुक्र	४
२३	बुध	५	२३	शनि	७	२३	शनि	५
२४	बृहस्पति	६	२४	रवि	८	२४	रवि	६
२५	शुक्र	७	२५	सोम	९	२५	सोम	७
२६	शनि	८	२६	मंगल	१०	२६	मंगल	८
२७	रवि	९	२७	बुध	११	२७	बुध	९
२८	सोम	१०	२८	बृहस्पति	१२	२८	बृहस्पति	१०
२९	मंगल	११				२९	शुक्र	११
३०	बुध	१२				३०	शनि	१२
३१	बृहस्पति	१३				३१	रवि	१३

१. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

सन् १८७८ — वि० १९३५

अप्रैल			मई			जून		
१	सोम	चैत्र[1] कृष्णा १४	१	बुध	वैशाख कृष्णा १४	१	शनि	ज्येष्ठ कृष्णा अमा०
२	मंगल	अमावस्या	२	बृहस्पति	अमावस्या	२	रवि	ज्येष्ठ शुक्ला १,२
३	बुध	चैत्र शु० १२३५ १	३	शुक्र	वैशाख शुक्ला १	३	सोम	३
४	बृहस्पति	२	४	शनि	२	४	मंगल	४
५	शुक्र	३	५	रवि	३	५	बुध	५
६	शनि	४	६	सोम	४	६	बृहस्पति	६
७	रवि	५	७	मंगल	५	७	शुक्र	७
८	सोम	६	८	बुध	६	८	शनि	८
९	मंगल	७	९	बृहस्पति	७	९	रवि	९
१०	बुध	८	१०	शुक्र	८	१०	सोम	१०
११	बृहस्पति	९	११	शनि	९	११	मंगल	११
१२	शुक्र	१०	१२	रवि	१०,११	१२	बुध	१२
१३	शनि	११	१३	सोम	१२	१३	बृहस्पति	१३,१४
१४	रवि	१२	१४	मंगल	१३	१४	शुक्र	पूर्णिमा
१५	सोम	१३	१५	बुध	१४	१५	शनि	आषाढ[4] कृष्णा १
१६	मंगल	१४	१६	बृहस्पति	पूर्णिमा	१६	रवि	२
१७	बुध	पूर्णिमा	१७	शुक्र	ज्येष्ठ[3] कृष्णा १	१७	सोम	३
१८	बृहस्पति	वैशाख[2] कृष्णा १	१८	शनि	२	१८	मंगल	४
१९	शुक्र	२,३	१९	रवि	३	१९	बुध	...
२०	शनि	४	२०	सोम	४	२०	बृहस्पति	५
२१	रवि	५	२१	मंगल	५	२१	शुक्र	६
२२	सोम	६	२२	बुध	६	२२	शनि	७
२३	मंगल	७	२३	बृहस्पति	७	२३	रवि	८
२४	बुध	८	२४	शुक्र	८	२४	सोम	९
२५	बृहस्पति	...	२५	शनि	९	२५	मंगल	१०
२६	शुक्र	९	२६	रवि	१०	२६	बुध	११
२७	शनि	१०	२७	सोम	११	२७	बृहस्पति	१२
२८	रवि	११	२८	मंगल	१२	२८	शुक्र	१३
२९	सोम	१२	२९	बुध	१३	२९	शनि	१४
३०	मंगल	१३	३०	बृह०	...	३०	रवि	अमावस्या
			३१	शुक्र	१४			

१. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८७८ | वि० १९३५

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	सोम	आषाढ शुक्ला १	१	बृहस्पति	श्रावण शुक्ला ३	१	रवि	भाद्र शुक्ला ५
२	मंगल	२	२	शुक्र	४	२	सोम	६
३	बुध	३	३	शनि	५	३	मंगल	७
४	बृहस्पति	४	४	रवि	६	४	बुध	८
५	शुक्र	५	५	सोम	७	५	बृहस्पति	९
६	शनि	६,७	६	मंगल	८	६	शुक्र	१०
७	रवि	८	७	बुध	९,१०	७	शनि	११
८	सोम	९	८	बृहस्पति	११	८	रवि	१२
९	मंगल	१०	९	शुक्र	१२	९	सोम	१३
१०	बुध	११	१०	शनि	१३	१०	मंगल	१४
११	बृहस्पति	१२	११	रवि	१४	११	बुध	पूर्णिमा
१२	शुक्र	१३	१२	सोम	पूर्णिमा	१२	बृहस्पति	आश्विन[3] कृष्णा १
१३	शनि	१४	१३	मंगल	भाद्र[2] कृष्णा १	१३	शुक्र	२
१४	रवि	पूर्णिमा	१४	बुध	...	१४	शनि	३
१५	सोम	श्रावण[1] कृष्णा १	१५	बृहस्पति	२	१५	रवि	४
१६	मंगल	२	१६	शुक्र	३	१६	सोम	५
१७	बुध	३	१७	शनि	४	१७	मंगल	६
१८	बृहस्पति	४	१८	रवि	५	१८	बुध	...
१९	शुक्र	५	१९	सोम	६	१९	बृहस्पति	७
२०	शनि	६	२०	मंगल	७	२०	शुक्र	८,९
२१	रवि	७	२१	बुध	८	२१	शनि	१०
२२	सोम	८	२२	बृहस्पति	९	२२	रवि	११
२३	मंगल	९	२३	शुक्र	१०	२३	सोम	१२
२४	बुध	१०	२४	शनि	११	२४	मंगल	१३
२५	बृहस्पति	११	२५	रवि	१२	२५	बुध	१४
२६	शुक्र	१२	२६	सोम	१३	२६	बृहस्पति	अमावस्या
२७	शनि	१३	२७	मंगल	१४	२७	शुक्र	आश्विन शुक्ला १
२८	रवि	१४	२८	बुध	अमावस्या	२८	शनि	२
२९	सोम	अमावस्या	२९	बृहस्पति	भाद्र शुक्ला १	२९	रवि	३
३०	मंगल	श्रावण शुक्ला १	३०	शुक्र	२, ३	३०	सोम	४
३१	बुध	२	३१	शनि	४			

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ कृष्णा।

२. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८७८ वि० १९३५

अक्तूबर			नवम्बर			दिसम्बर		
१	मंगल	आश्विन शुक्ला ५	१	शुक्र	कार्तिक शुक्ला ७	१	रवि	मार्गशीर्ष शुक्ला ७
२	बुध	६,७	२	शनि	८	२	सोम	८
३	बृहस्पति	८	३	रवि	९	३	मंगल	९
४	शुक्र	९	४	सोम	१०	४	बुध	१०
५	शनि	१०	५	मंगल	११	५	बृहस्पति	११
६	रवि	११	६	बुध	१२	६	शुक्र	१२
७	सोम	...	७	बृहस्पति	१३	७	शनि	१३
८	मंगल	१२	८	शुक्र	१४	८	रवि	१४
९	बुध	१३	९	शनि	...	९	सोम	पूर्णिमा
१०	बृहस्पति	१४	१०	रवि	पूर्णिमा	१०	मंगल	पौष[3] कृष्णा १
११	शुक्र	पूर्णिमा	११	सोम	मार्गशीर्ष[2] कृष्णा १	११	बुध	२
१२	शनि	कार्तिक[1] कृष्णा १	१२	मंगल	२	१२	बृहस्पति	३
१३	रवि	२	१३	बुध	३	१३	शुक्र	४
१४	सोम	३	१४	बृहस्पति	४	१४	शनि	५
१५	मंगल	४	१५	शुक्र	५	१५	रवि	६
१६	बुध	५	१६	शनि	६	१६	सोम	७
१७	बृहस्पति	६	१७	रवि	७	१७	मंगल	८
१८	शुक्र	७	१८	सोम	८,९	१८	बुध	९
१९	शनि	८	१९	मंगल	१०	१९	बृहस्पति	१०
२०	रवि	९	२०	बुध	११	२०	शुक्र	११
२१	सोम	१०	२१	बृहस्पति	१२	२१	शनि	१२, १३
२२	मंगल	११	२२	शुक्र	१३	२२	रवि	१४
२३	बुध	१२	२३	शनि	१४	२३	सोम	अमावस्या
२४	बृहस्पति	१३	२४	रवि	अमावस्या	२४	मंगल	पौष शुक्ला १
२५	शुक्र	अमावस्या १४	२५	सोम	मार्गशीर्ष शुक्ला १	२५	बुध	२
२६	शनि	कार्त्तिक शुक्ला १	२६	मंगल	२	२६	बृहस्पति	३
२७	रवि	२	२७	बुध	३	२७	शुक्र	४
२८	सोम	३	२८	बृहस्पति	४	२८	शनि	५
२९	मंगल	४	२९	शुक्र	५	२९	रवि	६
३०	बुध	५	३०	शनि	६	३०	सोम	...
३१	बृहस्पति	६				३१	मंगल	७

१. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

सन् १८७९ — वि० १९३५, ३६

जनवरी

तारीख	वार	तिथि
१	बुध	पौष शुक्ला ८
२	बृहस्पति	९
३	शुक्र	१०
४	शनि	११
५	रवि	१२
६	सोम	१३
७	मंगल	१४
८	बुध	पूर्णिमा
९	बृहस्पति	माघ[1] कृष्णा १
१०	शुक्र	२
११	शनि	३
१२	रवि	४
१३	सोम	५
१४	मंगल	६
१५	बुध	७,८
१६	बृहस्पति	९
१७	शुक्र	१०
१८	शनि	११
१९	रवि	१२
२०	सोम	१३
२१	मंगल	१४
२२	बुध	अमावस्या
२३	बृहस्पति	माघ शुक्ला १
२४	शुक्र	२
२५	शनि	३
२६	रवि	४
२७	सोम	५
२८	मंगल	६
२९	बुध	७
३०	बृहस्पति	८
३१	शुक्र	९

फरवरी

तारीख	वार	तिथि
१	शनि	माघ शुक्ला ९
२	रवि	१०
३	सोम	११
४	मंगल	१२
५	बुध	१३
६	बृहस्पति	१४
७	शुक्र	पूर्णिमा
,,		फाल्गुन[2] कृष्णा १
८	शनि	२
९	रवि	३
१०	सोम	४
११	मंगल	५
१२	बुध	६
१३	बृहस्पति	७
१४	शुक्र	८
१५	शनि	९
१६	रवि	१०
१७	सोम	११
१८	मंगल	१२
१९	बुध	१३
२०	बृहस्पति	१४
२१	शुक्र	अमावस्या
२२	शनि	फाल्गुन शुक्ला १
२३	रवि	२
२४	सोम	३
२५	मंगल	४
२६	बुध	५
२७	बृहस्पति	६
२८	शुक्र	७

मार्च

तारीख	वार	तिथि
१	शनि	फाल्गुन शुक्ला ८
२	रवि	९
३	सोम	१०
४	मंगल	११
५	बुध	१२
६	बृहस्पति	१३
७	शुक्र	१४
८	शनि	पूर्णिमा
९	रवि	चैत्र[3] कृष्णा १
१०	सोम	२
११	मंगल	३
१२	बुध	४
१३	बृहस्पति	५,६
१४	शुक्र	७
१५	शनि	८
१६	रवि	९
१७	सोम	१०
१८	मंगल	११
१९	बुध	१२
२०	बृहस्पति	१३
२१	शुक्र	१४
२२	शनि	अमावस्या
२३	रवि	चैत्र शुक्ला १
२४	सोम	१९३६ २
२५	मंगल	...
२६	बुध	३
२७	बृहस्पति	४
२८	शुक्र	५
२९	शनि	६
३०	रवि	७
३१	सोम	९

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा ।

सन् १८७९ — वि० १९३६

अप्रैल			मई			जून		
१	मंगल	चैत्र शुक्ला ९	१	बृहस्पति	वैशाख शुक्ला १०	१	रवि	ज्येष्ठ शुक्ला १२
२	बुध	१०	२	शुक्र	११	२	सोम	१३
३	बृहस्पति	११	३	शनि	१२	३	मंगल	१४
४	शुक्र	१२	४	रवि	१३	४	बुध	पूर्णिमा
५	शनि	१३	५	सोम	१४	५	बृह०	आषाढ़[3] कृष्णा १
६	रवि	पूर्णिमा १४	६	मंगल	पूर्णिमा	६	शुक्र	२
७	सोम	वैशाख[1] कृष्णा १	७	बुध	ज्येष्ठ[2] कृष्णा १	७	शनि	३
८	मंगल	२	८	बृहस्पति	२,३	८	रवि	४
९	बुध	३	९	शुक्र	४	९	सोम	५
१०	बृहस्पति	४	१०	शनि	५	१०	मंगल	६
११	शुक्र	५	११	रवि	६	११	बुध	७
१२	शनि	६	१२	सोम	७	१२	बृहस्पति	८
१३	रवि	७	१३	मँगल	८	१३	शुक्र	९
१४	सोम	८	१४	बुध	९	१४	शनि	१०
१५	मंगल	९	१५	बृहस्पति	१०	१५	रवि	११
१६	बुध	१०	१६	शुक्र	११	१६	सोम	१२
१७	बृहस्पति	११	१७	शनि	१२	१७	मंगल	१३
१८	शुक्र	१२	१८	रवि	...	१८	बुध	१४
१९	शनि	१३	१९	सोम	१३	१९	बृह०	अमावस्या
२०	रवि	१४	२०	मंगल	१४	२०	शुक्र	आषाढ शुक्ला १
२१	सोम	अमावस्या	२१	बुध	अमावस्या	२१	शनि	२
२२	मंगल	वैशाख शुक्ला १	२२	बृहस्पति	ज्येष्ठ शुक्ला १	२२	रवि	३
२३	बुध	२	२३	शुक्र	२	२३	सोम	४
२४	बृहस्पति	३	२४	शनि	३	२४	मंगल	५
२५	शुक्र	४	२५	रवि	४	२५	बुध	६
२६	शनि	५	२६	सोम	५	२६	बृहस्पति	७
२७	रवि	६	२७	मंगल	६	२७	शुक्र	८
२८	सोम	७	२८	बुध	७	२८	शनि	९
२९	मंगल	८	२९	बृहस्पति	८	२९	रवि	१०
३०	बुध	९	३०	शुक्र	९	३०	सोम	११
			३१	शनि	१०, ११			

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा ।
३ दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा ।

सन् १८७९ | | वि० १९३६

जुलाई		अगस्त		सितम्बर	
१ मंगल	आषाढ़ शुक्ला १२	१ शुक्र	श्रावण शुक्ला १४	१ सोम	आश्विन[3] कृष्णा १
२ बुध	१३,१४	२ शनि	पूर्णिमा	२ मंगल	२
३ बृहस्पति	पूर्णिमा	३ रवि	भाद्र[2] कृष्णा १	३ बुध	३
४ शुक्र	श्रावण[1] कृष्णा १	४ सोम	२	४ बृहस्पति	४
५ शनि	२	५ मंगल	३	५ शुक्र	५
६ रवि	३	६ बुध	४	६ शनि	...
७ सोम	४	७ बृहस्पति	५	७ रवि	६
८ मंगल	५	८ शुक्र	६	८ सोम	७
९ बुध	६	९ शनि	७	९ मंगल	८
१० बृहस्पति	७	१० रवि	८	१० बुध	९
११ शुक्र	८	११ सोम	९	११ बृहस्पति	१०
१२ शनि	९	१२ मंगल	१०	१२ शुक्र	११
१३ रवि	...	१३ बुध	११	१३ शनि	१२
१४ सोम	१०	१४ बृहस्पति	१२	१४ रवि	१३
१५ मंगल	११	१५ शुक्र	१३	१५ सोम	१४
१६ बुध	१२	१६ शनि	१४	१६ मंगल	अमावस्या
१७ बृहस्पति	१३	१७ रवि	अमावस्या	१७ बुध	आश्विन शुक्ला १
१८ शुक्र	१४	१८ सोम	भाद्र शुक्ला १	१८ बृहस्पति	(अधिक) २,३
१९ शनि	अमावस्या	१९ मंगल	२	१९ शुक्र	४
२० रवि	श्रावण शुक्ला १	२० बुध	३	२० शनि	५
२१ सोम	२	२१ बृहस्पति	४	२१ रवि	६
२२ मंगल	३	२२ शुक्र	५	२२ सोम	७
२३ बुध	४	२३ शनि	६	२३ मंगल	८
२४ बृहस्पति	५	२४ रवि	७	२४ बुध	९
२५ शुक्र	६,७	२५ सोम	८	२५ बृहस्पति	१०
२६ शनि	८	२६ मंगल	९,१०	२६ शुक्र	११
२७ रवि	९	२७ बुध	११	२७ शनि	१२
२८ सोम	१०	२८ बृहस्पति	१२	२८ रवि	१३
२९ मंगल	११	२९ शुक्र	१३	२९ सोम	१४
३० बुध	१२	३० शनि	१४	३० मंगल	पूर्णिमा
३१ बृहस्पति	१३	३१ रवि	पूर्णिमा		

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ़ कृष्णा । २. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।

सन् १८७९ | वि० १९३६

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ बुध	आश्विन कृष्णा १	१ शनि	कार्तिक[1] कृष्णा २	१ सोम	मार्ग० कृष्णा २
२ बृहस्पति	(अधिक) २	२ रवि	३	२ मंगल	३
३ शुक्र	३	३ सोम	४	३ बुध	४
४ शनि	४	४ मंगल	५	४ बृहस्पति	५
५ रवि	५	५ बुध	६	५ शुक्र	६
६ सोम	६	६ बृहस्पति	७	६ शनि	७
७ मंगल	७	७ शुक्र	८	७ रवि	८,९
८ बुध	८	८ शनि	९	८ सोम	१०
९ बृहस्पति	९	९ रवि	१०	९ मंगल	११
१० शुक्र	१०	१० सोम	११	१० बुध	१२
११ शनि	११	११ मंगल	१२	११ बृहस्पति	१३
१२ रवि	१२	१२ बुध	१३	१२ शुक्र	१४
१३ सोम	१३	१३ बृहस्पति	१४	१३ शनि	अमावस्या
१४ मंगल	१४	१४ शुक्र	अमावस्या	१४ रवि	मार्ग० शुक्ला १
१५ बुध	अमावस्या	,, ,,	कार्तिक शुक्ला १	१५ सोम	२
१६ बृहस्पति	आश्विन शुक्ला १	१५ शनि	२	१६ मंगल	३
१७ शुक्र	२	१६ रवि	३	१७ बुध	४
१८ शनि	३	१७ सोम	४	१८ बृहस्पति	५
१९ रवि	४	१८ मंगल	५	१९ शुक्र	६
२० सोम	५	१९ बुध	६	२० शनि	७
२१ मंगल	६,७	२० बृहस्पति	७	२१ रवि	८
२२ बुध	८	२१ शुक्र	८	२२ सोम	९
२३ बृहस्पति	९	२२ शनि	९	२३ मंगल	१०
२४ शुक्र	१०	२३ रवि	१०	२४ बुध	११
२५ शनि	११	२४ सोम	११	२५ बृहस्पति	१२
२६ रवि	१२	२५ मंगल	१२	२६ शुक्र	१३
२७ सोम	१३	२६ बुध	१३	२७ शनि	१४
२८ मंगल	१४	२७ बृहस्पति	१४	२८ रवि	पूर्णिमा
२९ बुध	...	२८ शुक्र	पूर्णिमा	२९ सोम	पौष[3] कृष्णा १
३० बृह०	पूर्णिमा	२९ शनि	मार्ग०[2] कृष्णा १	३० मंगल	२
३१ शुक्र	कार्तिक[2] कृष्णा १	३० रवि	२	३१ बुध	३

१. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

सन् १८८० वि० १९३६

जनवरी

तारीख	वार	तिथि
१	बृहस्पति	पौष[1] कृष्णा ४
२	शुक्र	५
३	शनि	६
४	रवि	७
५	सोम	८
६	मंगल	९
७	बुध	१०
८	बृहस्पति	११
९	शुक्र	१२
१०	शनि	१३
११	रवि	१४ अमावस्या
१२	सोम	पौष शुक्ला १
१३	मंगल	२
१४	बुध	३
१५	बृहस्पति	४
१६	शुक्र	५
१७	शनि	६
१८	रवि	७
१९	सोम	८
२०	मंगल	९
२१	बुध	...
२२	बृहस्पति	१०
२३	शुक्र	११
२४	शनि	१२
२५	रवि	१३
२६	सोम	१४
२७	मंगल	पूर्णिमा
२८	बुध	माघ कृष्णा १
२९	बृहस्पति	२
३०	शुक्र	३
३१	शनि	४

फरवरी

तारीख	वार	तिथि
१	रवि	माघ कृष्णा ५
२	सोम	६
३	मंगल	७
४	बुध	८,९
५	बृहस्पति	१०
६	शुक्र	११
७	शनि	१२
८	रवि	१३
९	सोम	१४
१०	मंगल	अमावस्या
११	बुध	माघ शुक्ला १
१२	बृहस्पति	२
१३	शुक्र	३
१४	शनि	४
१५	रवि	५
१६	सोम	६
१७	मंगल	७
१८	बुध	८
१९	बृहस्पति	९
२०	शुक्र	१०
२१	शनि	११
२२	रवि	१२
२३	सोम	...
२४	मंगल	१३
२५	बुध	१४
२६	बृहस्पति	पूर्णिमा
,,	,,	फाल्गुन[3] कृष्णा १
२७	शुक्र	२
२८	शनि	३
२९	रवि	४

मार्च

तारीख	वार	तिथि
१	सोम	फाल्गुन कृष्णा ५
२	मंगल	६
३	बुध	७
४	बृहस्पति	८
५	शुक्र	९
६	शनि	१०
७	रवि	११
८	सोम	१२
९	मंगल	१३,१४
१०	बुध	अमावस्या
११	बृहस्पति	फाल्गुन शुक्ला१
१२	शुक्र	—
१३	शनि	२
१४	रवि	३
१५	सोम	४
१६	मंगल	५
१७	बुध	६
१८	बृहस्पति	७
१९	शुक्र	८
२०	शनि	९
२१	रवि	१०
२२	सोम	११
२३	मंगल	१२
२४	बुध	१३
२५	बृहस्पति	१४
२६	शुक्र	पूर्णिमा
२७	शनि	चैत्र[4] कृष्णा १
२८	रवि	२
२९	सोम	३
३०	मंगल	४
३१	बुध	५

१. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा ।
४. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा ।

सन् १८८० वि० १९३७

अप्रैल			मई			जून		
१ बृहस्पति	चैत्र[1] कृष्णा	६,७	१ शनि	वैशाख कृष्णा	७	१ मंगल	ज्येष्ठ कृष्णा	९
२ शुक्र		८	२ रवि		८	२ बुध		१०
३ शनि		९	३ सोम		९	३ बृहस्पति		११
४ रवि		१०	४ मंगल		१०	४ शुक्र		१२
५ सोम		११	५ बुध		११	५ शनि		१३
६ मंगल		१२	६ बृहस्पति		१२	६ रवि		१४
७ बुध		१३	७ शुक्र		१३	७ सोम		अमावस्या
८ बृहस्पति		१४	८ शनि		१४	८ मंगल	ज्येष्ठ शुक्ला	१
९ शुक्र		अमावस्या	९ रवि		अमावस्या	९ बुध		...
१० शनि	चैत्र शुक्ला	१	१० सोम	वैशाख शुक्ला	१	१० बृहस्पति		२
११ रवि	१९३७	२	११ मँगल		२	११ शुक्र		३
१२ सोम		३	१२ बुध		३	१२ शनि		४
१३ मंगल		४	१३ बृहस्पति		४	१३ रवि		५
१४ बुध		५	१४ शुक्र		५	१४ सोम		६
१५ बृहस्पति		...	१५ शनि		६	१५ मंगल		७
१६ शुक्र		६	१६ रवि		७	१६ बुध		८
१७ शनि		७	१७ सोम		८	१७ बृहस्पति		९
१८ रवि		८	१८ मंगल		९	१८ शुक्र		१०,११
१९ सोम		९	१९ बुध		१०	१९ शनि		१२
२० मंगल		१०	२० बृहस्पति		११	२० रवि		१३
२१ बुध		११	२१ शुक्र		१२	२१ सोम		१४
२२ बृहस्पति		१२	२२ शनि		१३	२२ मंगल		पूर्णिमा
२३ शुक्र		१३	२३ रवि		१४	२३ बुध	आषाढ़[4] कृष्णा	१
२४ शनि	पूर्णिमा	१४	२४ सोम		पूर्णिमा	२४ बृहस्पति		२
२५ रवि	वैशाख[2] कृष्णा	१	२५ मंगल	ज्येष्ठ[3] कृष्णा	१	२५ शुक्र		३
२६ सोम		२	२६ बुध		२,३	२६ शनि		४
२७ मंगल		३	२७ बृहस्पति		४	२७ रवि		५
२८ बुध		४	२८ शुक्र		५	२८ सोम		६
२९ बृहस्पति		५	२९ शनि		६	२९ मंगल		७
३० शुक्र		६	३० रवि		७	३० बुध		८
			३१ सोम		८			

१. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।

३ दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा। ४. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८८० वि० १९३७

जुलाई		
१ बृह०	आषाढ़[1] कृष्णा	९
२ शुक्र		१०
३ शनि		११
४ रवि		१२
५ सोम		१३
६ मंगल		१४
७ बुध		अमावस्या
८ बृह०	आषाढ शुक्ला	१
९ शुक्र		२
१० शनि		३
११ रवि		४
१२ सोम		५
१३ मंगल		६
१४ बुध		७
१५ बृहस्पति		८
१६ शुक्र		९
१७ शनि		१०
१८ रवि		११
१९ सोम		१२
२० मंगल		१३,१४
२१ बुध		पूर्णिमा
२२ बृहस्पति	श्रावण[2] कृष्णा	१
२३ शुक्र		२
२४ शनि		३
२५ रवि		४
२६ सोम		५
२७ मंगल		६
२८ बुध		७
२९ बृहस्पति		८
३० शुक्र		९
३१ शनि		१०

अगस्त		
१ रवि	श्रावण कृष्णा	११
२ सोम		१२
३ मंगल		१३
४ बुध		...
५ बृहस्पति		१४
६ शुक्र		अमावस्या
७ शनि	श्रावण शुक्ला	१
८ रवि		२
९ सोम		३
१० मंगल		४
११ बुध		५, ६
१२ बृहस्पति		७
१३ शुक्र		८
१४ शनि		९
१५ रवि		१०
१६ सोम		११
१७ मंगल		१२
१८ बुध		१३
१९ बृहस्पति		१४
२० शुक्र		पूर्णिमा
२१ शनि	भाद्र[3] कृष्णा	१
२२ रवि		२
२३ सोम		३
२४ मंगल		४
२५ बुध		५
२६ बृहस्पति		६
२७ शुक्र		७
२८ शनि		८
२९ रवि		९
३० सोम		१०
३१ मंगल		११

सितम्बर		
१ बुध	भाद्र कृष्णा	१२
२ बृहस्पति		१३
३ शुक्र		१४
४ शनि		अमावस्या
५ रवि	भाद्र शुक्ला	१
६ सोम		२
७ मंगल		३
८ बुध		४
९ बृहस्पति		५
१० शुक्र		६
११ शनि		७
१२ रवि		८
१३ सोम		९, १०
१४ मंगल		११
१५ बुध		१२
१६ बृहस्पति		१३
१७ शुक्र		१४
१८ शनि		पूर्णिमा
१९ रवि	आश्विन[4] कृष्णा	१
२० सोम		२
२१ मंगल		३
२२ बुध		४
२३ बृहस्पति		५
२४ शुक्र		६
२५ शनि		७
२६ रवि		८
२७ सोम		९
२८ मंगल		...
२९ बुध		१०
३० बृहस्पति		११

१. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती आषाढ़ कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८८० — वि० १९३७

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ शुक्र	आश्विन[1] कृष्णा १२	१ सोम	कार्तिक कृष्णा १४	१ बुध	मार्गशीर्ष कृ० १४
२ शनि	१३	२ मंगल	अमावस्या	२ बृहस्पति	अमावस्या
३ रवि	१४	३ बुध	कार्त्तिक शुक्ला १	३ शुक्र	मार्गशीर्ष शु० १,२
४ सोम	अमावस्या	४ बृहस्पति	२	४ शनि	३
५ मंगल	आश्विन शुक्ला १	५ शुक्र	३	५ रवि	४
६ बुध	२,३	६ शनि	४	६ सोम	५
७ बृहस्पति	४	७ रवि	५	७ मंगल	६
८ शुक्र	५	८ सोम	६	८ बुध	७
९ शनि	६	९ मंगल	७,८	९ बृहस्पति	८
१० रवि	७	१० बुध	९	१० शुक्र	९
११ सोम	८	११ बृहस्पति	१०	११ शनि	१०
१२ मंगल	९	१२ शुक्र	११	१२ रवि	११
१३ बुध	१०	१३ शनि	१२	१३ सोम	१२
१४ बृहस्पति	११	१४ रवि	१३	१४ मंगल	१३
१५ शुक्र	१२	१५ सोम	१४	१५ बुध	१४
१६ शनि	१३	१६ मंगल	पूर्णिमा	१६ बृहस्पति	पूर्णिमा
१७ रवि	१४	१७ बुध	मार्गशीर्ष[3] कृष्णा १	१७ शुक्र	पौष[4] कृष्णा १
१८ सोम	पूर्णिमा	१८ बृहस्पति	२	१८ शनि	२
१९ मंगल	कार्त्तिक कृष्णा[2] १	१९ शुक्र	...	१९ रवि	३
२० बुध	२	२० शनि	३	२० सोम	४
२१ बृहस्पति	३	२१ रवि	४	२१ मंगल	५
२२ शुक्र	४	२२ सोम	५	२२ बुध	...
२३ शनि	५	२३ मंगल	६	२३ बृहस्पति	६
२४ रवि	६	२४ बुध	७	२४ शुक्र	७
२५ सोम	७	२५ बृहस्पति	८	२५ शनि	८
२६ मंगल	८	२६ शुक्र	९	२६ रवि	९,१०
२७ बुध	९	२७ शनि	१०	२७ सोम	११
२८ बृहस्पति	१०	२८ रवि	११	२८ मंगल	१२
२९ शुक्र	११	२९ सोम	१२	२९ बुध	१३
३० शनि	१२	३० मंगल	१३	३० बृहस्पति	१४
३१ रवि	१३			३१ शुक्र	अमावस्या

१. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा ।
४. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा ।

सन् १८८१ — वि० १९३७

जनवरी

तारीख	वार	तिथि
१	शनि	पौष शुक्ला १
२	रवि	२
३	सोम	३
४	मंगल	४
५	बुध	५
६	बृहस्पति	६
७	शुक्र	७
८	शनि	८
९	रवि	९
१०	सोम	१०
११	मंगल	११
१२	बुध	१२
१३	बृहस्पति	१३
१४	शुक्र	१४
१५	शनि	पूर्णिमा
१६	रवि	माघ[1] कृष्णा १
१७	सोम	२
१८	मंगल	३
१९	बुध	४
२०	बृहस्पति	५
२१	शुक्र	६
२२	शनि	७
२३	रवि	८
२४	सोम	९
२५	मंगल	१०
२६	बुध	११
२७	बृहस्पति	१२
२८	शुक्र	१३
२९	शनि	१४
३०	रवि	अमावस्या
,,	,,	माघ शुक्ला १
३१	सोम	२

फरवरी

तारीख	वार	तिथि
१	मंगल	माघ शुक्ला ३
२	बुध	४
३	बृहस्पति	५
४	शुक्र	६
५	शनि	७
६	रवि	८
७	सोम	९
८	मंगल	१०
९	बुध	११
१०	बृहस्पति	१२
११	शुक्र	...
१२	शनि	१३
१३	रवि	१४
१४	सोम	पूर्णिमा
१५	मंगल	फाल्गुन[2] कृष्णा १
१६	बुध	२
१७	बृहस्पति	३
१८	शुक्र	४
१९	शनि	५
२०	रवि	६
२१	सोम	७
२२	मंगल	८
२३	बुध	९,१०
२४	बृहस्पति	११
२५	शुक्र	१२
२६	शनि	१३
२७	रवि	१४
२८	सोम	अमावस्या

मार्च

तारीख	वार	तिथि
१	मंगल	फाल्गुन शुक्ला १
२	बुध	२
३	बृहस्पति	३
४	शुक्र	४
५	शनि	५
६	रवि	६
७	सोम	७
८	मंगल	८
९	बुध	९
१०	बृहस्पति	१०
११	शुक्र	११
१२	शनि	१२
१३	रवि	१३
१४	सोम	१४
१५	मंगल	पूर्णिमा
१६	बुध	चैत्र[3] कृष्णा १
१७	बृहस्पति	२
१८	शुक्र	३
१९	शनि	४
२०	रवि	५
२१	सोम	६
२२	मंगल	७
२३	बुध	८
२४	बृहस्पति	९
२५	शुक्र	१०
२६	शनि	११
२७	रवि	१२
२८	सोम	१३,१४
२९	मंगल	अमावस्या
३०	बुध	चैत्र शु० १९३८ १
३१	बृहस्पति	२

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा। ३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

सन् १८८१ — वि० १९३८

अप्रैल			मई			जून		
१	शुक्र	चैत्र शुक्ला ३	१	रवि	वैशाख शुक्ला ३	१	बुध	ज्येष्ठ शुक्ला ४
२	शनि	४	२	सोम	४	२	बृहस्पति	५
३	रवि	५	३	मंगल	५	३	शुक्र	६
४	सोम	६	४	बुध	६	४	शनि	७
५	मंगल	...	५	बृहस्पति	७	५	रवि	८
६	बुध	७	६	शुक्र	८	६	सोम	९
७	बृहस्पति	८	७	शनि	९	७	मंगल	१०
८	शुक्र	९	८	रवि	१०	८	बुध	११
९	शनि	१०	९	सोम	११	९	बृहस्पति	१२
१०	रवि	११	१०	मंगल	१२	१०	शुक्र	१३
११	सोम	१२	११	बुध	१३	११	शनि	१४
१२	मंगल	१३	१२	बृहस्पति	१४	१२	रवि	पूर्णिमा
१३	बुध	१४	१३	शुक्र	पूर्णिमा	१३	सोम	आषाढ[3] कृष्णा १
१४	बृहस्पति	पूर्णिमा	१४	शनि	ज्येष्ठ[2] कृष्णा १	१४	मंगल	२, ३
१५	शुक्र	वैशाख[1] कृष्णा १	१५	रवि	२	१५	बुध	४
१६	शनि	२	१६	सोम	३	१६	बृहस्पति	५
१७	रवि	३	१७	मंगल	४	१७	शुक्र	६
१८	सोम	४	१८	बुध	५	१८	शनि	७
१९	मंगल	५	१९	बृहस्पति	६	१९	रवि	८
२०	बुध	६,७	२०	शुक्र	७	२०	सोम	९
२१	बृहस्पति	८	२१	शनि	८	२१	मंगल	१०
२२	शुक्र	९	२२	रवि	९	२२	बुध	११
२३	शनि	१०	२३	सोम	१०,११	२३	बृहस्पति	१२
२४	रवि	११	२४	मंगल	१२	२४	शुक्र	१३
२५	सोम	१२	२५	बुध	१३	२५	शनि	१४
२६	मंगल	१३	२६	बृहस्पति	१४	२६	रवि	अमावस्या
२७	बुध	१४	२७	शुक्र	अमावस्या	२७	सोम	आषाढ़ शुक्ला १
२८	बृहस्पति	अमावस्या	२८	शनि	ज्येष्ठ शुक्ला १	२८	मंगल	२
२९	शुक्र	वैशाख शुक्ला १	२९	रवि	...	२९	बुध	३
३०	शनि	२	३०	सोम	२	३०	बृहस्पति	४
			३१	मंगल	३			

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा।　२. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।

३. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा।

सन् १८८१ — वि० १९३८

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	शुक्र	आषाढ शुक्ला ५	१	सोम	श्रावण शुक्ला ६	१	बृहस्पति	भाद्र शुक्ला ८
२	शनि	६	२	मंगल	७	२	शुक्र	९
३	रवि	७	३	बुध	८	३	शनि	१०
४	सोम	८	४	बृहस्पति	९	४	रवि	११
५	मंगल	९	५	शुक्र	१०	५	सोम	१२
६	बुध	१०	६	शनि	११	६	मंगल	१३
७	बृहस्पति	११	७	रवि	१२	७	बुध	१४
८	शुक्र	१२	८	सोम	१३,१४	८	बृहस्पति	पूर्णिमा
९	शनि	१३	९	मंगल	पूर्णिमा	९	शुक्र	आश्विन[3] कृष्णा १,२
१०	रवि	१४	१०	बुध	भाद्र[2] कृष्णा १	१०	शनि	३
११	सोम	पूर्णिमा	११	बृहस्पति	२	११	रवि	४
१२	मंगल	श्रावण[1] कृष्णा १	१२	शुक्र	३	१२	सोम	५
१३	बुध	२	१३	शनि	४	१३	मंगल	६
१४	बृहस्पति	३	१४	रवि	५	१४	बुध	७
१५	शुक्र	४	१५	सोम	६	१५	बृहस्पति	८
१६	शनि	५,६	१६	मंगल	७	१६	शुक्र	९
१७	रवि	७	१७	बुध	८	१७	शनि	...
१८	सोम	८	१८	बृहस्पति	९	१८	रवि	१०
१९	मंगल	९	१९	शुक्र	१०	१९	सोम	११
२०	बुध	१०	२०	शनि	११	२०	मंगल	१२
२१	बृहस्पति	११	२१	रवि	१२	२१	बुध	१३
२२	शुक्र	१२	२२	सोम	१३	२२	बृहस्पति	१४
२३	शनि	१३	२३	मंगल	१४	२३	शुक्र	अमावस्या
२४	रवि	...	२४	बुध	अमावस्या	२४	शनि	आश्विन शुक्ला १
२५	सोम	१४	२५	बृहस्पति	भाद्र शुक्ला १	२५	रवि	२
२६	मंगल	अमावस्या	२६	शुक्र	२	२६	सोम	३
२७	बुध	श्रावण शुक्ला १	२७	शनि	३	२७	मंगल	४
२८	बृहस्पति	२	२८	रवि	४	२८	बुध	५
२९	शुक्र	३	२९	सोम	५	२९	बृहस्पति	६
३०	शनि	४	३०	मंगल	६	३०	शुक्र	७
३१	रवि	५	३१	बुध	७			

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८८१ — वि० १९३८

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ शनि	आश्विन शुक्ला ८	१ मंगल	कार्तिक शुक्ला १०	१ बृहस्पति	मार्ग० शु० ११
२ रवि	९	२ बुध	११	२ शुक्र	१२
३ सोम	१०,११	३ बृहस्पति	१२	३ शनि	१३
४ मंगल	१२	४ शुक्र	१३	४ रवि	१४
५ बुध	१३	५ शनि	१४	५ सोम	पूर्णिमा
६ बृहस्पति	१४	६ रवि	पूर्णिमा	६ मंगल	पौष[3] कृष्णा १
७ शुक्र	पूर्णिमा	७ सोम	मार्गशीर्ष[2] कृष्णा १	७ बुध	२
८ शनि	कार्तिक[1] कृष्णा १	८ मंगल	२	८ बृहस्पति	३
९ रवि	२	९ बुध	३	९ शुक्र	४
१० सोम	३	१० बृहस्पति	४	१० शनि	५
११ मंगल	४	११ शुक्र	५	११ रवि	...
१२ बुध	५	१२ शनि	६	१२ सोम	६
१३ बृहस्पति	६	१३ रवि	७	१३ मंगल	७
१४ शुक्र	७	१४ सोम	८	१४ बुध	८
१५ शनि	८	१५ मंगल	९	१५ बृहस्पति	९
१६ रवि	९	१६ बुध	१०	१६ शुक्र	१०
१७ सोम	१०	१७ बृहस्पति	११	१७ शनि	११
१८ मंगल	११	१८ शुक्र	१२	१८ रवि	१२
१९ बुध	१२	१९ शनि	१३	१९ सोम	१३
२० बृहस्पति	...	२० रवि	१४	२० मंगल	१४
२१ शुक्र	१३	२१ सोम	अमावस्या	२१ बुध	अमावस्या
२२ शनि	१४	२२ मंगल	मार्गशीर्ष शुक्ला १	२२ बृहस्पति	पौष शुक्ला १
२३ रवि	अमावस्या	२३ बुध	२	२३ शुक्र	२,३
२४ सोम	कार्तिक शुक्ला १	२४ बृहस्पति	३	२४ शनि	४
२५ मंगल	२	२५ शुक्र	४	२५ रवि	५
२६ बुध	३,४	२६ शनि	५	२६ सोम	६
२७ बृह०	५	२७ रवि	६	२७ मंगल	७
२८ शुक्र	६	२८ सोम	७	२८ बुध	८
२९ शनि	७	२९ मंगल	८,९	२९ बृहस्पति	९
३० रवि	८	३० बुध	१०	३० शुक्र	१०
३१ सोम	९			३१ शनि	११

१. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

सन् १८८२   वि० १९३८,३९

जनवरी			फरवरी			मार्च		
१	रवि	पौष शुक्ला १२	१	बुध	माघ शुक्ला १३	१	बुध	फाल्गुन शुक्ला १२
२	सोम	१३	२	बृहस्पति	१४	२	बृहस्पति	१३
३	मंगल	१४	३	शुक्र	पूर्णिमा	३	शुक्र	१४
४	बुध	पूर्णिमा	४	शनि	फाल्गुन[2] कृष्णा १	४	शनि	पूर्णिमा
५	बृहस्पति	माघ[1] कृष्णा १	५	रवि	२	५	रवि	...
६	शुक्र	२	६	सोम	३	६	सोम	चैत्र[3] कृष्णा १
७	शनि	३	७	मंगल	४	७	मंगल	२
८	रवि	४	८	बुध	५	८	बुध	३
९	सोम	५	९	बृहस्पति	६	९	बृहस्पति	४
१०	मंगल	६	१०	शुक्र	७	१०	शुक्र	५
११	बुध	७	११	शनि	८	११	शनि	६
१२	बृहस्पति	८	१२	रवि	९	१२	रवि	७
१३	शुक्र	९	१३	सोम	१०	१३	सोम	८
१४	शनि	१०	१४	मंगल	११	१४	मंगल	९,१०
१५	रवि	११	१५	बुध	१२	१५	बुध	११
१६	सोम	१२	१६	बृहस्पति	१३	१६	बृहस्पति	१२
१७	मंगल	१३	१७	शुक्र	१४	१७	शुक्र	१३
१८	बुध	१४	१८	शनि	अमावस्या १	१८	शनि	१४
१९	बृहस्पति	अमावस्या	१९	रवि	फाल्गुन शुक्ला २	१९	रवि	अमावस्या
२०	शुक्र	माघ शुक्ला १	२०	सोम	३	२०	सोम	चैत्र शुक्ला १
२१	शनि	२	२१	मंगल	४	२१	मंगल	(१९३९) २
२२	रवि	३	२२	बुध	५	२२	बुध	३
२३	सोम	४	२३	बृहस्पति	६	२३	बृहस्पति	४
२४	मंगल	५	२४	शुक्र	७	२४	शुक्र	५
२५	बुध	६	२५	शनि	८	२५	शनि	६
२६	बृहस्पति	७,८	२६	रवि	९	२६	रवि	७
२७	शुक्र	९	२७	सोम	१०	२७	सोम	८
२८	शनि	१०	२८	मंगल	११	२८	मंगल	९
२९	रवि	११				२९	बुध	१०
३०	सोम	१२				३०	बृहस्पति	११
३१	मंगल	...				३१	शुक्र	१२

१. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा ।

सन् १८८२ वि० १९३९

अप्रैल		मई		जून	
१ शनि	चैत्र शुक्ला १३	१ सोम	वैशाख शुक्ला १३	१ बृह०	ज्येष्ठ पूर्णिमा
२ रवि	१४	२ मंगल	१४	२ शुक्र	आषाढ़[3] कृष्णा १
३ सोम	पूर्णिमा	३ बुध	पूर्णिमा	३ शनि	२
४ मंगल	वैशाख[1] कृष्णा १	४ बृहस्पति	ज्येष्ठ[2] कृष्णा १	४ रवि	३
५ बुध	२	५ शुक्र	२	५ सोम	४
६ बृहस्पति	३	६ शनि	३	६ मंगल	५
७ शुक्र	४	७ रवि	४	७ बुध	६
८ शनि	५	८ सोम	५	८ बृहस्पति	७
९ रवि	६	९ मंगल	६,७	९ शुक्र	८
१० सोम	७	१० बुध	८	१० शनि	९,१०
११ मंगल	८	११ बृहस्पति	९	११ रवि	११
१२ बुध	९	१२ शुक्र	१०	१२ सोम	१२
१३ बृहस्पति	१०	१३ शनि	११	१३ मंगल	१३
१४ शुक्र	११	१४ रवि	१२	१४ बुध	१४
१५ शनि	१२	१५ सोम	१३	१५ बृहस्पति	अमावस्या
१६ रवि	१३,१४	१६ मंगल	१४	१६ शुक्र	आषाढ़ शुक्ला १
१७ सोम	अमावस्या	१७ बुध	अमावस्या	१७ शनि	२
१८ मंगल	वैशाख शुक्ला १	१८ बृहस्पति	ज्येष्ठ शुक्ला १	१८ रवि	३
१९ बुध	२	१९ शुक्र	२	१९ सोम	४
२० बृहस्पति	३	२० शनि	३	२० मंगल	५
२१ शुक्र	४	२१ रवि	४	२१ बुध	६
२२ शनि	५	२२ सोम	५	२२ बृहस्पति	...
२३ रवि	६	२३ मंगल	६	२३ शुक्र	७
२४ सोम	७	२४ बुध	७	२४ शनि	८
२५ मंगल	८	२५ बृहस्पति	८	२५ रवि	९
२६ बुध	९	२६ शुक्र	९	२६ सोम	१०
२७ बृहस्पति	...	२७ शनि	१०	२७ मंगल	११
२८ शुक्र	१०	२८ रवि	११	२८ बुध	१२
२९ शनि	११	२९ सोम	१२	२९ बृहस्पति	१३
३० रवि	१२	३० मंगल	१३	३० शुक्र	१४
		३१ बुध	१४		

१. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा । २. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा।

३ दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा ।

सन् १८८२ — वि० १९३९

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	शनि	आषाढ पूर्णिमा	१	मंगल	श्रावण कृष्णा २	१	शुक्र	भाद्र कृष्णा ४
२	रवि	श्रावण[1] कृष्णा १	२	बुध	(अधिक) ३	२	शनि	५
३	सोम	२,३	३	बृहस्पति	४	३	रवि	६
४	मंगल	४	४	शुक्र	५,६	४	सोम	७
५	बुध	५	५	शनि	७	५	मंगल	८
६	बृहस्पति	६	६	रवि	८	६	बुध	९
७	शुक्र	७	७	सोम	९	७	बृहस्पति	१०
८	शनि	८	८	मंगल	१०	८	शुक्र	११
९	रवि	९	९	बुध	११	९	शनि	१२
१०	सोम	१०	१०	बृहस्पति	१२	१०	रवि	१३
११	मंगल	११	११	शुक्र	१३	११	सोम	१४
१२	बुध	१२	१२	शनि	१४	१२	मंगल	अमावस्या
१३	बृहस्पति	१३	१३	रवि	अमावस्या	१३	बुध	भाद्र शुक्ला १
१४	शुक्र	१४	१४	सोम	श्रावण शुक्ला १	१४	बृहस्पति	२
१५	शनि	अमावस्या	१५	मंगल	२	१५	शुक्र	३
१६	रवि	श्रावण शुक्ला १	१६	बुध	...	१६	शनि	४
१७	सोम	२	१७	बृहस्पति	३	१७	रवि	५
१८	मंगल	३	१८	शुक्र	४	१८	सोम	६
१९	बुध	४	१९	शनि	५	१९	मंगल	७
२०	बृहस्पति	५	२०	रवि	६	२०	बुध	८
२१	शुक्र	६	२१	सोम	७	२१	बृहस्पति	९
२२	शनि	७	२२	मंगल	८	२२	शुक्र	१०
२३	रवि	८	२३	बुध	९	२३	शनि	११
२४	सोम	९	२४	बृहस्पति	१०	२४	रवि	१२
२५	मंगल	१०	२५	शुक्र	११	२५	सोम	१३
२६	बुध	११	२६	शनि	१२	२६	मंगल	१४
२७	बृहस्पति	१२	२७	रवि	१३,१४	२७	बुध	पूर्णिमा
२८	शुक्र	१३	२८	सोम	पूर्णिमा	२८	बृह०	आश्विन[3] कृ० १,२
२९	शनि	१४	२९	मंगल	भाद्र[2] कृष्णा १	२९	शुक्र	३
३०	रवि	पूर्णिमा	३०	बुध	२	३०	शनि	४
३१	सोम	द्वि०श्रावण कृष्णा १	३१	बृहस्पति	३			

१. दक्षिणी गुजराती आषाढ़ कृष्णा ।
२. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा ।

सन् १८८२ वि० १९३९

अक्तूबर

तारीख	वार	तिथि
१	रवि	आश्विन[1] कृष्णा ५
२	सोम	६
३	मंगल	७
४	बुध	८
५	बृहस्पति	९
६	शुक्र	१०
७	शनि	११
८	रवि	१२
९	सोम	—
१०	मंगल	१३
११	बुध	१४
१२	बृहस्पति	अमावस्या
१३	शुक्र	आश्विन शुक्ला १
१४	शनि	२
१५	रवि	३
१६	सोम	४
१७	मंगल	५
१८	बुध	६
१९	बृहस्पति	७
२०	शुक्र	८
२१	शनि	९
२२	रवि	१०,११
२३	सोम	१२
२४	मंगल	१३
२५	बुध	१४
२६	बृहस्पति	पूर्णिमा
२७	शुक्र	कार्त्तिक[2] कृष्णा १
२८	शनि	२
२९	रवि	३
३०	सोम	४
३१	मंगल	५

नवम्बर

तारीख	वार	तिथि
१	बुध	कार्त्तिक कृष्णा ६
२	बृहस्पति	७
३	शुक्र	८
४	शनि	९
५	रवि	१०
६	सोम	११
७	मंगल	१२
८	बुध	१३
९	बृहस्पति	१४
१०	शुक्र	अमावस्या
११	शनि	कार्तिक शुक्ला १
१२	रवि	२
१३	सोम	३
१४	मंगल	४
१५	बुध	५
१६	बृहस्पति	६
१७	शुक्र	७
१८	शनि	८
१९	रवि	९
२०	सोम	१०
२१	मंगल	११
२२	बुध	१२
२३	बृहस्पति	१३
२४	शुक्र	१४
२५	शनि	पूर्णिमा
,,	,,	मार्गशीर्ष[3] कृष्णा १
२६	रवि	२
२७	सोम	३
२८	मंगल	४
२९	बुध	५
३०	बृहस्पति	...

दिसम्बर

तारीख	वार	तिथि
१	शुक्र	मार्गशीर्ष कृ० ६
२	शनि	७
३	रवि	८
४	सोम	९
५	मंगल	१०
६	बुध	११
७	बृहस्पति	१२
८	शुक्र	१३
९	शनि	१४
१०	रवि	अमावस्या
११	सोम	मार्गशीर्ष शुक्ला १
१२	मंगल	२
१३	बुध	३
१४	बृहस्पति	४
१५	शुक्र	५
१६	शनि	६
१७	रवि	७
१८	सोम	८
१९	मंगल	९,१०
२०	बुध	११
२१	बृहस्पति	१२
२२	शुक्र	१३
२३	शनि	१४
२४	रवि	पूर्णिमा
२५	सोम	पौष[4] कृष्णा १
२६	मंगल	२
२७	बुध	३
२८	बृहस्पति	४
२९	शुक्र	५
३०	शनि	६
३१	रवि	७

१. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

सन् १८८३ वि० १९३९

जनवरी		फरवरी		मार्च	
१ सोम	पौष[1] कृष्णा ८	१ बृहस्पति	माघ कृष्णा ९	१ बृह०	फाल्गुन कृष्णा ७
२ मंगल	...	२ शुक्र	१०	२ शुक्र	८
३ बुध	९	३ शनि	११	३ शनि	९
४ बृहस्पति	१०	४ रवि	१२	४ रवि	१०
५ शुक्र	११	५ सोम	१३	५ सोम	११
६ शनि	१२	६ मंगल	१४	६ मंगल	१२
७ रवि	१३	७ बुध	अमावस्या	७ बुध	१३
८ सोम	१४	८ बृहस्पति	माघ शुक्ला १	८ बृहस्पति	१४
९ मंगल	अमावस्य	९ शुक्र	२	९ शुक्र	अमावस्या
१० बुध	पौष शुक्ला १	१० शनि	३	१० शनि	फाल्गुन शु० १,२
११ बृहस्पति	२	११ रवि	४	११ रवि	३
१२ शुक्र	३,४	१२ सोम	५	१२ सोम	४
१३ शनि	५	१३ मंगल	६	१३ मंगल	५
१४ रवि	६	१४ बुध	७	१४ बुध	६
१५ सोम	७	१५ बृहस्पति	८,९	१५ बृहस्पति	७
१६ मंगल	८	१६ शुक्र	१०	१६ शुक्र	८
१७ बुध	९	१७ शनि	११	१७ शनि	९
१८ बृहस्पति	१०	१८ रवि	१२	१८ रवि	१०
१९ शुक्र	११	१९ सोम	१३	१९ सोम	११
२० शनि	१२	२० मंगल	१४	२० मंगल	१२
२१ रवि	१३	२१ बुध	पूर्णिमा	२१ बुध	१३
२२ सोम	१४	२२ बृहस्पति	...	२२ बृहस्पति	१४
२३ मंगल	पूर्णिमा	२३ शुक्र	फाल्गुन[3] कृष्णा १	२३ शुक्र	पूर्णिमा
२४ बुध	माघ कृष्णा[2] १	२४ शनि	२	२४ शनि	चैत्र[4] कृष्णा १
२५ बृहस्पति	२	२५ रवि	३	२५ रवि	२
२६ शुक्र	३	२६ सोम	४	२६ सोम	३
२७ शनि	४	२७ मंगल	५	२७ मंगल	...
२८ रवि	५	२८ बुध	६	२८ बुध	४
२९ सोम	६			२९ बृहस्पति	५
३० मंगल	७			३० शुक्र	६
३१ बुध	८			३१ शनि	७

१. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।
२. दक्षिणी गुजराती पौष कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती माघ कृष्णा।
४. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा।

सन् १८८३ — वि० १६४०

अप्रैल		मई		जून	
१ रवि चैत्र[1] कृष्णा	८	१ मंगल वैशाख कृष्णा	९	१ शुक्र ज्येष्ठ कृष्णा	११
२ सोम	९, १०	२ बुध	१०	२ शनि	१२
३ मंगल	११	३ बृहस्पति	११	३ रवि	१३
४ बुध	१२	४ शुक्र	१२	४ सोम	१४
५ बृहस्पति	१३	५ शनि	१३, १४	५ मंगल	अमावस्या
६ शुक्र	१४	६ रवि	अमावस्या	६ बुध ज्येष्ठ शुक्ला	१
७ शनि	अमावस्या	७ सोम वैशाख शुक्ला	१	७ बृहस्पति	२
८ रवि चैत्र शुक्ला	१	८ मंगल	२	८ शुक्र	३
९ सोम (१६४०)	२	९ बुध	३	९ शनि	४
१० मंगल	३	१० बृहस्पति	४	१० रवि	५
११ बुध	४	११ शुक्र	५	११ सोम	६
१२ बृहस्पति	५	१२ शनि	६	१२ मंगल	७
१३ शुक्र	६	१३ रवि	७	१३ बुध	८
१४ शनि	७	१४ सोम	८	१४ बृहस्पति	९
१५ रवि	८	१५ मंगल	९	१५ शुक्र	१०
१६ सोम	९	१६ बुध	१०	१६ शनि	११
१७ मंगल	१०	१७ बृहस्पति	११	१७ रवि	१२
१८ बुध	११	१८ शुक्र	१२	१८ सोम	१३
१९ बृहस्पति	१२	१९ शनि	१३	१९ मंगल	१४
२० शुक्र	१३	२० रवि	...	२० बुध	पूर्णिमा
२१ शनि	१४	२१ सोम	१४	२१ बृहस्पति आषाढ़[4] कृष्णा	१
२२ रवि	पूर्णिमा	२२ मंगल	पूर्णिमा	२२ शुक्र	२
२३ सोम वैशाख[2] कृष्णा	१	२३ बुध ज्येष्ठ[3] कृष्णा	१	२३ शनि	३
२४ मंगल	२	२४ बृहस्पति	२	२४ रवि	४
२५ बुध	३	२५ शुक्र	३	२५ सोम	५
२६ बृहस्पति	४	२६ शनि	४	२६ मंगल	६
२७ शुक्र	५	२७ रवि	५	२७ बुध	७
२८ शनि	६	२८ सोम	६, ७	२८ बृहस्पति	८
२९ रवि	७	२९ मंगल	८	२९ शुक्र	९, १०
३० सोम	८	३० बुध	९	३० शनि	११
		३१ बृहस्पति	१०		

१. दक्षिणी गुजराती फाल्गुन कृष्णा । २. दक्षिणी गुजराती चैत्र कृष्णा ।
३. दक्षिणी गुजराती वैशाख कृष्णा । ४. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा ।

सन् १८८३ वि० १९४०

जुलाई			अगस्त			सितम्बर		
१	रवि आषाढ[1] कृ०	१२	१	बुध श्रावण कृष्णा	१३	१	शनि	भाद्र अमावस्या
२	सोम	१३	२	बृहस्पति अमावस्या	१४	२	रवि भाद्र शुक्ला	१
३	मंगल	१४	३	शुक्र श्रावण शुक्ला	१	३	सोम	२
४	बुध	अमावस्या	४	शनि	...	४	मंगल	३
५	बृह० आषाढ़ शुक्ला	१	५	रवि	२	५	बुध	४
६	शुक्र	२	६	सोम	३	६	बृहस्पति	५
७	शनि	३	७	मंगल	४	७	शुक्र	६
८	रवि	४	८	बुध	५	८	शनि	...
९	सोम	५	९	बृहस्पति	६	९	रवि	७
१०	मंगल	६	१०	शुक्र	७	१०	सोम	८
११	बुध	७	११	शनि	८	११	मंगल	९
१२	बृहस्पति	८	१२	रवि	९	१२	बुध	१०
१३	शुक्र	९	१३	सोम	१०	१३	बृहस्पति	११
१४	शनि	१०	१४	मंगल	११	१४	शुक्र	१२
१५	रवि	...	१५	बुध	१२	१५	शनि	१३,१४
१६	सोम	११	१६	बृहस्पति	१३	१६	रवि	पूर्णिमा
१७	मंगल	१२	१७	शुक्र	१४	१७	सोम आश्विन[4] कृष्णा	१
१८	बुध	१३	१८	शनि	पूर्णिमा	१८	मंगल	२
१९	बृहस्पति	१४	१९	रवि भाद्र[3] कृष्णा	१	१९	बुध	३
२०	शुक्र	पूर्णिमा	२०	सोम	२	२०	बृहस्पति	४
२१	शनि श्रावण[2] कृ०	१,२	२१	मंगल	३	२१	शुक्र	५
२२	रवि	३	२२	बुध	४	२२	शनि	६
२३	सोम	४	२३	बृहस्पति	५,६	२३	रवि	७
२४	मंगल	५	२४	शुक्र	७	२४	सोम	८
२५	बुध	६	२५	शनि	८	२५	मंगल	९
२६	बृहस्पति	७	२६	रवि	९	२६	बुध	१०
२७	शुक्र	८	२७	सोम	१०	२७	बृहस्पति	११
२८	शनि	९	२८	मंगल	११	२८	शुक्र	१२
२९	रवि	१०	२९	बुध	१२	२९	शनि	१३
३०	सोम	११	३०	बृहस्पति	१३	३०	रवि	१४
३१	मंगल	१२	३१	शुक्र	१४			

१. दक्षिणी गुजराती ज्येष्ठ कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती आषाढ कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती श्रावण कृष्णा। ४. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा।

सन् १८८३ — वि० १९४०

अक्तूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
१ सोम	आश्विन[1] कृ० अमा०	१ बृहस्पति	कार्तिक शुक्ला १	१ शनि	मार्ग० शुक्ला २
२ मंगल	आश्विन शुक्ला १	२ शुक्र	२	२ रवि	३
३ बुध	२	३ शनि	३	३ सोम	४
४ बृहस्पति	३	४ रवि	४	४ मंगल	५
५ शुक्र	४	५ सोम	५	५ बुध	६
६ शनि	५	६ मंगल	६	६ बृहस्पति	७
७ रवि	६	७ बुध	७	७ शुक्र	८
८ सोम	७	८ बृहस्पति	८	८ शनि	९
९ मंगल	८	९ शुक्र	९	९ रवि	१०
१० बुध	९	१० शनि	१०	१० सोम	११
११ बृहस्पति	१०	११ रवि	११,१२	११ मंगल	१२
१२ शुक्र	११	१२ सोम	१३	१२ बुध	१३
१३ शनि	१२	१३ मंगल	१४	१३ बृहस्पति	१४
१४ रवि	१३	१४ बुध	पूर्णिमा	१४ शुक्र	पूर्णिमा
१५ सोम	१४	१५ बृह०	मार्गशीर्ष[3] कृष्णा १	१५ शनि	पौष[4] कृष्णा १,२
१६ मंगल	पूर्णिमा	१६ शुक्र	२	१६ रवि	३
१७ बुध	कार्तिक[2] कृष्णा १	१७ शनि	३	१७ सोम	४
१८ बृहस्पति	२,३	१८ रवि	४	१८ मंगल	५
१९ शुक्र	४	१९ सोम	५	१९ बुध	६
२० शनि	५	२० मंगल	६	२० बृहस्पति	७
२१ रवि	६	२१ बुध	७	२१ शुक्र	८
२२ सोम	७	२२ बृहस्पति	८	२२ शनि	...
२३ मंगल	८	२३ शुक्र	९	२३ रवि	९
२४ बुध	९	२४ शनि	१०	२४ सोम	१०
२५ बृह०	१०	२५ रवि	११	२५ मंगल	११
२६ शुक्र	११	२६ सोम	१२	२६ बुध	१२
२७ शनि	१२	२७ मंगल	१३	२७ बृहस्पति	१३
२८ रवि	१३	२८ बुध	१४	२८ शुक्र	१४
२९ सोम	१४	२९ बृहस्पति	अमावस्या	२९ शनि	अमावस्या
३० मंगल	अमावस्या	३० शुक्र	मार्गशीर्ष शुक्ला १	३० रवि	पौष शुक्ला १
३१ बुध	...			३१ सोम	२

१. दक्षिणी गुजराती भाद्र कृष्णा। २. दक्षिणी गुजराती आश्विन कृष्णा।
३. दक्षिणी गुजराती कार्तिक कृष्णा। ४. दक्षिणी गुजराती मार्गशीर्ष कृष्णा।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

संशोधित सूची-पत्र (१ फरवरी १९८३ से)

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथम भाग) अप्राप्य--
यजुर्वेदभाष्य-विवरण (द्वितीयभाग) — २५-००
२. ऋग्वेदभाष्य — भाग — १ ३५-००
भाग २ — ३०-०० भाग ३ — ३५-००
३. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर २-५०
४. अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय
काण्ड १४-१७ २४-००
काण्ड १८,१९—२०-००; काण्ड २० — २०-००
५. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) २५-००
६. तैत्तिरीय संहिता ४०-००
७. गोपथ ब्राह्मण (मूल) ४०-००
८. ऋग्वेदानुक्रमणी वेङ्कटमाधव कृत—व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। २०-००, राजसं० ३०-००
९. दर्शपौर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन। २५-००, विना जिल्द २०-००।
१०. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा —यु० मी० ३०-००
११. ऋग्वेद की ऋक्संख्या — ,, २-००
१२. वेद-संज्ञा-मीमांसा — ,, १-००
१३. वैदिक-छन्दोमीमांसा — ,, १५-००
१४. वेदों का महत्त्व, वेदार्थ-मीमांसा—,, ५-००
१५. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का स्वरूप — श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु १-००
१६. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—,, १-००
१७. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य १-००
१८. वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री १-००
१९. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा— सजिल्द १६-००, बढ़िया जिल्द २०-००
२०. वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्रकुमार कपूर। सजिल्द १०-००, बढिया जिल्द १५-००
२१. शिवशंकरीय लघुग्रन्थ पञ्चक—वसिष्ठ-नन्दिनी, चतुर्दश भुवन आदि ५-००
२२. संस्कार-विधि—५-२५, बढ़िया सजिल्द ७-५०
आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण-विविध सूचियों सहित सजिल्द १२-००, राज-संस्करण १५-००
२३. वैदिक-नित्यकर्म-विधि— (व्याख्या सहित) युधिष्ठिर मीमांसक ३-००, सजिल्द ४-००
२४. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—मूलमात्र ०-७५
२५. पञ्चमहायज्ञप्रदीप—मदनमोहन विद्या० ३-००
२६. हवनमन्त्र —(मूलमात्र) ०-५०
२७. सन्ध्योपासनविधि—(अर्थसहित) ०-३५
२८. सन्ध्योपासनविधि—अर्थ और दैनिक हवन-मन्त्र सहित— ०-५०
२९. वर्णोच्चारणशिक्षा—ऋषि दयानन्द ०-६०
३०. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र २-५०
३१. शिक्षा-शास्त्रम्—जगदीशाचार्य ५-००
३२. अरबी शिक्षा-शास्त्रम्— ,, ५-००
३३. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध पाठ ३-००
३४. अष्टाध्यायी परिशिष्ट— ५-००
३५. धातुपाठ - धातु सूची सहित ३-००
३६. अष्टाध्यायी-भाष्य —प्रथम भाग — २४-००
द्वितीय भाग —२०-००, तृतीय भाग २०-००
३७. महाभाष्य—यु०मी० कृत हिन्दीव्याख्या सहित। प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००
तृतीय भाग - २५-००
३८. संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि प्रथम भाग १०-००, अंग्रेजी अनुवाद २५-००
द्वितीय भाग १०-००
३९. उणादिकोष—ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। शतशः टिप्पणियों और विविध परिशिष्टों सहित अजिल्द ८-००, सजिल्द १२-००
४०. संस्कृत-धातु-कोष १०-००
४१. दैवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम् — १०-००

४२. काशकृत्स्न-व्याकरणम्— ६-००
४३. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्— १५-००
४४. वामनीय लिङ्गानुशासन—नया संस्करण ८-००
४५. लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— ३-००
४६. शब्दरूपावली—(विना रटे स्मरण योग्य) २-००
४७. भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति ६-००
४८. ईशोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४९. केनोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी जी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
५०. कठोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य ३-५०
५१. अनासक्ति-योग—मोक्ष की पगडण्डी—१५-००
५२. आर्याभिविनय—ऋ० द० सजिल्द ४-००
५३. Aryabhivinaya English Translation and notes स्वामी भूमानन्द सजिल्द ६-००
५४. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) ४ भाग। प्रति भाग १५-००, सैट ६०-००
५५. वैदिक-ईश्वरोपासना—ऋ० द० १-००
५६. श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्—श्री पं० तुलसी राम स्वामी कृत। चिरकाल से अप्राप्य। गीता की सरल सुबोध व्याख्या। ६-००
५७. अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—३-००
५८. मानवता की ओर—शान्तिस्वरूप कपूर ४-००
५९. वाल्मीकि-रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)—युद्ध काण्ड मात्र १०-५०
६० सत्याग्रहनीतिकाव्य—भाषानुवादसहित ५-००
६१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—नया संस्करण तीन भाग। पूरा सैट ७५-००
६२. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि— १५-००
६३. विरजानन्द-चरित्र—भीमसेन शास्त्री। नया परिवर्धित परि संस्करण ३-००
६४. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित— १-००
६५. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन— सजिल्द १५-००
६६. मीमांसा-शाबरभाष्य व्याख्या—युधिष्ठिर मीमांसक कृत। प्रथम भाग ४०-००, द्वितीय भाग ३०-००, राज सं० ४०-०० तृतीय भाग ५०-००। चौथा भाग यन्त्रस्थ।
६७. परमाणुदर्शनम्— ५-००, सजिल्द ६-००
६८. षट्कर्मशास्त्रम्— ८-००, सजिल्द ९-००
६९. सत्यार्थप्रकाश—आर्यसमाज-शताब्दी संस्क०—बड़ा ३०-०० (राज-संस्करण) ३५-००
७०. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द १-००
७१. आर्योद्देश्यरत्नमाला—,, ,, ०-५०
७२. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह—१४ग्रन्थ २५-००
७३. दयानन्द शास्त्रार्थ सग्रह—सं० भवानीलाल भारतीय १०-००
७४. दयानन्द प्रवचन संग्रह—अनु० यु० मी० १०-००
७५. ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन—यु० मी० ३०-००
७६. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—नया परिवर्धित सं०। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३५-००; तृतीय भाग ३५-००।
७७. ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख— ८-००
७८ अष्टोत्तरशतनाममालिका—व्याख्यासहित ६-००
७९. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश -श्री पं० आर्यमुनि जी प्रथम भाग ५-००, द्वितीय भाग ५-००
८०. Vegetarianism Vs : Meat-Eating ०-५०

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)

२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—

गुरु बाजार, अमृतसर ❀ ५१ सुतारचाल, बम्बई ❀ नई सड़क, देहली ❀ बिरहाना रोड़, कानपुर

३. शान्त कपूर एण्ड संस, १२/८, गली खारी कुवाँ, चावड़ी बाजार, दिल्ली—११०००६

४. ठा० शंकरसिंह आर्य, वैदिक साहित्य भण्डार, द्वारका पुरी चाल में, इन्दौर।

५. श्री हरिकिशन मलिक जज, सी ४, सी० सी० कालोनी, दिल्ली।